CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1033

700
C492
1033

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

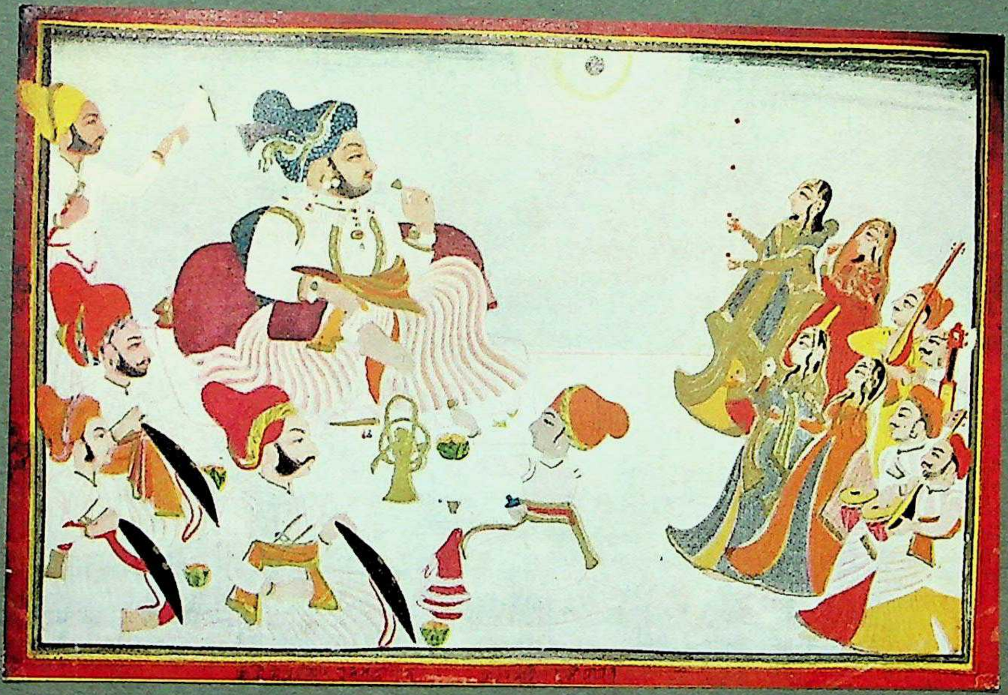

महाराज अनूपसिंह

बीकानेर, राजस्थानी-चित्र, १७वीं सदी, उत्तरार्ध

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय, संगरिया, राजस्थान का विवरण-ग्रंथ तथा उसकी कला-निधि का अध्ययन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला के पक्ष

प्रथम खण्ड

भारतीय कला

जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी

पूर्व अध्यक्ष—सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय

ग्रामोत्थान विद्यापीठ

संगरिया : राजस्थान

प्रकाशक
स्वामी केशवानन्द एम. पी.
ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
संगरिया, राजस्थान.
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : प्रथम खण्ड : सात रुपये
दोनों खण्डों का मूल्य बारह रुपये

मुद्रक
पाठ्य सामग्री–नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली.
रंगीन चित्र–धूमीमल रामचन्द्र,
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली.
सादे चित्र–एशिया प्रेस,
दरियागंज, दिल्ली.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

ग्रामोत्थान विद्यापीठ की ओर से, यह एक नया पुष्प अर्पित करते हुए मैं बड़े आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। संग्रहालय रूपी कला के सरोवर का यह पद्म अपनी सुरभि से जन-जनार्दन को भाव-मुग्ध करेगा, यह मुझे आशा है।

पद्म, जो पवित्रता, निर्मलता और सौन्दर्य का प्रतीक है, सदैव प्रकाश की ओर उन्मुख रहता है। ज्ञान ही वह प्रकाश है। संग्रहालय का मूल उद्देश्य जनता का मनोरंजन ही नहीं वरन् उसके माध्यम से उसकी ज्ञान-वृद्धि करना, देश की प्राचीन संस्कृति व सभ्यता के प्रति एक अभिरुचि जागृत करना और उसके फल-स्वरूप कला के प्रति एक समादर उत्पन्न करना है। विद्यापीठ के उपवन का यह ज्ञान-तरु, संग्रहालय, अभी पूर्ण-रूपेण पुष्पित नहीं है। इसका अभी और भी विकास होना शेष है इसलिये यह आवश्यक है कि इलाके की जनता इसके महत्व को समझे और इसके पुष्पित और पल्लवित होने के लिये पर्याप्त साधन और सहयोग प्रदान करे। यह कर्मयोगी स्वामी केशवानन्द एम० पी० की जीवन-व्यापी साधना तो है ही, इलाके की जनता की भी अपनी कलानिधि है, जिसकी रक्षा और अभिवृद्धि उसका एक पवित्र कर्त्तव्य है। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय का यह विवरण-ग्रन्थ, संग्रहालय को जानने-पहचानने का साधन है।

इस विवरण-ग्रन्थ की रूप-रेखा तैयार करते समय यद्यपि यह आवश्यक नहीं था कि कक्षों की वस्तुओं के विवरणादि के साथ उनकी विषय-वस्तु से सम्बन्धित लेखों का भी समावेश किया जावे किन्तु पाठकों की सामान्य जानकारी के लिये यह परिचयात्मक लेख दे देना उचित समझा गया। आशा है कि इन लेखों के प्रकाश में दर्शक इन वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देख सकेंगे।

भौगोलिक दृष्टि से यह संग्रहालय ऐसे प्रान्त में स्थित है जिसे 'राजस्थान की मरु-भूमि' कहा जाता है। सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से अभी यह इलाका इतना सम्पन्न नहीं है फिर भी यह वह स्थान है जहाँ पुरातन युग में पुण्य-सरिता सरस्वती की धारा प्रवाहित हो रही थी। सरस्वती की घाटी में एक भव्य संस्कृति पनप रही थी। स्वाधीनता के इस प्रभात-काल में ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती की उसी लुप्त धारा का पुर्नप्रभाव इस क्षेत्र में फिर हो रहा है, जिसके चिन्ह् काली बंगा की खुदाई में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कौन कह सकता है कि मोंहे जोदड़ो और हड़प्पा की सिन्धु-घाटी संस्कृति के समान काली बंगा से उपलब्ध वस्तुयें भी भारतीय कला के इतिहास में एक परिच्छेद न जोड़ देंगी? हमें विश्वास है कि केन्द्रीय शासन का पुरातत्व विभाग उस समय इस क्षेत्रीय संग्रहालय को विस्मृत न करेगा और लाभान्वित होने का अवसर भी देगा।

यों तो राजस्थान में अनेक संग्रहालय हैं और उनमें से अनेक हमारे इस संग्रहालय से अधिक सम्पन्न और आकर्षक भी हैं किन्तु इस संग्रहालय की एक विशेषता है। वह यह है कि राजस्थान के अन्य संग्रहालयों को राजा-महाराजाओं का प्रश्रय प्राप्त रहा है। बाद में उन्हें पुरातत्व विभाग का संरक्षण मिल गया। उनके आगे आर्थिक अभाव का प्रश्न नहीं रहा। दूसरी ओर यह संग्रहालय अपने बल और स्वामी केशवानन्द जी के प्रयत्नों पर ही खड़ा रहा है।

इस संग्रहालय की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इसमें एशिया के अनेक देशों की कला-कृतियों का समावेश हुआ है जिससे दर्शक को सम्बन्धित देश की कला की एक झलक मिल जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा संग्रहालय हो जो ग्रामीण क्षेत्र में कला-संस्कृति की प्रकाश रश्मियाँ बिखेर रहा हो। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय इस दृष्टि से अनूठा है।

यदि हमें संस्कृति व वैज्ञानिक गवेषणा मंत्री हुमायूँ कबीर द्वारा संरक्षण न मिलता तो इस संग्रहालय के विवरण-ग्रन्थ को प्रकाशित करने का विचार कार्य-रूप न ले पाता। उनके प्रति मैं संस्था की ओर से हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। उनके विभागीय अधिकारी श्री डी. के. हिंगोरानी व उनके सहकारी श्री एच. एल. अग्रवाल के भी हम इस दिशा में कृतज्ञ हैं।

हम राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली के विभागीय अध्यक्ष सर्वश्री सी. शिवराम मूर्ति, ए. के. भट्टाचार्य तथा यु. के. बुखारी के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने संग्रहालय की विशेष वस्तुओं की जानकारी देने में हमारी सहायता की है। श्री स्वराज प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, नेशनल म्युज़ियम ने सँग्रहालयों पर एक उपयोगी लेख देकर ग्रन्थ की श्रीवृद्धि की है। श्री राय कृष्णदास के एक सुन्दर लेख का उपयोग भी हमने किया है।

संग्रहालय के इस विवरण-ग्रन्थ को तैयार करने का पूरा भार विद्यापीठ के आग्रह करने पर श्री जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी ने स्वीकार किया और इस कार्य को मनोयोग पूर्वक सम्पन्न किया। संस्था और उनका सम्बन्ध गत् कई वर्षों से घनिष्ठ रहा है और उन्होंने इस सँग्रहालय के अध्यक्ष पद भी कार्य किया है।

मैं अपने उन साथियों को कदापि नहीं भूल सकता जिनका सक्रिय सहयोग हमें इस योजना में मिला है। कैटलॉग को तैयार करने के लिये श्री वृजनारायण कौशिक, प्रधान अध्यापक, बेसिक ट्रेनिंग स्कूल ने अपने विचारों और सुझावों से हमें लाभान्वित किया है। श्री हनुमान प्रसाद, अध्यक्ष काष्ठ-कला विभाग ने सारी योजना में पूरी दिलचस्पी ली है। उन्होंने तथा श्री पी. अवतारसिंह, प्राध्यापक विद्यापीठ ने इस कैटलॉग सम्बन्धी फोटोग्राफ़ लेकर विद्यापीठ को अपना सहयोग दिया है। श्री प्रीतमसिंह पंछी, वर्तमान अध्यक्ष, सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय ने इस सम्पूर्ण योजना को कार्यान्वित करने में प्रयत्न किया है। उसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं।

हम नया हिन्दुस्तान प्रेस, एशिया प्रेस तथा धूमीमल रामचन्द्र, नई दिल्ली के व्यवस्थापकों तथा कर्मचारियों के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इतने अल्प समय में, कठिनाई उठाकर भी इतनी रुचि के साथ इस कार्य को पूरा किया।

राम गोपाल गुप्त

२०-३-६१

डायरेक्टर, ग्रामोत्थान विद्यापीठ,
संगरिया, राजस्थान.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय

"It is one of the top-most museums of the country. India is proud of such rural museums. May Swamiji succeed."

—Acharya Vinoba Bhave

× × ×

"I came to Sangaria as Swamiji had invited me. The cities avail themselves of big colleges, universities, museums etc., and the like, nothing of the kind in our villages. Some of these exist in small towns, but are not of a satisfactory standard. Therfore I was specially desirous of visiting this place and seeing what it had to offer. Whatver I saw, I saw closely and found it quite satisfactory, but I could not see all that Swamiji has accomplished here. I could not visit all his institutions. The Museum and the Library, however, are excellent."

—Pt. Jawaharlal Nehru

× × ×

"विद्यापीठ का संग्रहालय और पुस्तकालय तो इतना बढ़िया है कि वह किसी भी राज्य या प्रान्त की राजधानी के लिये गौरवप्रद हो सकता है। निःसन्देह सौभाग्यशाली हैं वे छात्र, जिन्हें अपने प्रारम्भिक शिक्षा-काल में ही ऐसे संग्रहालय और पुस्तकालय का सहयोग मिले।"

—पं० बनारसी दास चतुर्वेदी
संसद-सदस्य

× × ×

"Even though the exhibits are of a mixed nature, the number of items which could be regarded as first-rate is truly surprising. I was particularly impressed by the Statuary and Portrait Section. The entire collection is a glowing tribute to the zeal and energy of Swamiji."

—Shri R. K. Kapoor
Deputy Educational Adviser
Ministy of Education, India.

× × ×

"अपनी कितनी ही दुर्लभ, श्रेष्ठ कला-कृतियों पर यह संग्रहालय गर्व कर सकता है।"

—डा० सत्यप्रकाश श्रीवास्तव
अध्यक्ष, पुरातत्व-विभाग, राजस्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

THE FOREIGN SERVICE
OF THE
UNITED STATES OF AMERICA

BAHAWALPUR HOUSE
SIKANDRA ROAD
NEW DELHI-1

September 14, 1959.

Director
Museum and Library
Gramotthan Vidyapeeth
Sangaria

My dear sir,

One of the most interesting sidelights of my brief visit to Sangaria was the interesting and educational tour of your Museum and Library. I was greatly impressed not only with the quantity but also the quality of the items which are displayed there. My only regret was that the brevity of my stay did not permit me to spend more time there and benefit from your deep knowledge of their history. Such treasures as these mean so much more to the visitor when he is conversant with the relative facts concerning their origin.

You are to be congratulated on the attractive manner in which they are displayed. With regard to the precious manuscripts, I sincerely hope that something will be done to bring them to the attention of research scholars and other interested persons.

With best wishes for the continued progress of the Museum and Library, I remain.

Most appreciatively Yours,

Thomas G. Allen
Cultural Affairs Officer

(श्री थामस एलेन, अधिकारी-सांस्कृतिक गतिविधियाँ, राजदूतावास, अमेरिका
का श्री जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी को लिखा गया पत्र)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: अनुक्रम :

	पृष्ठ
१. प्रथम कक्ष : मूर्ति-शिल्प	१
भारत का मूर्ति-शिल्प	२
कक्ष का प्रस्तर-शिल्प : विवरण	११
२. द्वितीय कक्ष : भारतीय कला (प्राचीन)	१९
भारत की कांस्य-प्रतिमायें व अन्य शिल्प	२०
नेपाल की धातु-प्रतिमायें व अन्य शिल्प	३०
कक्ष की धातु-मूर्तियाँ : विवरण	३८
नेपाल की धातु-मूर्तियाँ : विवरण	४७
ताम्र-चित्र : विवरण	५३
३. तृतीय कक्ष : भारतीय कला (आधुनिक)	५७
हाथीदाँत का भारतीय शिल्प	५८
बीदर के धातु-पात्र	६६
चन्दन का काष्ठ-शिल्प	६९
पेपियर मेशी या कागज़ कुट्टी	७३
जयपुर की मीनाकारी	७६
सींग की कारीगरी	७८
नारियल की कलात्मक वस्तुयें	८२
मृत्तिका-शिल्प	८४
भारतीय मृण्मूर्तियाँ और खिलौने	९४
भारतीय काष्ठ-कला	१०६
कक्ष का कारु-शिल्प : विवरण	११६
४. चतुर्थ कक्ष : शस्त्रागार	१२१
भारतीय अस्त्र-शस्त्र	१२२
कक्ष के शस्त्रास्त्र : विवरण	१२८
५. पाँचवां कक्ष : भारतीय चित्र (प्राचीन)	१३४
भारतीय चित्र-कला	१३५
कक्ष की चित्र-निधि : विवरण	१४२

रंगीन चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. आचार्य पद्मसम्भव

तंका, तिब्बत, १७वीं सदी — आवरण

२. महाराज अनूपसिंह

बीकानेर, राजस्थानी-चित्र,
१७वीं सदी, उत्तरार्ध — १

३. शाहन्शाह हुमायूं और अकबर

बेग़मों के साथ,
हाथीदाँत पर चित्र, १९वीं सदी — ६४

४. महाराज प्रतापसिंह

जयपुर, राजस्थानी चित्र,
१८वीं सदी, उत्तरार्ध — १३६

५. नायिका

बूँदी, राजस्थानी चित्र,
१९वीं सदी, पूर्वार्ध — १४०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय, संगरिया

उदय और विकास

स्वामी केशवानन्द, सदस्य राज्य-सभा

"संग्रहालय नाम के लिये एक छोटा शब्द है परन्तु इस शब्द के मर्म में बहुत कुछ निहित है। इसके द्वारा प्राचीन कला-कौशल एवं इतिहास सामने आ जाता है। इसमें मिट्टी तथा धातु की प्राचीन वस्तुयें, मुर्तियां, दस्तावेज़, पत्र, हस्तलिखित पुस्तकें, सिक्के, शिला-लेख, ताम्र पत्र, शस्त्र, वस्त्र, चित्रादि, प्राचीन-नवीन वस्तुयें, उनके समय, स्थान, गहराई व विवरण के साथ रक्खा जावे जिससे प्राचीन इतिहास में सहायता एवं वर्तमान कला-कौशल को उत्तेजना मिले।"

हिन्दी के पुरातत्व और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान्, बन्धुवर श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने अपने एक पत्र में संग्रहालय तथा उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में उक्त भावनायें व्यक्त की थीं। संग्रहालय की वस्तुओं के चयन, उसकी स्थापना तथा विकास के समय मेरे आगे रेऊ जी के उपरोक्त विचार ही रहे। परिणामस्वरूप संगरिया के इस संग्रहालय में विविध प्रकार की वस्तुयें एकत्रित होती चली गई। मेरे इस प्रयत्न के तीन हेतु रहे हैं; प्रथम इतिहास की जानकारी, दूसरी कला-कौशल की प्रेरणा और तीसरी सर्व-साधारण जनता का मनोरंजन—

इस संग्रहालय के उदय और विकास के साथ मेरी जीवन-गाथा के कुछ पृष्ठ भी जुड़े हुये हैं। उन पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेनी ज़रूरी है।

यों तो मैं बचपन से ही लापरवाह रहा हूँ। जबकि मैं १३-१४ वर्ष का था, शाम के समय खेत में कुल्हाड़ी फैंककर अपने पहले स्थान की ओर चल दिया और अपार कष्टों का सामना करने पर भी वापस नहीं लौटा। उस समय मुझे एक मुट्ठी भर कच्चा अनाज बड़ी मुश्किल से चौबीस घण्टों में प्राप्त होता था। एक दिन तो वह भी नहीं मिला। रात को गायों की खुराक में से एक-दो छटाँक तिल की खल खाकर ही गुज़ारा किया। जब कभी दिल उदास होता था, मन में एक उबाल आता था तो बिना कुछ लिये, बिना सोचे-बिचारे, बिना साधन-सामग्री के कहीं भी ऐसे चल देता कि जैसे मैं अपने किसी नाते-रिश्ते में, जाने-पहचाने स्थान को जा रहा हूँ। जैसे खान-पान की सारी सामग्री की मेरे लिये किसी ने पहले ही व्यवस्था कर रक्खी हो—

"चरैवेति-चरैवेति" भारत के ऋषियों ने कहा है—'चलते रहो, चलते रहो क्योंकि चलना ही जीवन है।' बारह वर्ष की उम्र से लेकर आज अठहत्तर वर्ष की आयु तक मैं चलता ही रहा हूँ। अब भी एक रात के बाद मैंने दूसरी रात शायद ही उस स्थान पर गुज़ारी हो। मुझ जैसे घुमक्कड़ ने क्या देखा, क्या सुना, क्या अनुभव किवा, विचारवान पुरुष इसका सहज ही अनुमान लगा सकता है। विद्वानों का कथन है और मेरी स्वयं की मान्यता भी यही है कि जिसने दुनियाँ भर की किताबें पढ़ी हों किन्तु 'दुनियाँ की किताब' न पढ़ी हो; प्रत्यक्षदर्शी के रूप में विश्व न देखा हो, वह वास्तव में पढ़ा-लिखा होकर भी अनुभव वाला व्यक्ति नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमात्मा की कृपा या अपना सौभाग्य कहूँ कि मुझे अपने पर्यटनशील जीवन में दिनोंदिन अच्छे-अच्छे सत्पुरुषों का सम्पर्क मिला। अनेक संस्थाओं को देखा, अधिवेशनों और उत्सवों का लाभ भी लिया। बचपन और किशोरावस्था का जीवन जंगली मैदानों में, बछड़े-बछड़ियों एवं गायों को चराने में तथा वाल-गोपालों के साथ व्यतीत हुआ। रात को हम खुले आकाश के नीचे खेल-खेलते। अपने प्रारम्भिक जीवन में चाहे मैं बड़ी-बड़ी पुस्तकों के भावों को पूर्णरूप से न समझ पाता होऊँ फिर भी शंकराचार्य, कुमारिल भट्ट और ऋषि दयानन्द से प्रभावित हो चुका था और 'पंच महा यज्ञ विधि संध्या' तथा सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करने लगा था। मेरा अध्ययन बाद में भी सिल-सिले से नहीं हुआ फिर भी मैं पुस्तकों और विद्वानों के संसर्ग में अवश्य रहा। जिन्दगी में हजारों पुस्तकें पढ़ी नहीं तब भी उनकी भूमिका, विषय एवं लेखक किस विचार और रुचि का है, यह देखकर जरूर खरीदी हैं।

संस्कृत शिक्षा की इच्छा से प्रेरित होकर चाहने पर या न चाहने पर भी यह भगवा वेश धारण किया और इसी से सम्बन्ध रखने वाले कुम्भों, तीर्थों और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भागों और उनमें होने वाले मेलों, उत्सवों, प्रदर्शनियों, बड़े-बड़े नगरों, रियासतों, राज्यों और उनके पुस्तकालयों, संग्रहालयों, मठ-मन्दिरों के साथ दूसरे धर्मों के गिरजों, मन्दिरों, पीर-फ़क़ीरों के मक़बरों, उजड़े किलों आदि में घूमा-भटका और उनको देखा।

उन्हीं दिनों मैंने लाला लाजपतराय के धुँआधार भाषण सुने तथा अनेक आर्य उपदेशकों के व्याख्यान भी सुने। सन् १६०७ ई० में लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीतसिंह जी गिरफ्तार कर लिये गये। मुझे स्मरण है कि इन्हीं दिनों कोयटा में लोगों ने मेरी धोती पर एतराज़ किया था कि मैंने लंकाशायर का विदेशी कपड़ा पहन रक्खा है। इन दिनों बंग-भंग का आन्दोलन या उड़ीसा का झगड़ा चल रहा था और बंगाल के स्वदेशी वन्धु सत्येन्द्र प्रसन्नसिंह बिहार के गवर्नर नियुक्त हुये थे। वे ही प्रथम भारतीय गवर्नर थे। जहां तक मुझे याद आ रहा है, उन्हीं दिनों के आस-पास खुदीराम बोस को फाँसी पर लटकाया गया था।

मैं सन् १६०६ ई० में अपनी स्वतः की प्रेरणा से फाजिलका में प्रथम पुस्तकालय बना चुका था। वेंकटेश्वर समाचार का मैं नियमित रूप से पाठक था। मैं गाँव का निवासी था और नगर में वेदान्त आदि की शिक्षा प्राप्त करने आया था। गाँवों की त्रुटियाँ क्या हैं? शहरों में क्या कमियाँ हैं? विदेशी हुकूमत क्या है और यहाँ क्यों आई है? इसे निकालना क्यों आवश्यक है, इन्हीं सब प्रश्नों को मैं सोचता रहता।

आर्य समाज से सम्बन्ध होने के कारण, मुग़लों की हुकूमत, भारतीय संस्कृति पर उसका प्रभाव, वीर हकीकतराय और लेखराम की शहादतें आदि घटनायें भी दिमाग़ में चक्कर काटती रहतीं। सोमनाथ का आक्रमणकारी इतना लम्बा रास्ता तय करते हुए आया, किसी में इतना साहस न था कि उसकी गति को रोक सकता? मैं इसी प्रकार की बातें सोचा करता।

मैं एक बार अजमेर गया। वहाँ ढाई दिन का झोंपड़ा देखा जो कि केवल टूटी-फूटी पत्थर की मूर्तियों ही की बनी इमारत है, भारत का गौरव-स्थल चित्तौड़ देखा।

ताल सु भूपाल ताल और सब तलैया,
गढ़ सु गढ़ चित्तौड़ गढ़ और सब गढ़ैया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वीर प्रताप की वह भूमि देखकर मन श्रद्धामय हो उठता। फिर भारत के अनेक ऐतिहासिक स्थल देखे जिनमें प्राचीन इतिहास दबा हुआ पड़ा है।

कुछ समय बाद रौलट एक्ट आया। इस काले कानून के विरोध में देश में जगह-जगह दिल दहला देने वाले भाषण हुये। इस विरोध के अग्रणी नेता थे, स्वनामधन्य पं० मदनमोहन मालवीय जी जिनके सम्बन्ध में मैं 'प्रताप' में पढ़ा करता था। इस कार्यालय से ही 'प्रभा' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित होती थी, जो मुझे बहुत अच्छी लगती थी।

मैं इन दिनों पुस्तकालयों की स्थापना में लगा हुआ था। उसके पीछे मेरा एक अन्य ध्येय भी था; हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण स्थान दिलाना तथा नागरी वर्णमाला को सर्व मान्यता देने का प्रचार करना। पंजाब उर्दू का एक गढ़ था और वहाँ हिन्दी का प्रचार बहुत कठिन समझा जाता था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में खपरैलों में चल रहा था, उन्हीं दिनों मैं उसका सदस्य बना। नागरी प्रचारिणी सभा काशी का स्थायी सदस्य तो बहुत बाद में बना।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। काँग्रेस के उस आन्दोलन में मैंने भी भाग लिया और कच्चे-पक्के मुक़दमों में एक वर्ष, चार मास की सज़ा भी मिली।

भारत के राजनैतिक रंगमंच पर मौलाना शौक़तअली और मुहम्मदअली आये। खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ। हम अपने मुस्लिम बन्धुओं के साथ उनकी मस्जिदों में गये और वे भी कुछ संख्या में हमारे साथ जेल में गये। इसके बाद गुरुद्वारों की अकाली लहर चली। कुंजियों का झगड़ा चला। गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के सिक्खों ने सिर पर काली पगड़ियाँ बाँधी। सिखों ने ४-४ इंच की लम्बी कृपाण के साथ-साथ लम्बी कृपाण धारण करनी प्रारम्भ कर दी।

'गीता रहस्य' मेरी सबसे प्रिय पुस्तक रही है। मैंने जिन दिनों झिझकते-झिझकते राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया उन दिनों लोकमान्य तिलक बाग़ी बनकर माण्डले की जेल में ६ वर्ष की सजा काट रहे थे। वहाँ उन्होंने कर्मयोग शास्त्र के नाम से गीता पर भाष्य लिखा। सन् १९१७ ई० के लगभग उसका अनुवाद मैंने मंगवाया। दानेवाला गाँव में पूरे चार-पाँच मास रह कर मैंने उसका अध्ययन किया। इस ग्रन्थ का मुझ पर एक विचित्र प्रभाव पड़ा। मेरे मन में एक निर्भरता आ गई। यह दृढ़ता की भावना ऐसी आई कि "जन्मकोटि लग रगर हमारी। बरहुँ शम्भु न तु रहौं कुंवारी।" स्वराज्य हमारा लक्ष्य बन गया। मैंने सोचा इस जन्म में, नहीं तो दूसरे जन्म में, नहीं तो असंख्य जीवनों में स्वराज्य अवश्य प्राप्त करूँगा। इसी विचार के कारण एक गोरा जज मुझ पर चिढ़ गया। उसने १०७ दफ़ा की बजाय १०८ दफ़ा लगाकर मुझे सादी जेल के साथ-साथ एक वर्ष की सख्त जेल का हुक्म दे दिया। मेरे जीवन पर राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त की "भारत-भारती" का भी प्रभाव पड़ा। स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का संसर्ग और उनका साहित्य, ठाकुर शिवनन्दनसिंह का "देश-दर्शन", गांधी जी और जेम्स एलन की पुस्तकें, "आरोग्य दिग्दर्शन" 'शिव संकल्प की विजय' आदि का मन पर प्रभाव पड़े बिना न रहा। फिर भिन्न-भिन्न विषयों की हज़ारों पुस्तकें देखीं और पढ़ीं।

यात्रायें मुझे सदैव प्रेरणा देती रहीं। मैंने श्री अरविन्द का पाण्डुचेरी का आश्रम, रबि बाबू का शांति निकेतन, आगरा का दयालबाग, सिन्ध का साधुबेला, साबरमती आश्रम, पटना का सदाकत आश्रम आदि देखे और मैं वहाँ से अपने साथ एक उत्साह और कार्य की इच्छा-शक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकर लौटा। यात्राओं का क्रम चलता रहा। अनेक ऋषि-कुल, गुरुकुल, आश्रम तीर्थ आदि देख डाले।

प्रारम्भ में मेरा ध्यान पुस्तकालयों को ओर अधिक रहा। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झांसी अधिवेशन से वापस लौटते समय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ (अध्यक्ष जोधपुर राजकीय संग्रहालय) ने मेरे द्वारा संस्थापित फ़ाजिलका और अबोहर के पुस्तकालयों को लक्ष्य में रख कर यह सम्मति प्रदान की कि मैं पुस्तकालयों के साथ संग्रहालयों की भी स्थापना का ध्यान रखूं क्योंकि पुस्तकालयों और संग्रहालयों का इतिहास के नाते एक जैसा सम्बन्ध है। बाद में उनका पत्र और कुछ महत्वपूर्ण सिक्के भी मिले।

झांसी सम्मेलन से आते ही रेऊ के परामर्श के अनुसार अबोहर के पुस्तकालय भवन में एक संग्रहालय का श्री गणेश हुआ। बाहर के लोग मनोरंजन और कलादर्शन के लिए उसे भी काफी संख्या में देखने आया करते थे। अब भी आते हैं। मेरे संगरिया आ जाने से स्वाभाविक रूप से यहाँ के संग्रहालय का उत्तरोत्तर विकास होता गया और अब यह एक विशाल संग्रहालय के रूप में प्रतिदिन लगभग १५० दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। सरस्वती मन्दिर का ऊपर का खंड इसके विभिन्न कक्षों ने घेर लिया है। संगरिया जैसे स्थान में इतना बड़ा संग्रहालय और पुस्तकालय देखकर बाहर से आया हुआ व्यक्ति आश्चर्य से चौंक जाता है। इसका श्रेय इलाके की उस जनता को है, जिसने इन समस्त कार्यों के लिए संस्था को मुक्त-हस्त से दान दिया है। आचार्य विनोबा भावे ने इसे देखकर कहा था—'भारत ऐसे ग्रामीण संग्रहालयों पर गर्व कर सकता है।

संग्रहालय में जो छोटी-बड़ी, सूक्ष्म, व नाजुक चीजें आई हैं, वे सब देश तथा विदेश से बड़ी सावधानी के साथ लाई गई हैं। ट्रेन, मोटर, जहाज और हवाई जहाज से लाई हुई इन वस्तुओं के लिए यदि कुली, वाहक, या किसी अन्य यात्री द्वारा तनिक सी भी लापरवाही बरती जाती तो आधी सामग्री रास्ते में ही टूट जाती। अनेकों बार कुलियों ने कई प्रकार का नाजुक सामान, कहते-कहते, सावधान करते-करते तोड़ भी डाला है।

मुझे याद है कि एक बार मैंने एक बड़ा शीशा लिया जिसका मूल्य एक सौ दस रुपये था। भीतर का चित्र एक हज़ार का था। उस चित्र को लाने में केवल कुलियों पर ही ४२) खर्च हुये थे। ऐसा लागत वाला शीशा चाय का कप पकड़ते-पकड़ते इंजन के झटके से टूट गया। शीशा चूर-चूर हो गया। एक बार मैं रामगढ़ (जिला रांची) की कांग्रेस की नुमाइश से कुछ सामान लेकर आ रहा था। सामान अधिक था और उसमे जल्दी टूटने-फूटने या नष्ट होने वाली वस्तुएँ भी थीं। तीसरे दर्जे के डिब्बे में दो बड़े-बड़े टोकनों में सामान बांधकर रक्खा हुआ था। मुझे उसकी चिन्ता लगी हुई थी। दो रातें और एक दिन सफर में निकल गया पर पलक भी न झपकी। तीसरे दिन अबोहर पहुँचा। ज्यों ही स्नान के बाद दूध पीकर खिड़की, अन्दर से बन्द कर सोया कि वह दिन और आने वाली सारी रात सोया पड़ा रहा। दूसरे दिन चार बजे आंख खुली। कितनों ने दरवाजे खटखटाये, आवाजें दीं पर मुझे कुछ होश ही नहीं था। इतने समय तक भूखा प्यासा, यों ही सोता रहा।

मैं इतना सावधान होकर सोता हूँ कि सिरहाने रक्खी हुई ऐनक को कभी ठस नहीं लगने दी। जरा सी आहट पाकर जाग उठता हूँ। यह लम्बी यात्रा में जागते रहने के कारण हुआ है। यात्राओं के अनुभव बड़े विचित्र हैं। मान सरोवर की यात्रा दस हजार फुट की ऊँचाई से प्रारम्भ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती है और गौरी कुंड की ऊँचाई उन्नीस हजार छः सौ फीट है। मैं मार्गों में विभिन्न रंगों व प्रकारों के पत्थर इकट्ठे करता, पड़ाव पर या रास्ते में ही उनकी छंटनी करता, प्रतिदिन का दो रुपये सेर के हिसाब से किराया भाड़ा देता, प्रकृति देवी के विविध रंगों और स्थलों को देखता चलता। रास्ते में कैसे विचित्र रंगों का वातावरण फैला रहता है, यह देखते और अनुभव करते ही बनता है। मानसरोवर की इस यात्रा में मैं अपने साथ अनेक वस्तुएँ लाया। हिमालय के सुनहले बालों के पक्षीराज की खाल, पहाड़ी भेड़-बकरियों की खालें, जितने वर्ष की आयु उतने ही गांठों वाले सींग, अरना भैंसे के सींग, शेर का जबड़ा, तिब्बत के सिक्के, मानव-अस्थियों के आभूषण, पहाड़ी जेवर, अस्त्र-शस्त्रादि इसी सामान में आये थे। बहुत सी सामग्री श्रीलंका, ब्रह्मा, तिब्बत, नेपाल, हांगकाँग आदि की यात्राओं से आई है। कांग्रेस के अधिवेशनों में मैं जाया करता था। संग्रहालय की बहुत सी सामग्री सौराष्ट्र, अहमदाबाद, नागपुर, रामगढ़ आदि के अधिवेशनों की प्रदर्शिनियों से ली गई है। कुछ महत्वपूर्ण सामग्री कलकत्ते के अलभ्य वस्तुओं के व्यवसायी श्री चन्नीलाल नौलखा से क्रय की गई है।

संग्रहालय के निर्माण में अनेक उदारमना महानुभावों का सक्रिय सहयोग मुझे मिला है। स्व० श्री सेठ नन्दलाल जी की सहायता से यह संग्रहालय भव्य बन पड़ा है। स्व० चौधरी ताराचन्द जी की सिफारिश और विश्वास से मुझे महाराज भरतपुर द्वारा गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्रायें मिलीं। महाराज बीकानेर, महाराज अलवर और पेप्सू सरकार ने अस्त्र-शस्त्र प्रदान करने की कृपा की। श्री महंत हरिहर गिर ने एक छोटी तोप दी, जो चल सकती है। श्री गोवर्धनसिंह द्वारा अलवर महाराज के दिये मृत जीव-जन्तु प्राप्त हुए। ठाकुर जसवन्तसिंह जी एस. पी., बीकानेर ने एक मूल्यवान बड़ा शेर भेंट किया जिसका उनके भाई ने शिकार किया था। यह समस्त सामग्री संग्रहालय में सुरक्षित है। मेरे प्रिय मित्र राय कृष्ण दास जी तथा डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मुझ पर विशेष स्नेह रहा है। राय साहब द्वारा मुझे राजघाट की पाषाण और मृण्मूर्तियाँ मिली हैं और डा० अग्रवाल ने मेरे अनुरोध पर संगरिया पधार कर संग्रहालय को मार्ग-दर्शन दिया। इन समस्त महानुभावों का मैं कृतज्ञ हूँ।

भारत सरकार की दी हुई निधि से संग्रहालय के नये कक्ष, यह विवरण-ग्रन्थ तथा चित्रों के रंगीन कार्डस तैयार हुए हैं। यदि हमारे संस्कृति-मन्त्री प्रो० हुमायूं कबीर इस संग्रहालय में इतनी दिलचस्पी न लेते तो यह पुस्तक इतनी सजधज के साथ आपके हाथों में न होती। मैं केन्द्रीय सरकार की इस सहायता के लिए मंत्री महोदय के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस विवरण-ग्रन्थ को जगदीश जी ने तैयार किया है। वे मेरे अपने व्यक्ति हैं और इस संग्रहालय के अध्यक्ष पद पर कार्य कर चुके हैं। संग्रहालय के उत्तरोत्तर विकास व उन्नति में उनका सहयोग सदा हमारे साथ रहेगा, ऐसा मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ। मेरे स्नेह-अनुरोध पर श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, नेशनल म्यूज़ियम ने संग्रहालयों की उपयोगिता पर एक सुन्दर लेख दिया है।

संग्रहालय के आगे अपनी समस्यायें हैं। वर्तमान स्थान संग्रहालय के अनुकूल नहीं है। उसके लिए एक नये भवन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। वस्तुओं के नष्ट-भ्रष्ट होने के कारण प्रत्यक्ष हैं और उनमें सबसे बड़ा कारण धनाभाव है। रक्षा के ज्ञान का अभाव भी एक कारण है जससे बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। यह प्रकट करते हुए मुझे बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुःख हो रहा है कि राजस्थान सरकार द्वारा हमें इस संग्रहालय के लिए अब तक कुछ भी आर्थिक सहायता नहीं मिल सकी है जबकि संग्रहालय का मासिक व्यय पाँच सौ रुपये से कम नहीं बैठता। वस्तुओं की रक्षा की दृष्टि से भी कर्मचारियों की संख्या बहुत कम है। इस अर्थाभाव के कारण ही संग्रहालय अपने योग्य अध्यक्षों को अपने यहां अधिक समय तक टिका नहीं पाता यद्यपि संस्था इस पर यथाशक्ति व्यय करती जा रही है।

अपनी समस्त योजनाओं और कार्यों में मुझे ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया के प्रधान चौधरी शिवकरण सिंह जी तथा कार्यकारिणी के माननीय सदस्य श्री कुम्भाराम आर्य, संसद सदस्य और श्री चौधरी रामचन्द्र (मंत्री, राजस्थान शासन) आदि महानुभावों से सक्रिय सहयोग मिला है। उनकी संस्था की निःस्वार्थ सेवाओं के प्रति मेरे हृदय में एक गहरा आदर है।

राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया तथा राजस्थान के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष डा० सत्यप्रकाश श्रीवास्तव ने इस संग्रहालय में आकर अपने मूल्यवान सुझाव दिए हैं। हमें विश्वास है कि राजस्थान शासन अपने प्रान्त की इस कला-निधि की रक्षा के लिए निकट भविष्य में ही कोई ठोस कदम उठाएगा।

मैं राष्ट्र संत विनोबा भावे, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल व श्री अजितप्रसाद जैन आदि महानुभावों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जो मेरे आग्रह को स्वीकार कर संग्रहालय में पधारे और जिन्होंने अमूल्य सुझावों से हमें लाभान्वित किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोक-जीवन में संग्रहालय का स्थान

●

श्री राय कृष्णदास
श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज के संग्रहालयों की उपयोगिता

श्री राय कृष्णदास

शिक्षा के जो नए माध्यम प्रस्तुत हो रहे हैं, उनमें दृश्य-वस्तुओं के द्वारा शिक्षा का बहुत महत्व है। जो बातें अनेक प्रकार से समझाने पर भी नहीं समझ पड़तीं, आँखों के सामने आते ही मन उन्हें सहज ही ग्रहण कर लेता है। इसी कारण सिनेमा, टेलीविज़न, चित्रित पुस्तकों, स्लाइडों के साथ-साथ संग्रहालय भी आज शिक्षा प्रचार के साधन बन गए हैं।

यह नहीं समझना चाहिये कि इस प्रकार के दृश्यों के द्वारा शिक्षा केवल वयस्कों और अशिक्षितों के लिए उपयोगी है वरन् उच्च शिक्षा के लिए भी इन माध्यमों की भारी आवश्यकता है। संग्रहालयों का इस प्रसंग में भारी महत्व है।

संग्रहालयों के भिन्न-भिन्न विषय हो सकते हैं। कला-संग्रहालयों में विभिन्न शास्त्रों के आँकड़े, दृश्य-वस्तुओं सम्बन्धी एवं वैज्ञानिक विषयों सम्बन्धी भिन्न-भिन्न वस्तुओं के प्रदर्शन होते रहते हैं। वस्तुतः संग्रहालयों में जिन विषयों से सम्बन्धित वस्तुएं प्रदर्शित की जाती हैं, उन सबका उद्देश्य विषयों की जानकारी प्रस्तुत करना होता है। मुख्य रूप से संग्रहालयों में से चुनी वस्तुएं एकत्रित की जाती हैं, जिनके द्वारा एक ही स्थान पर विद्यार्थी अनेक प्रकार की सामग्री अध्ययन के लिए प्राप्त कर लेता है। जो वस्तुएं अलभ्य होती हैं, उनके प्रतिरूप इकट्ठे किए जाते हैं। जिन वस्तुओं के विषय में जानकारी बतलानी होती है, उन्हें साथ में अनेक प्रक्रियाओं द्वारा प्रकट किया जाता है। वस्तुओं को इस प्रकार रक्खा जाता है कि अध्ययन करने में असुविधा न हो, प्रकाश आदि की समुचित व्यवस्था करके उक्त वस्तुओं की विशेषताएं स्पष्ट को जाती हैं। कभी-कभी उपयुक्त वातावरण उपस्थित करने के लिए पृष्ठ-भूमि में समुचित विवरणों के द्वारा ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया जाता है कि दर्शक कुछ क्षण के लिए अपने-आपको ही बिलकुल भूल जाता हैं। न्यूयार्क ने एक संग्रहालय में एक बहुत बड़ा हौज-सा बना है, जिसमें जल तो नहीं है परन्तु प्रकाश की किरणों की ऐसी व्यवस्था है, जिसके द्वारा उसमें उतरते हुए से अनेक जलीय पशु ऐसे प्रकट होते हैं मानों समुद्र में तैर रहे हों।

संग्रहालयों की उपयोगिता बढ़ाने के लिए विवरण पत्रों, लेबिलों, गाइडों आदि की व्यवस्था की जाती है। इन सब का एक ही उद्देश्य होता है कि संग्रहालय में जो वस्तुएं प्रदर्शित की जाती हैं उनका अर्थ अधिकाधिक रूप में प्रकट हो। दूसरे शब्दों में उनके द्वारा शिक्षा का प्रचार अधिक से अधिक हो। इस प्रकार संग्रहालयों की उपयोगिता को बढ़ाने के लिए आधुनिक से आधुनिक प्रयोग किए जा रहे हैं। अमेरिका में दर्शकों को मामूली दर पर किराये पर ऐसे रेडियो रिसीवर मिलते हैं, जिन्हें कान में लगाकर दर्शक कला की वस्तुओं आदि के सामने खड़े हो जाते हैं। इन वस्तुओं के सम्बन्ध में सारी व्याख्या उस यन्त्र में सुनाई देती है। इतना ही नहीं जहां जीव-जन्तुओं के प्रदर्शन हैं, वहां पृष्ठ-भूमि में प्राकृतिक दृश्य देखने के साथ-साथ ऐसी ध्वनियाँ उस यंत्र के द्वारा दर्शक को सुन पड़ती हैं जो उस वातावरण में होती रहती हैं। इस प्रकार उन प्रदर्शित वस्तुओं की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने देश में 'संग्रहालय' शब्द से एक अजायबघर का अर्थ लिया जाता है अर्थात् संग्रहालय में अजीब-अजीब चीजें होंगी। इसी दृष्टिकोण के कारण अपने देश में संग्रहालय उपयोगिता की दृष्टि से बहुत सफल नहीं कहे जा सकते। इनमें जिस प्रकार की वस्तुओं का चयन किया गया है, वह दर्शक के मन में ज्ञान उत्पन्न नहीं करती। इसी प्रकार अनेक पुरातत्व और कला-संग्रहालय हैं, जिनके ठीक-ठीक रूप निर्धारण न होने से वे सचमुच 'अजायब घर' बन गए हैं।

संग्रहालयों द्वारा शिक्षा का प्रचार-कार्य वस्तुतः बाल अवस्था से ही आरम्भ हो जाता है। दूसरे शब्दों में बाल-शिक्षा के लिए संग्रहालय बड़े ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके द्वारा बालकों को सहज ही अनेक मूलभूत सूचनाएं दी जाती हैं। जिनसे एक ओर इतिहास, संस्कृति और कला का परिचय होता है तो दूसरी ओर विज्ञान के स्थूल सिद्धान्त भी समझे जा सकते हैं।

इसी प्रकार साक्षरता आन्दोलन में संग्रहालयों का उपयोग किया जाता है। वयस्क लोगों के लिये कुछ सीमा तक उसी सामग्री का उपयोग किया जाता हैं जो बाल-शिक्षा में उपयोगी है क्योंकि उसमें कुछ मूलभूत सूचनायें दी होती हैं। परन्तु ऐसे संग्रहालयों की पूरी उपयोगिता तभी होती है जब उनमें वयस्कों की आवश्यकता के अनुसार देश और विदेशों से सम्बन्धित सूचनायें प्रदर्शित की जावें और उनकी मूल व्याख्या भी साथ दी जावे।

संग्रहालय से अपने देश में मुख्यतः कला या पुरातत्व संग्रहालयों का ही बोध होता है क्योंकि अपने देश में अधिकांश संग्रहालय इसी कोटि के हैं। इनके द्वारा जन-साधारण में कला-चेतना का प्रचार होता है। इतना ही नहीं, इनमें अध्ययन करने वालों को यह सुविधा भी होती है कि भिन्न २ कालों और संस्कृतियों में देश और विदेशों में क्या-क्या आचार विचार थे, इसकी भी खोज-पड़ताल की जा सके। इनमें ऐसी-ऐसी कला-कृतियाँ और पुरातत्व सामग्री संग्रहीत होती है जो दुर्लभ और बहुमूल्य होती है अतएव यह संग्रहालयों का ही काम है कि उन्हें जन-साधारण को सुलभ कर दे।

इस प्रकार वस्तुतः संग्रहालयों के दो उपयोग हैं। एक तो जन-साधारण में उक्त विषयों की जानकारी सुलभ करना। उदाहरण के लिये स्वास्थ्य सम्बन्धी संग्रहालयों में स्वास्थ्य के विषयों में जानकारी उपस्थित की जाती है। इसी प्रकार मानव-शास्त्र, प्राचीन वनस्पति शास्त्र तथा कला-कौशल आदि सम्बन्धी संग्रहालय हो सकते हैं। यद्यपि संग्रहालय जन-साधारण के मन-बहलाव के भी साधन हैं परन्तु उनका मूल उद्देश्य ज्ञान का प्रचार ही है। विशेष रूप से अनेक दृश्य-साधनों में संग्रहालयों का अपना महत्व माना जाता है। परन्तु संग्रहालयों की उपयोगिता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। संग्रहालयों की उतनी ही महत्वपूर्ण योग्यता ज्ञान के विकास में भी है क्योंकि इस प्रकार संग्रहालय नई-नई शोधों के केन्द्र हो जाते हैं। इसी प्रकार चल-संग्रहालयों द्वारा भी सग्रहालयों की सामग्री को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध किया जाता है जिससे उनकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। अपने इस महान् देश में संग्रहालयों की उपयोगिता और भी अधिक हैं। यहाँ हमें जन-साधारण में कला-चेतना उद्बुद्ध करनी है। इतना ही नहीं हमें ज्ञान के प्रचार में संग्रहालयों की प्रमुख रूप से सहायता मिल सकती है। विशेष रूप से अपने देश में वयस्क साक्षरता आन्दोलन में विशेष उपयोगिता सिद्ध होगी। यदि हमारे चलते-फिरते संग्रहालय दूर-दूर तक ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँच जायें तो हमें अपने देश-वासियों को शिक्षा के मूलभूत तत्व समझाने में बहुत सहायता मिल सकती है क्योंकि संग्रहालयों द्वारा शिक्षा-प्रसार में अक्षर-ज्ञान अनावश्यक है इसलिये इनकी उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। अंत में हम इतना ही कह सकते हैं कि संग्रहालयों की जितनी उपयोगिता है उतनी अपने देश में अभी प्रकट नहीं हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रहालय क्यों ?

श्री स्वराज्य प्रकाश गुप्त, डिप्टी कीपर, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

जैसे प्रत्येक मनुष्य को अपने व्यक्तिगत व्यतीत जीवन के अनुभवों का लेखा-जोखा सदैव करना पड़ता है इसलिये कि वह अपनी की हुई त्रुटियों को दुहरा न पाए तथा अपने गौरवमय कार्यों से प्रेरणा और शिक्षा लेकर भविष्य के जीवन को उन्नत बना ले, ठीक उसी प्रकार देश और समाज को सामूहिक रूप में अपने प्राचीन जीवन का लेखा-जोखा करना ही पड़ेगा यदि उसे उन्नतिशील होना है। यही कारण है कि संसार के हर देश में संग्रहालयों की स्थापना का एक नया आन्दोलन खड़ा हो गया है। यद्यपि संग्रहालयों की स्थापना हर देश में बहुत समय से होती रही है किन्तु इधर पिछले दशक में इसके उद्देश्यों को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में कई सम्मेलन हुए हैं जिनमें इस बात पर बड़ा जोर दिया गया है कि संग्रहालय अब केवल अद्भुत वस्तुओं को रखने का गोदाम मात्र नहीं हैं वरन् वह एक महान् विश्वविद्यालय हैं जिसके द्वारा देश और समाज के एक-एक व्यक्ति का जहाँ एक ओर सुरुचिपूर्ण मनोरंजन होता है वहीं उसकी गहरी शिक्षा भी होती है। १९५२ में न्यूयार्क में तथा १९५४ में एथेन्स में इसी विषय को लेकर अनेक देशों के प्रतिनिधियों की महत्वपूर्ण बैठकें हुई और उन्होंने कितने ही सुझाव इस बात को लेकर रखे कि संग्रहालयों में वस्तुओं को इस प्रकार से सजाया जाय और समय-समय पर ऐसे कार्यक्रम वनाए जायं कि जनता के मन में यह विश्वास उत्पन्न हो जाय कि संग्रहालयों में समय-समय पर स्वयं जाते रहना तथा अपने वच्चों को भेजते रहना उतना ही शिक्षाप्रद है जितना कि विद्यालयों में जाना और भेजते रहना।

वस्तुत: संग्रहालय एक ऐसी संस्था है जहाँ आकर बालक, युवक, वृद्ध सभी अपना ज्ञान-वर्धन स्वयं, वस्तुओं को देख-देख कर करते हैं। कोई उन्हें स्कूलों की भांति पुस्तकों को पढ़ा-पढ़ा कर नहीं वताता। इस नवीन प्रणाली से प्राप्त किया हुआ ज्ञान गहन और टिकाऊ होता है क्योंकि यह नेत्रों के द्वारा मस्तिष्क में एक तस्वीर खींच देता है जो जीवन-पर्यन्त रहता है। 'मैंने स्वयं सीख लिया और जान लिया' यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक संतुष्टि है जो 'मुझको पढ़ाया गया और बताया गया' में कभी भी नहीं होती। प्रथम में 'स्व' की भावना कुंठित नहीं होती किन्तु द्वितीय में यह होती ही है। यही कारण है कि हर देश की शिक्षा-प्रणाली में दृष्टिगत शिक्षा को ही वैज्ञानिक माना जाने लगा है। यह दृष्टिगत शिक्षा तो हमें संग्रहालयों से ही मिलती है जहाँ वस्तुएं स्वयं संग्रहीत रहती हैं जिन्हें देखा जा सकता है और जिनकी परीक्षा की जा सकती है।

आज का हर समझदार शिक्षक अपने विद्यार्थियों को बार-बार संग्रहालय ले जाता है। एक-एक वस्तु को उन्हें पास से दिखाता है और यदि आवश्यक समझता है तो कहता है कि उनका चित्र बनाओ ताकि उन सभी आवश्यक बातों को वह दिखा सके और समझा सके जो कि विद्यार्थी एक सरसरी दृष्टि डालने पर नहीं देख पाता।

विद्यालयों के बाहर भी आज जन-समुदाय में संग्रहालयों को देखने और उनमें रखी हुई वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रचलन हो चुका है क्योंकि संग्रहालयों ने अपने को अब शिक्षा का माध्यम बनाना स्वीकार कर लिया है। इस विषय की पूर्ति के लिए नये-नये उपायों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काम में लाया जा रहा है। संगृहीत वस्तुओं तथा संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित चल-चित्रों को समय-समय पर दिखाना अथवा समय-समय पर किसी जानकार ज्ञानी का भाषण चित्रों या वस्तुओं को दिखा-दिखाकर कराना, रेडियो और समाचार पत्रों में अपनी संगृहीत वस्तुओं के बारे में जानकारी देते रहना, नवीन प्रकार से वस्तुओं को सजाना और उनके पास छोटे-छोटे परिचयात्मक लेबिल लगाना तथा दर्शकों को समझाने के लिये जानकार भाषणकर्ता को रखना आदि कई उपाय काम में लाए जाते हैं।

संग्रहालय अब जन-साधारण के जीवन का आवश्यक अंग होता जा रहा है। 'जीवन में एक बार संग्रहालय हो आये तो पर्याप्त है, क्योंकि बार-बार एक ही वस्तु को देखने से लाभ क्या' कभी-कभी ऐसा सुना जाता है, किन्तु यह बात यथार्थता से दूर है क्योंकि अब तो जनता में वह भावना आ गई है कि किसी भी प्राचीन वस्तु को फेंकने की अपेक्षा संग्रहालय में भेज देना चाहिए। यही नहीं, सक्रिय प्रयास से भी वस्तुएं एकत्रित की जाती हैं। यही कारण है हर संग्रहालय एक वट-वृक्ष की भांति सदा बढ़ता रहता है और हर बार आपको नई वस्तुएं देखने को मिलती हैं। समय-समय पर वस्तुओं को बदला भी जाता है जिससे हर वस्तु जनता के ज्ञान तक पहुँच सके। यही नहीं समय-समय पर संग्रहालय में अस्थायी रूप से प्रदर्शिनी भी की जाती है - ये अस्थायी प्रदर्शिनी किसी एक प्रकार की ही वस्तुओं को प्रदर्शित करने के लिए लगाई जाती हैं। इसका ध्येय यह है कि जनता का ध्यान इस ओर खींचा जाय कि उनके पास यदि वैसी ही वस्तुएं रखी हों तो वे उनको संग्रहालय ले जायें ताकि गड़ी हुई चीजें बाहर आ जायं। इसके अलावा इसका उद्देश्य यह भी है कि एक ही दृष्टिकोण से एक प्रकार की वस्तुओं के बारे में अधिक ज्ञान लोगों को हो। उदाहरण के लिए एक अस्थायी प्रदर्शिनी राजपूत कला की हो सकती है।

प्रदर्शिनी चाहे स्थायी हो अथवा अस्थायी संग्रहालयाध्यक्ष यह कभी नहीं भूलता कि संग्रहालय में जन-साधारण अपने अवकाश के समय मनोरंजन करने अधिक आता है ज्ञान-प्राप्त करने कम अतः वह सदैव इन दोनों उद्देश्यों का समन्वय रखता है—लिखता कम है सजाता अधिक है, किन्तु तब भी इस ढंग से नहीं सजाता जैसे कि बाजार के गहने, उसके सजाने का ढंग सुरुचिपूर्ण होता है, रंगों और दोषों को चटकीला नहीं रखता, कारण स्पष्ट है ज्ञान-विज्ञान की वस्तुओं को दुकानदारी का सौदा उसे नहीं बनाना है। अतः दर्शकों की रुचि का परिमार्जन भी होता रहता है।

संग्रहालयाध्यक्ष अपने हर प्रकार के दर्शकों को जानता है कि अमुक वस्तु के बारे में उसे किस प्रकार और कितना ज्ञान अलग-अलग प्रकार के दर्शक को देना है। यहाँ कुतूहलता को लिए एक आरम्भिक कक्षा का विद्यार्थी भी आता है और ऊँची कक्षा का एक गवेषणा करने वाला स्नातक भी, एक अशिक्षित ग्रामीण भी आता है और एक शिक्षित जिज्ञासु भी। वह हर एक के ज्ञान-स्तर को अच्छी तरह पहिचानता है और उन्हें वस्तुओं के सामने ले जाकर उन्हीं के स्तर के अनुरूप समझाता है। जहाँ सामान्य दर्शक को वह वस्तु की केवल सुन्दर अद्भुतता, प्राचीनता और सामाजिक ज्ञान की महत्ता भर ही समझा कर सन्तुष्टि पा लेता है, वहीं वह एक स्नातक को गवेषणात्मक परिचय की हर जानकारी भी देता है।

हमारे देश में स्थान-स्थान पर और घर-घर में न जाने कितनी प्राचीन वस्तुएँ दबी पड़ी है, अनेक वस्तुओं के मूल्य और उनकी महत्ता का ज्ञान तक नहीं होता। न जाने कितने सोने, चाँदी, ताँबे के सिक्के और मोहरें हम गला देते हैं, न जाने कितनी प्राचीन पुस्तकों के पन्ने जिनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी-कभी तो अत्यन्त सुन्दर चित्र बने होते हैं फाड़-फाड़ कर हम पुड़िया बना डालते हैं, न जाने कितने कागज या ताड़ के पत्तों पर के चित्र हम यों ही टाँगे टाँगे धुएं और धूल से बर्बाद कर डालते हैं, न जाने कितनी मूर्तियों को हम केवल आँगन में या किसी पेड़ के नीचे रखकर यदा-कदा फूल-पत्ती चढ़ाने लग जाते हैं और न जाने कितने मिट्टी के खूबसूरत खिलौने और बर्तन-भांड़े हम तोड़-फोड़ कर फेंक देते हैं या बच्चों को खेलने के लिए दे देते हैं। ये सभी प्रकार की वस्तुएँ या तो हमारे घरों में पुश्त-दर-पुश्त से रखी हुई चली आ रही हैं या स्त्रियों के गहनों में जड़ा दी गई हैं, या अपने घर-मकान बनाते समय नीव वाले गड्ढों में से अचानक निकलती हैं और या तो गांव के आस-पास प्राचीन कला की बस्तियों के भग्नाववेष, जो अब ऊँचे टीले या टीम्बे के रूप में खड़े दीखते हैं उनके सतह पर या उनमें कटी बरसाती नालियों में पड़ी हुई मिलती हैं।

जरा सोचिए तो, इन्हीं स्थानों की ऐसी ही वस्तुओं में न केवल हमारे प्राचीनतम गौरव के इतिहास का भंडार भरा पड़ा है, वरन् इन्हीं वस्तुओं से सम्पूर्ण देश का माथा स्वाभिमान से ऊँचा होता है। कितने दुःख की बात है कि अज्ञान के कारण हम इन्हें नष्ट कर देते हैं। संग्रहालयों के इस नये आन्दोलन में हम में से हर एक का यह नैतिक कर्तव्य है कि हम ऐसी वस्तुओं की, जब और जहाँ मिले, सूचना तत्काल अपने संग्रहालय में एक पोस्टकार्ड डालकर भेज दें ताकि उनकी उचित सुरक्षा हो जाय और आपको भी पारितोषिक मिल जाय। किसी भी ऐसी वस्तु को नष्ट कर देना या किसी व्यक्ति को बेच देना एक जुर्म है।

संग्रहालय में या राज्य सरकार को समर्पण करने के दो लाभ हैं—प्रथम, तो यह कि सरकारी 'ट्रेजर ट्रोव' नियमों के अनुसार हमें वस्तु का जितना अपना मूल्य होता है, उससे एक चौथाई और अधिक धन मिल जाता है, जैसे यदि एक सोने का सिक्का पौन तोले का हुआ और बाजार में इतने सोने का मूल्य १००) है तो आपको इसके बदले १२५) मिल जायगा जबकि गलाने पर केवल १००) का ही सोना बचेगा और उस पर भी अगर सरकारी कर्मचारी को पता चल गया तो आप दण्डनीय होंगे। सुन्दर प्राचीन वस्तुओं पर जो गड़ी न मिली हों, और भी अधिक से अधिक दाम मिल सकता है। दूसरे, यह कि जो वस्तुएं यों ही पड़े-पड़े नष्ट हो जायेंगी या जिनसे केवल परिवार के ही कुछ व्यक्ति लाभ उठायेंगे उसकी अपेक्षा संग्रहालय में उन्हें नए वैज्ञानिक तरीकों से सुरक्षित करके आने वाले सहस्रों वर्ष तक सम्पूर्ण समाज, देश और उन पर छपने वाली पुस्तकों के द्वारा संसार लाभ उठाता रहेगा—आपका और आपके वंश का सदैव नाम रहेगा। सोचिए तो आप थोड़े में ही कितनी बड़ी सेवा कर रहे हैं ?

जैसे आप अपने पिता और पितामह की वस्तुओं को जान-जान कर स्वाभिमानित होते हैं वैसे ही आप अपने इस संग्रहालय की वस्तुओं को देख-देख कर देश और जाति के प्रति स्वाभिमान से जागरूक होंगे, ऐसा हमें विश्वास है। यहां आपकी अपनी वस्तुएं हैं; प्राचीन और नवीन वस्तुएं हैं। इनमें ज्ञान का भंडार है—एक बार में न देखा जा सकता है न जाना। ऐसे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तो बार-बार आना होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम कक्ष

मूर्ति-शिल्प

सरस्वती मन्दिर के प्रवेश-द्वार के दाहिनी ओर भित्ति के सहारे भगवान् बुद्ध की ध्यानस्थ मूर्ति है जो दर्शकों का ध्यान बरबस ही खींच लेती है। इस शुभ्र प्रतिमा के नीचे धम्म-पद का एक वाक्य अङ्कित है। 'सारे प्रमादी जीवन की अपेक्षा जागृति का एक दिवस श्रेष्ठ है'—यह सन्देश ही वह पद देता है। निकट ही एक छोटा-सा द्वार है जिस पर संगमर्मर की शिला-पट्टिका पर संग्रहालय का नाम अङ्कित है। इस द्वार और घुमावदार जीने को पार कर दर्शक ऊपर पहुँचता है। उस समय तक उसे यह कल्पना भी नहीं होती कि क्षण भर में उसकी दृष्टि के आगे कला की ऐसी सृष्टि होगी। स्वयं स्वामी केशवानन्द जी को भी सम्भवतः यह आभास न होगा कि उनका रोपा पौदा एक दिन वट-वृक्ष बन जावेगा और उनकी संग्रहीत वस्तुयें सरस्वती मन्दिर की ऊपरी मंजिल के सारे खण्ड पर अपना अधिकार जमा लेंगी। कुछ समय के लिये संग्रहालय को देखने की उत्कण्ठा से आया हुआ दर्शक भले ही इस बात का अनुभव न करे किन्तु स्वामी जी तथा संग्रहाध्यक्ष इस बात को पूर्णरूपेण अनुभव करते हैं कि संग्रहालय की आवश्यकता और कक्षों के वर्गीकरण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए संग्रहालय के लिये एक पृथक् भवन की आवश्यकता है।

ऊपर के खण्ड में पहुँच कर संग्रहालय के मुख्य द्वार के एक ओर दर्शक को मिट्टी की छोटी पर्वत-आकृति दिखलाई देती है, जिस पर विविध प्रकार के; भांति-भांति के रंग के पत्थरों के टुकड़े लगे दिखाई देते हैं। कला और पुरातत्व की दृष्टि से भले ही इस नमूने की कोई उपयोगिता और महत्व न हो किन्तु वह स्वामी जी की लगन का एक प्रतीक अवश्य है। जिस समय उन्होंने हिमालय की यात्रा की थी, उस समय वे विविध प्रकार के, अनेक रूप-रंग के इन पत्थरों का संचय अपनी झोली में लाये थे। प्रवेश-द्वार के दूसरी ओर रंगमहल की एक ईंट प्रस्तर-शिला पर जमा कर रख दी गई है। उसके निकट ही शीशे की, दीवाल में लगी अलमारी में संस्था के प्रकाशन रखे हैं। पाषाणों के नमूने के निकट, मानसरोवर का 'माडल' है। वहीं विविध आकृतियों और अलंकारों से युक्त मुग़लकालीन 'टाइल्स' जड़े हैं।

मुख्य-द्वार से दर्शक एक लम्बी कला-बीथिका (गैलरी) में प्रवेश करता है। इसमें दोनों ओर कुषाणकाल से उत्तर-मध्यकालीन शिल्प तक के अनेक नमूने काल-क्रमानुसार रखे हैं। पहले यहाँ राजघाट की मृण्मूर्तियों का संग्रह भी था जो स्वामी जी महाराज को भारत-कलाभवन के सौजन्य से प्राप्त हुआ था। उसके लिए अधिक प्रकाश की आवश्यकता का अनुभव कर पृथक् कक्ष में स्थानान्तरित कर दिया गया।

राजकीय संग्रहालयों का अपना एक क्षेत्र होता है। उस क्षेत्र में मिली या खुदाई से उपलब्ध प्रतिमा उस संग्रहालय का मूल्य बढ़ाती है। संस्था के इस संग्रहालय को ऐसी कोई सुविधा नहीं मिली, जो जनपद का अकेला संग्रहालय होने के कारण उसे मिलनी आवश्यक थी। जो कुछ भी नमूने इस कक्ष में दिखलाई देते हैं, वे स्वामी जी के व्यक्तिगत प्रयास का ही फल हैं। इस दिशा में उन्हें अपने मित्र श्री राय कृष्णदास जी से बहुमूल्य सहयोग मिला है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत का मूर्ति-शिल्प

भारत में धर्म और कला का अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा। साधक ने अपने आराध्य की जिस छबि को मानस-चक्षुओं के आगे देखा उसी को शिल्पी ने अपनी छैनी और हथौड़े से साकार रूप दिया। भव्य समारोहों में, इन प्रस्तर-प्रतिमाओं की देवालय में प्राण-प्रतिष्ठा हुई। किसी व्यक्ति-विशेष के मनोरंजन लिए इन प्रतिमाओं का सृजन नहीं हुआ, जनता के उपासना के क्षणों के निमित्त यह गढ़ी गईं। काल के प्रवाह में अनेक राजवंश बह गये, गांव मिट गये पर यह प्रतिमायें आज भी उनके युग की साक्षी दे रही हैं। धर्मान्ध आक्रमणकारियों ने उन्हें अंग-भंग कर डाला; जिन मंदिरों में शंख ध्वनि के साथ उनका पूजन होता था, वे धूल में मिल गये और उन प्रतिमाओं को संग्रहालयों में संरक्षण मिला। भिन्न-भिन्न कालों में अनेक शिल्प-शैलियों का उदय हुआ। उन शैलियों की प्रतिमायें आज इस महादेश के भिन्न-भिन्न भागों में दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी अपनी लाक्षणिकतायें हैं, जिनके आधार पर उनकी शिल्प-शैली और काल का निर्णय किया जाता है। भारत में सबसे पुरातन प्रतिमायें मोहेंजोदड़ो की हैं, जहाँ से भारतीय इतिहास का श्री गणेश होता है। सिन्ध की घाटी के प्राचीन नगरों की खुदाई में प्राप्त होने वाली यह प्रतिमायें किस उद्देश्य को लेकर बनाई गईं; स्मृति-रक्षा या उपासना—यह आज नहीं कहा जा सकता। इनमें एक पुरुष-मूर्ति जो ध्यान लगाये बैठी है, अपनी ओर अधिक ध्यान खींचती है। मोहेंजोदड़ो के प्राक्-ऐतिहासिक काल के पश्चात् इतिहास के पटल पर एक गहरा कुहासा छा जाता है जिसे पार कर देख सकने में समीक्षक के नेत्र असमर्थ हैं। ईसा से पूर्व छठी-सातवीं शताब्दी से भारतीय इतिहास की खोई हुई शृङ्खलायें मिलने लगती हैं। अनेक जातक-कथायें व उपनिषद् इसी युग के हैं। जातकों से ज्ञात होता है कि उन दिनों शिल्प का विकास हो चुका था। चित्रकार, स्वर्णकार, दन्तकार आदि समस्त शिल्पी 'कर्मकार' कहलाते थे और अपने-अपने समाज बनाकर रहते थे।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के भव्य प्रासाद का वर्णन किया है जिसमें भाँति-भाँति की मूर्तियाँ बनी हुई थीं। दुर्भाग्यवश आज वे नमूने हमें उपलब्ध नहीं हैं।

भारतीय कला के सबसे पुराने नमूने यक्ष-यक्षणियों की आदमकद मूर्तियाँ मानी जाती हैं। इतिहासकार इन्हें शैशुनाक काल की मानते हैं। यह मूर्तियाँ चुनार के पत्थर की बनी हुई हैं। शैशुनाक तथा नन्दकाल ७२७ ईसा पूर्व से ३२५ ईसा पूर्व तक माना जाता है। मथुरा ज़िले के परखम नामक स्थान पर एक विशालकाय प्रतिमा मिली है और उसके निकट ही बारोदा ग्राम में लगभग बारह फुट की एक अन्य यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है। इन प्रस्तर प्रतिमाओं में यक्ष बड़े बलिष्ठ तथा स्थूल-काय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिखलाये गये हैं। वे घुटनों तक की धोती पहने हैं और छाती पर उत्तरीय बंधा है, जिसका एक छोर बाहर लटक रहा है। उनके गले में मोटे कंठे और मालायें दिखलाई देती हैं। पटना के निकट इसी वर्ग की दो अन्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई थीं, जिन्हें कुछ इतिहासकार यक्ष-मूर्ति और कुछ नन्द वंश के उदयनन्द और नन्दिवर्धन की मानते हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नारी-मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। कुछ विद्वान् शैशुनाक काल की इन यक्ष-प्रतिमाओं को मौर्य-काल की भी मानते हैं।

मौर्य-युगीन कला के सर्वश्रेष्ठ नमूने अशोकीय स्तम्भ हैं। यह स्तम्भ चुनार के लाल पत्थर के हैं और पैंतीस-छत्तीस फुट ऊँचे हैं। उनके ऊपर शीर्ष-भाग है जिस पर गज, सिंह और वृषभ आदि की बड़ी ओजवती और प्राणवान मूर्तियाँ हैं। समूचा स्तम्भ एक ही पत्थर को काटकर बनाया गया है और उसमें गोलाई दी गई है। इसी प्रकार ऊपर का शीर्ष-स्तम्भ भी एक ही पत्थर का है। मौर्य-कला की विलक्षणता यह है कि यह स्तम्भ तथा इस काल की प्रतिमायें शीशे सी दमकती हैं। उन पर एक ओप है, जिससे इतनी चिकनाई आ गई है। मौर्य-युग के बाद की शिल्प-कृतियों में यह ओप दिखलाई नहीं देता। अशोक-युगीन तेरह स्तम्भों का पता अब तक लग चुका है। वे सारनाथ, साँची (मध्य प्रदेश), रुम्मिन देई (नेपाल), कौशाम्बी (इलाहाबाद के निकट), मुजफ्फ़रपुर, चम्पारन (लौरिया नन्दन गढ़,, रमपुरवा व रढ़िया ग्राम में) तथा दिल्ली में हैं। इनमें से सारनाथ के सिंह शीर्ष-स्तम्भ को हमारे भारतीय गणतन्त्र ने अपनी महामुद्रा के रूप में ग्रहण किया है। इन स्तम्भों में गोल खम्भे पर एक पतली-सी मेखला रहती है और उसके ऊपर एक पंखुड़ियोंदार कमल रहता है। इस कमल की पंखुड़ियाँ नीचे की ओर मुड़ी रहती हैं, इसीलिये इसे कुछ विद्वानों ने घंटा की आकृति भी समझा है। कमल के ऊपर एक नक्काशीदार कंठी रहती है, जिसके ऊपर गोल अथवा चौकोर चौकी रहती है। इस चौकी पर भी अलंकरण रहता है। रमपुरवा के अशोकीय स्तम्भ की गोल चौकी पर कुछ पक्षी उत्कीर्ण किये गये हैं और सारनाथ के सुप्रसिद्ध सिंह शीर्ष-स्तम्भ पर चौकी में चार दिशाओं में चार धर्म-चक्र दिखलाये गये हैं। उनके बीच में भारत के चार प्रमुख पशु गज, अश्व, वृषभ और सिंह हैं।

चौकी के ऊपर पशुओं की बड़ी सजीव आकृतियाँ बनाई जाती थीं और उनके ऊपर एक बड़ा धर्म-चक्र प्रतिष्ठित किया जाता था। रमपुरवा के एक अशोकीय स्तम्भ पर वृषभ की बड़ी सुगढ़ आकृति है। उसके अंग-प्रत्यंग इतने सुडौल हैं कि सजीव से जान पड़ते हैं। इस समय यह वृषभ-युक्त शीर्ष-स्तम्भ नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय की निधि है। इस शिल्प-कृति के सम्बन्ध में श्री राखालदास वंद्योपाध्याय ने लिखा था कि समस्त भारतीय शिल्प में वृषभ की इससे श्रेष्ठ तथा प्राणवान आकृति अन्य नहीं है। अशोकीय स्तम्भों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि यह सब एक ही समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में नहीं बने क्योंकि उनमें एक क्रमिक विकास की परम्परा दिखलाई देती है। सारनाथ का नमूना इनमें सर्वश्रेष्ठ है। इसकी चौकी के ऊपर सिंहों की बड़ी सजीव प्रतिमायें हैं। इस शीर्ष-स्तम्भ के सम्बन्ध में मैंने अपनी पुस्तक 'कला के प्राण : बुद्ध' में लिखा है—

"अशोकीय स्तम्भों में सारनाथ का सिंह-शीर्षक स्तम्भ सर्वश्रेष्ठ है। इसकी चौकी पर हाथी, बैल, सिंह और घोड़ा हैं। ये चारों दौड़ते हुए आंके गये हैं। इनके बीच में चार धर्म-चक्र हैं। यह चारों पशु मूलतः भारतीय हैं और वे प्राचीन युग में चारों दिशाओं के प्रतीक के रूप में उत्कीर्ण किये जाते थे।

सिंह, शौर्य, निर्भीकता और स्फूर्ति का प्रतीक है; गज, चातुर्य, बिचारशीलता और ऐश्वर्य का। वृषभ और अश्व आर्यों के वे प्रिय पशु हैं; जिनमें से एक के सहारे उन्होंने भूमि को उर्वरा बनाया और दूसरे को साथ लेकर राज्य का विस्तार किया। चौकी के ऊपर चार सिंहों की बड़ी ओजवान आकृतियाँ हैं। वे चारों दिशाओं की ओर मुँह किये बैठे हैं। उनका प्रत्येक अंग बड़ी कुशलता से बनाया गया है। पैरों की शिरायें तनी हैं। कान खड़े हैं। सिंहों के अयाल भी बड़ी सफ़ाई से काटकर बनाये गये हैं। संसार के शिल्प में पशुओं का इतना प्राणवान अंकन नहीं हुआ। इनकी पलकों में छोटे-छोटे गोल छेद हैं, जिनमें मणिक्य फंसा दिये जाते होंगे और सिंहों के नेत्र दीप्तिमय हो उठते होंगे।"

मौर्यकालीन कला के पश्चात् द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व में सांची के तोरणों का सृजन-कार्य दिखलाई देता है। सांची भोपाल के निकट है। वहाँ एक ऊँची पहाड़ी पर तीन बौद्ध स्तूप बने हुए हैं। उनमें जो सबसे बड़ा स्तूप है, उसके चारों ओर वेष्ठिनी तथा चारों दिशाओं में चार तोरण हैं। इन तोरणों के प्रस्तर-शिल्प के कारण ही सांची इतनी अधिक प्रख्यात् हो गई है। यह तोरण अथवा द्वार चौंतीस-पैंतीस ऊँचे हैं और उन पर अर्ध-चित्र अथवा उभारी हुई प्रतिमाओं में भगवान् बुद्ध के जीवन प्रसंग तथा जातक दिखलाई देते हैं। यद्यपि इनमें धार्मिक प्रसंगों को लिया गया है फिर भी यह कला-जीवन के अधिक निकट है और आध्यात्मिक पक्ष की अपेक्षा यह पक्ष अधिक सबल भी है। वेसन्तर जातक, छदंत जातक, बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण आदि को बड़ी सफलता के साथ कोरा गया है। सांची की कला मानों अर्ध-मुकुलित कलिका है, जिसका खिला हुआ रूप गुप्त-कालीन कला में दृष्टिगोचर होता है। कमलों के अलंकृत रूप, जल-कुम्भ और श्री देवी के अनेक अंकन बड़े अनूठे हैं।

विंध्य-प्रदेश (वर्तमान मध्य-प्रदेश) में सतना के निकट भरहुत का भी ऐसा ही बौद्ध स्तूप था, जो भग्न हो गया है। उसकी वेष्ठिनी तथा तोरण कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईसा की प्रथम शताब्दी के प्रथम प्रहर में भारतीय कला की दो शिल्प-शैलियों का अभ्युदय हुआ। उनमें से एक गन्धार प्रदेश में पनपी जहाँ ईसा-पूर्व दूसरी तथा प्रथम शताब्दी में बैक्टीरियन राजाओं ने शासन किया था। यह नृपति स्वयं बौद्ध थे और बौद्ध धर्म, कला व संस्कृति के प्रश्रयदाता थे। मिलिन्द, जिन्होंने भिक्षु नागसेन से 'मिलिन्द प्रश्न' में अपनी शंकाओं का समाधान किया, इन्हीं राजाओं में से थे। उनके पश्चात् इस प्रदेश पर शकों का अधिकार हुआ। देवानाप्रिय सम्राट् अशोक के समान ही महाराज कनिष्क का नाम बौद्धधर्म के प्रश्रयदाताओं में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस प्रकार गन्धार में इस शिल्प-शैली को बड़ी अनुकूल भूमि प्राप्त हुई। शकाधिपति कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर थी, जहाँ के भव्य स्तूप का वर्णन चीनी महापर्यटक फाहियान, ह्यूआन् चुआंग और सुंगयुन ने किया है। पुष्कलावती, तक्षशिला आदि इस उपत्यका के प्रमुख नगर थे।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्यान्ह से गन्धार प्रदेश में भगवान् बुद्ध, बोधिसत्वों व महायान के देव-देवियों की प्रतिमायें बननी प्रारम्भ हो गईं। यही समय महायान के उदय का भी माना जाता है। गन्धार शैली में स्वात की घाटी में पाये जाने वाले सफ़ेद व सिलहटी पत्थर की असंख्य प्रतिमायें गढ़ी गईं। यह परम्परा चौथी शताब्दी तक चलती रही। इन मूर्तियों पर इनका रचनाकाल और अन्य कोई लेख उत्कीर्ण नहीं मिलता। किसी बुद्धघोष द्वारा संघ को अर्पित की हुई कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय की बुद्ध-प्रतिमा व लाहौर संग्रहालय को हारिति की मूर्ति आदि इसके अपवाद हैं।

गन्धार शैली के अंकन के विषय व प्रतिमा की भाव-भंगी आदि पूर्णतः भारतीय हैं किन्तु बनावट पर ग्रीक अथवा यूनान की कला का पूर्ण प्रभाव है। विषय-वस्तु की दृष्टि से गंधार मूर्तिकला बड़ी समृद्ध थी। भगवान् बुद्ध के तो जीवन का शायद ही ऐसा कोई प्रसंग हो जिसे गंधार शैली के तक्षक ने न छुआ हो। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि इसी शिल्प-शैली में सबसे पहले तथागत की प्रतिमा गढ़ी गई। डा० आनन्द के० कुमारस्वामी व श्री काशीप्रसाद जायसवाल आदि विद्वान् इसका श्रेय मथुरा-शैली को देते हैं, जिसका उदय कुषाण-सातवाहन काल में ही मथुरा में हुआ। गंधार के मूर्तिकार के मानस-चक्षुओं के आगे आदर्श रूप में अपोलो की मूर्ति थी, बलिष्ठ शरीर, उभरी माँस-पेशियाँ—गंधार-शिल्प-शैली में एक बहुत बड़ी कमी यह भी थी कि उसके कलाकारो के पास अंतर की अनुभूति न थी। मैंने अपनी पुस्तक 'कला के प्राण: बुद्ध' में इस सम्बन्ध में लिखा है।

"कला का स्रोत, कलाकार के अन्तर की प्रेरणा होती है। अजंता के अंधेरे गुहा-गृहों को केवल अंतर के प्रकाश से ही आलोकित कर उन दिव्य चित्रावलियों की रचना हो सकती थी। गंधार शैली के कारीगर को यह प्रेरणा न मिल पाई थी।

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी कृतियाँ फरमाइशी चीजें थीं । कलाकार के पास आदेश पड़े थे और उन्हें उसे निबटाना था अतः वह बिना कोई अनुभूति जगाये, मशीन की भाँति मूर्तियाँ बनाता चला गया। यदि ऐसी मूर्तियाँ रसानुभूति जाग्रत करने में समर्थ न हों तो क्या आश्चर्य ?'' गंधार-शैली की मूर्तियाँ संख्या में इतनी अधिक हैं कि देश या विदेश का कोई संग्रहालय ऐसा नहीं हैं जिसमें इस शैली का कोई नमूना न हो। कलकत्ता और लाहौर संग्रहालय के कक्ष इसकी प्रतिनिधि-प्रतिमाओं से सजे हुए हैं। यह शैली कैसे उत्पन्न हुई ? यह प्रश्न विवादास्पद है। गंधार शैली के उदय और विकास के विविध सोपान दृष्टिगोचर नहीं होते। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों किसी राजाज्ञा से शिल्पी-समुदाय पाषाण और छैनी लेकर बैठ गया और उसने अगणित मूर्तियां कोर डालीं। यद्यपि भारतीय कला पर इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा फिर भी इसकी कुछ देनें हैं। बौद्ध मूर्तियों में आराध्य के मुख के पीछे प्रभा-मंडल की रचना सबसे पहले इसी शैली में हुई। गुप्त-कालीन कला में इस प्रभा-मंडल को पुष्पों, कलिकाओं और उड़ते हुए गन्धर्वों आदि से अलंकृत कर दिया गया।

जिस समय पेशावर, तक्ष-शिला आदि केन्द्रों में गंधार-शैली का कलाकार भगवान् बुद्ध की जीवन सम्बन्धी प्रतिमायें गढ़ने में लगा हुआ था, उसी समय मथुरा में एक आदर्शोन्मुखी तथा सर्वथा भारतीय शिल्प-शैली का उद्भव हो रहा था। भारतीय कला के इतिहास में इसे 'मथुरा-शैली' का नाम दिया गया है। पाश्चात्य कला-समीक्षकों ने 'मथुरा-शैली' की मूर्तियों पर 'गन्धार-कला' का प्रभाव खोजने की निष्फल चेष्टा की है। वस्तुतः मथुरा के शिल्पियों ने अपनी पूर्व-परम्परा शैशुनाक काल की विशाल प्रस्तर-प्रतिमाओं और जैन-मूर्तियों से ग्रहण की।

मथुरा-कला की विशाल बुद्ध और बोधिसत्व-प्रतिमायें लाल पत्थर की बनाई गई हैं जिस पर सफेद चित्ती रहती है। यह पाषाण मथुरा के निकट ही सीकरी नामक स्थान से निकलता था। इसमें एक चमक रहती है, जिससे इस शैली की पहचान में सहायता मिलती है। इसकी लाक्षणिक विशेषतायें यह हैं—

"कुषाण-कालीन बौद्ध-मूर्तियों की घनपात्रता, चतुरस्रता और विशालता बहुत प्रसिद्ध है। इस युग की मूर्तियां कोरदार बनाई जाती थीं। इनकी बनावट गोल होती थी और पृष्ठालम्बन न होता था। इस युग की प्रतिमाओं का मस्तक मुण्डित रहता था। गुप्त-काल की तरह कुंचित केश (उष्णीष) नहीं पाये जाते परन्तु शिर पर ककुद् जैसा उभार रहता है जो चक्राकार होते हैं। माथे पर ऊर्णा रहती है परन्तु मूंछों का नितान्त अभाव है। प्रतिमाओं के वस्त्र व्यावर्तित होते हैं अर्थात् कपड़ों पर तह पड़ी रहती है। प्रायः मथुरा-कला की मूर्तियों के दाहिने कन्धे पर वस्त्र नहीं रहता है। प्रतिमा का दाहिना हाथ अधिकतर अभय-मुद्रा में पाया जाता है। खड़ी मूर्तियों में बाँया हाथ संघाटी को धारण किये दिखलाया गया है। बैठी हुई मूर्तियों में बांया हाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
उस पर अवलम्बित है। कुषाण कालीन मथुरा-कला में प्रतिमाओं का निर्माण पद्मासन पर नहीं किया था। उनमें सिंहासन पाया जाता है। खड़ी मूर्तियों के दोनों पैरों के नीचे सिंह की आकृति बनी रहती है। मूर्तियों का प्रभा-मंडल अनलंकृत रहता है परन्तु किनारों पर वृत्ताकार चिन्ह दिखलाई पड़ता है।"[1]

मथुरा शैली की प्रतिमायें सुदूर बौद्ध केन्द्रों में प्राप्त हुई हैं, इससे वह ज्ञात होता है कि ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में यह शिल्प-शैली बहुत प्रख्यात् रही है। कुषाणों का साम्राज्य काफ़ी दूर तक फैला था। सारनाथ में उनका महाक्षत्रप रहता था। सारनाथ के संग्रहालय में बोधिसत्व की एक खड़ी हुई विशाल प्रतिमा है जिसको महाराज कनिष्क के राज्य-काल के तीसरे वर्ष में भिक्षुबल ने बौद्ध बिहार में प्रतिष्ठित कराया था।[2] "बलिष्ठ शरीर, चौड़ी छाती, गोल भरा हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, छोटी गर्दन और मुंडित मस्तक—ऐसा लगता है कि मथुरा का कोई मल्ल ही सामने आकर खड़ा हो गया है।" मथुरा संग्रहालय में भी ऐसी ही एक मूर्ति है, जिसके नीचे 'बोधिसत्व' अंकित है। इसमें बोधिसत्व एक चौकी पर बैठे हैं, जिस पर नीचे की ओर सिंह की तीन आकृतियाँ हैं। मथुरा की कला में बड़े मनोहारी वेदिका-स्तम्भ भी मिलते हैं, जिन पर यक्षिणियों की विविध भावमयी मुद्रायें दिखलाई देती हैं। कुषाण कालीन मूर्तियों में भारत कला-भवन की प्रसाधिका मूर्ति भारतीय कला के श्रेष्ठतम नमूनों में रक्खी जाने योग्य है। इसमें सुगन्धित जल का एक भृङ्गार-पात्र लिये एक स्त्री खड़ी है। कुषाणकालीन मथुरा में लोक-जीवन का बहुत सजीव चित्रण हुआ है। बुद्ध, बोधिसत्व की प्रतिमाओं के अतिरिक्त इनमें यक्ष-यक्षिणियों के क्रीड़ा-दृश्य भी दिखलाई देते हैं।

ईसा की जिन प्रारम्भिक शताब्दियों में गंधार और मथुरा प्रदेशों में उपरोक्त शिल्प-शैलियाँ फूल-फल रही थीं, उन्हीं दिनों दक्षिणापत्य में एक मूर्ति-शैली का उदय हो रहा था। अमरावती इसका प्रमुख केन्द्र था इसीलिये इसे 'अमरावती की कला' कहा जाता है। यह स्वतः में स्वतन्त्र शैली थी। गंधार और मथुरा की कला का इस पर तनिक भी प्रभाव न था। अमरावती, मद्रास के निकट वर्तमान गंटूर जिले में है। इस भू-खंड में द्वितीय तथा प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में आंध्र नृपतियों का शासन था। आंध्र के राजा कला को प्रोत्साहन देना जानते थे। कन्हैरी तथा नासिक के भव्य गुहा गृहों के निर्माण का श्रेय इस वंश के शासकों को ही प्राप्त है।

---

१ गुप्त साम्राज्य का इतिहास, वासुदेव उपाध्याय, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ० २५६।

२, कैटलौग आफ मथुरा म्युजियम, डा० फोगेल,—भूमिका पृष्ठ १८।
मूर्ति पर दो लेख अङ्कित हैं—
(१) भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो (सहा)।
(२) महा क्षत्रपेन खरपल्लानेन सहा क्षत्रपेन वनस्परेन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आंध्र अथवा सातवाहन दक्षिणापथ का एक अत्यन्त शक्तिशाली राजवंश था जिसने द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी तक शासन किया। उनकी राजधानी पश्चिमी भारत का नगर प्रतिष्ठान था जहाँ अब भी उनके स्मारक उपलब्ध होते हैं। अमरावती उनकी पूर्वी भाग की राजधानी थी। सातवाहनों ने स्तूप के चारों ओर एक वेदिका अथवा वेष्ठिनी बनवाई। यह वेदिका छ: सौ फीट की थी और उसकी ऊँचाई चौदह फीट के लगभग थी। वेदिका की रचना के अतिरिक्त उन्होंने स्तूप के निचले भाग को संगमर्मर के शिला-फलकों की दोहरी पंक्ति से ढंक दिया। यह कार्य द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व से सन् २५० तक हुआ। वेष्ठिनी तथा शिला-फलकों पर भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रसंग, जातक, अवदान व राजसभाओं के दृश्य आदि गहरे उभार के साथ बनाये गये हैं। अमरावती की कला का प्रारम्भिक अंश भरहुत के समकालीन है। उसका सबसे सुन्दर, निखरा रूप द्वितीय शताब्दी का है। डा० शिवराम मूर्ति ने अमरावती के शिल्प का निर्माण-काल चार भागों में विभाजित किया है।

स्तूप के लगभग सोलह हजार वर्ग फुट स्थान को संगमर्मर के शिला-पट्टों से आच्छादित किया गया था, जिस पर अनेक दृश्य, पशु, मानव और विविध प्रकार के शोभायुक्त अलंकरण उत्कीर्ण किये गये थे। स्तूप अब भग्न हो चुका है। उसकी श्रेष्ठ-तम प्रतिमायें अंग्रेजों के शासनकाल में ब्रिटिश संग्रहालय में भेज दी गईं। कुछ मद्रास के राजकीय संग्रहालय में संरक्षित हैं।

अमरावती के शिल्प की विशेषता यह है कि वह सांची व भरहुत की लोक-कला तथा गुप्तकाल की पूर्ण विकसित कला के बीच की शृङ्खला है। उसमें भक्ति-भावना की वह झलक है जिसने गुप्त-काल में अध्यात्म-प्रधान शिल्प का रूप ले लिया। आकृतियों में भाव-भंगिमायें आगे लगी हैं, शरीर के परिमाण का ध्यान रखा जाने लगा है, शिल्प में लालित्य भरने लगा है।

"Never so far was the delicate and voluptuous beauty of human form so richly and luxuriously conceived and never were technical skill and efficiency more adequate for realisation of the conception."

लावण्यमयी नारियों और सुन्दर पुरुषों के चित्रण के अतिरिक्त अमरावती के शिल्पियों ने अत्यन्त सुन्दर कमल, बेलें तथा मंगल घट भी बनाये हैं जिनकी शोभा अनूठी है। अमरावती के कर-कमलों से पूर्ण घट का अलंकरण कला की एक उत्कृष्ट कृति माना जाता है।

गुप्तकाल भारत का स्वर्णकाल माना जाता है। प्रतापी गुप्त सम्राटों के संरक्षण में भारतीय मूर्ति-कला, चित्र-कला और वास्तु-कला आदि की समान रूप से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्नति हुई । महाराज समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य आदि सम्राटों को रण-विद्या ने मानों वरण किया था किन्तु वे कला और संस्कृति के उन्नायक भी थे। उनके समय में भारतीय कला का शतदल पद्म खिल गया। दक्षिणापत्य को सम्राट् समुद्र-गुप्त ने अपनी दिग्विजय के समय जीत लिया था किन्तु उन्होंने न केवल चेदि प्रान्त व महाराष्ट्र का भाग वाकाटक सम्राट् रुद्रसेन को दे दिया अपितु अपनी कन्या प्रभा-वती को उनके पौत्र के साथ व्याह दिया। इस प्रकार गुप्त और वाकाटक एक-दूसरे के निकट सम्बंन्धी बन गये। इसीलिये इस युग में पुष्पित तथा पल्लवित कला को गुप्त-वाकाटक कला का नाम दिया जाता है। इस प्रकरण में हम केवल प्रस्तर-शिल्प की चर्चा करेंगे। गुप्त-कालीन मृण्मूर्तियों के सम्बन्ध में भी हम पृथक् अध्याय में लिख रहे हैं। वास्तुकला और मूर्ति-कला का घनिष्ठ सम्बन्ध है। गुप्त सम्राट् स्वयं वैष्णव थे और उनकी उपाधियों ने 'परम भागवत्' शब्द मिलता भी है किन्तु उनका दृष्टि-कोण अत्यन्त उदार था। यही कारण है कि उनके शासनकाल में जहां अहोले का विष्णु मन्दिर बना वहीं बौद्धों के अजन्ता और बाघ जैसे कला-मण्डपों की रचना भी हुई। गुप्त नृपतियों ने अशोकीय स्तम्भों की परम्परा को नये स्तम्भ बनवा कर सजीव रखा। गुप्तकालीन स्तम्भों पर अशोक स्तम्भों जैसा ओप नहीं दिखलाई देता किन्तु उनके स्तम्भ अलंकरण की दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं। उनमें अनेक कोण दिखलाई देते हैं। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का बनवाया ध्वज-स्तम्भ दिल्ली में महरौली में अब तक विद्यमान है। यह एक लौह-स्तम्भ है। गुप्तों के स्तम्भों के शीर्ष-भाग पर बहुधा गरुड़ की (जो विष्णु का वाहन था) आकृति उत्कीर्ण दिखलाई देती है। गुप्त सम्राटों के शासनकाल में अनेक स्तूपों, बौद्ध विहारों, गुहा-गृहों और मन्दिरों का निर्माण भी हुआ। इस युग में ही सारनाथ के प्रसिद्ध धमेख स्तूप पर स्वस्तिक, नालयुक्त कमल तथा विविध अलंकरण अङ्कित किये गये। इस प्रस्तरांकन के शेष अंश अब भी धमेख स्तूप पर दिखलाई देते हैं। गुप्तकाल में ही भेलसा के निकट उदयगिरि में गुहा-गृह का निर्माण हुआ। इसका श्रेय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय को दिया जाता है। अजन्ता तथा बाघ की कुछ गुफायें भी इसी काल में बनीं तथा उनकी भित्तियों पर मनोहारी चित्रों का सृजन हुआ।

गुप्तकाल में प्रतिमाओं में नवीनता आ गई। इससे पूर्व के मौर्य, शुङ्ग और कुषाण-शिल्प में आराध्य के मुख पर सौन्दर्य के साथ चिन्तन की ऐसी झलक नहीं दिखलाई देती जैसी कि गुप्तकालीन प्रतिमाओं में।

मथुरा की कला का उत्तरोत्तर विकास होता गया। वह दिनों-दिन मंजती गई। मथुरा की कुषाण-कालीन मूर्तियों में जहाँ नाक चपटी और चेहरा कुछ चौड़ा सा मिलता है, वहाँ गुप्त-शैली की मूर्तियों में नाक नुकीली तथा चेहरे में कुछ गोलाई दिख-लाई देती है। आराध्य के वस्त्र हल्के और पारदर्शक रहते हैं। शरीर के अंग उनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से झलकते हैं। संघाटी दोनों कंधों को ढके हुए लटकती है और उसके छोरों से ही, पता चलता है कि आराध्य के शरीर पर वस्त्र भी हैं। गुप्तकाल की बौद्ध-मूर्तियों की एक विशेष पहचान यह भी है कि उनके सिर के बाल दक्षिण की ओर मुड़े रहते हैं और उष्णीष रहता है।

गुप्त कला के मथुरा और सारनाथ प्रमुख केन्द्र रहे हैं। इस युग की कला का मथुरा का सर्वोत्कृष्ट नमूना भगयान् बुद्ध की खड़ी हुई मूर्ति है। श्री राय कृष्णदास ने लिखा है :

"इस मूर्ति के मुख-मंडल पर शांति, करुणा और आध्यात्मिक भाव का अपूर्व सम्मिश्रण है, साथ ही एक स्वाभाविक स्मित भी है। भगवान् निष्कंप प्रदीप की भाँति खड़े हैं, किन्तु उस ढवन में कहीं भी जकड़बन्दी नहीं है। उनके वस्त्र के सलों की रेखायें बड़ी कला-पूर्ण हैं।" इस प्रतिमा में भगवान् के कानों में लम्बे कुण्डल हैं। उनके केश दक्षिणावर्तिन हैं। उनके एक हाथ में संघाटी का छोर है। दूसरा हाथ अभय मुद्रा में उठा होगा जो कि भग्न हो गया है। बुद्ध के मुख के पीछे अलंकरणयुक्त कमल का विशाल प्रभा-मंडल है, जिसके पद्म-कोष को भगवान् का मुख ढके हुए हैं।

सारनाथ भी गुप्त कला का एक महान् केन्द्र समझा जाता है। भारतीय मूर्ति कला की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा सारनाथ की वह बुद्ध-मूर्ति ही है जिसमें वे धर्म-चक्र मुद्रा में बैठे हैं। इस प्रतिमा की श्री हैवल, श्री कुमारस्वामी और श्री ओ. सी. गांगुली आदि सभी कला-समीक्षकों की मुक्त-कंठ से सराहना की है। श्री मदनमोहन नागर ने लिखा है :

"यह मूर्ति शिल्पियों की पराकाष्ठा को प्रकट करती है। बुद्ध द्वारा मृगदाव में किये धर्म-चक्र प्रवर्तन के मूल में जो आध्यात्मिक भाव था, उसी को एक सहस्र वर्षों के बाद यहाँ के चतुर शिल्पी इस मूर्ति द्वारा हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने में सफल हुए। देवादिदेव भगवान् बुद्ध के मुख पर जो प्रशान्त भाव तथा आनन्द की मुद्रा है, उसके कारण यह मूर्ति भारतवर्ष की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में से एक गिनी जाती है।"

गुप्त-कालीन हिन्दू प्रतिमाओं में भगवान् विष्णु के दशावतार की मूर्तियाँ बड़ी सजीव और भव्य हैं। उदयगिरि की वाराह प्रतिमा तथा देवगढ़ की विष्णु की शयन मूर्ति भारतीय कला के श्रेष्ठतम नमूनों के बीच रखी जा सकती है। मयूर पर आसीन कुमार कार्तिकेय की गुप्त-कालीन प्रतिमा भारत-कला भवन काशी की निधि है।

गुप्त-साम्राज्य के अन्त के साथ भारतीय कला के पराभव का काल भी प्रारम्भ हो जाता है। पूर्व-मध्य काल (६०० ई० से ९०० ई० तक) के शिल्प पर गुप्तकालीन कला का प्रभाव है किन्तु उत्तर मध्य काल (९०० ई० से १३०० ई० तक) की मूर्तियों में एक प्रकार की रूढ़िता और जड़ता दिखलाई देने लगती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व मध्य-काल के प्रस्तर-शिल्प के प्रमुख कला-मंडप एलोरा, एलीफैन्टा, मामल्लपुरम् और बादामी आदि हैं। एलोरा की गुफाओं में ब्राह्मण (हिन्दू) बौद्ध और जैन सभी धर्मों की शिल्प-कृतियों के दर्शन होते हैं। वहाँ उत्तर से दक्षिण की ओर सवा मील तक तैंतीस गुफाओं की श्रृङ्खला चलती गई है। एलोरा में पत्थरों को काटकर कैलाश जैसे विशाल मंदिर बनाये गये हैं, जिन्हें देखकर दर्शक आश्चर्य से चकित रह जाता है। सीता की नहानी, रामेश्वर गुफा तथा रंग महल आदि में पौराणिक कथाओं को प्रस्तरांकित किया गया है। इनमें शिव के नृत्य-दृश्य बड़े अनूठे हैं। दो थल, तीन थल और विश्वकर्मा गुफा आदि में बिहार और चैत्य हैं जिनमें बुद्ध, ध्यानी बुद्ध और पद्मपाणि व वज्रपाणि बोधिसत्व की बड़ी बड़ी प्रतिमायें हैं। बौद्ध गुफायें संख्या में बारह हैं और वे छठी शताब्दी से आटवीं शताब्दी तक बनी हैं। जैन गुफाओं में इन्द्र सभा और जगन्नाथ सभा है। इनमें ऐरावत पर बैठे देवराज इन्द्र की मूर्ति शिल्प में प्रसिद्ध है। एलोरा के मूर्ति-शिल्प में विशाल मूर्तियाँ हैं; ओजवती भी हैं किन्तु लावण्य और भाव-व्यंजना की दृष्टि से वे गुप्तकाल के शिल्प से हेय हैं। उन दिनों तंत्रयान का प्रभाव था इसलिये उत्तर मध्य-कालीन मूर्ति-शिल्प में आराध्य के (उनकी विविध क्रियाओं के प्रतीक) रूप अनेक भुजायें हैं।

एलीफैन्टा अथवा धारापुरी की गुफायें बम्बई के निकट हैं। इसमें महेश्वर की त्रिमूर्ति, भैरव का उग्र रूप, उमा तथा शिव का विवाह व योगिराज शिव की बड़ी भव्य मूर्तियाँ हैं। यह मूर्ति-शिल्प आठवीं शताब्दी का है। मामल्लपुरम् या महाबलीपुरम् के विशाल मंदिरों को रथ कहा जाता है। इसमें भागीरथ की तपस्या का दृश्य बहुत प्रसिद्ध है।

उत्तर मध्यकाल में कोणार्क, भुवनेश्वर, खजुराहो आदि के मन्दिर बने। इन देवालयों में असंख्य मूर्तियाँ भी बनाई गईं। मन्दिर का कोई भाग ऐसा नहीं छोड़ा गया जिस पर कला का कोई अभिप्राय या मूर्ति न हो। इसमें बहुत सी अश्लील मूर्तियाँ भी हैं। उत्तर मध्य-काल की इन मूर्तियों में भाव-व्यंजना की अपेक्षा, शरीर की भंगिमाओं में बल खाती देह की मरोड़ की ओर अधिक ध्यान रक्खा गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कक्ष का प्रस्तर-शिल्प

विवरण

गन्धार-शिल्प

(१ ली शताब्दी से ३०० ई० तक)

अ. १—बोधिसत्व

गन्धार, मस्तक-खण्ड, काला सिलहटी पत्थर, तीसरी शताब्दी, पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर) से उपलब्ध ।

भारतीय शिल्प की अन्य शैलियों की भाँति गन्धार कला में भी भगवान् बुद्ध का परिधान योगियों जैसा और बोधिसत्वों की वेष-भूषा तथा आभूषण आदि राजाओं जैसे कोरे गये हैं। बुद्ध, वह है जिसे साधना से बुद्धत्व की उपलब्धि हो गई है और बोधिसत्व वह, जिसके मन में बुद्धत्व की कामना का उदय हो चुका है। इस मस्तक-भाग में बोधिसत्व के सिर पर पगड़ी है। गन्धार कला में पुरुषों के सिर पर भाँति-भाँति की पगड़ियाँ दिखलाई देती हैं। इन पगड़ियों पर मूर्तियों की झूलती मालायें दिखाई पड़ती हैं और शीर्ष-पट्ट भी जो पगड़ी के फेंटों को बिगड़ने नहीं देता। इस मूर्ति-खण्ड में पगड़ी जूड़े के ऊपर बंधी है, जैसा कि उस युग में प्रचलन था। बीच में एक गाँठ लगी है और उसके ऊपर कोई रत्न लगा है। पगड़ी का ऊपर का भाग टूट गया है।

गंधार शिल्प-शैली पर ग्रीक-कला का अत्यधिक प्रभाव है। सौन्दर्य में शिल्पी का आदर्श अपोलो है इसीलिये वह बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं में उनके शरीर को मांसल तथा बलिष्ठ दिखलाता है तथा मुख को भरा हुआ जैसा कि इस मस्तक-भाग को देखने से स्पष्ट हो जाता है। गन्धार शिल्प-शैली में बोधिसत्वों की मूर्तियों में बड़ी-बड़ी मूँछें भी दिखलाई जाती हैं जो इसमें नहीं हैं। बोधिसत्व के नेत्र अर्ध-उन्मीलित हैं, मानों चिन्तन में लीन हों। यह भारतीय कला का प्रभाव है। ऊँचाई ५.५."

कुषाण-सातवाहन काल का शिल्प

(५० ईसा-पूर्व से ३०० ई० तक)

अ. २—पुरुष

मस्तक भाग, सफेद भुरभुरा पत्थर, कुषाण-सातवाहन काल। यह किसी पुरुष के मस्तक का भग्न भाग है, जिस पर पगड़ी बंधी हुई है। पुरुष के लम्बी मूँछे हैं। अपनी लाक्षणिक विशेषताओं के कारण यह कुषाण-सातवाहन काल की मूर्ति जान पड़ती है।

अ. ३—बौना

प्रस्तर मूर्ति, कुषाण-सातवाहन काल। इस मूर्ति में एक नाटे व मोटे पुरुष को दिखलाया गया है, जिसके गले में माला है। इस प्रकार की बौनों की आकृतियाँ साँची और भरहुत के शुंगकालीन शिल्प में भी दिखलाई देती हैं। उनमें वे दोनों हाथों से बड़ेरियों को साधे हुये दिखाये जाते हैं। ऊँचाई ७"

अ. ४—नारी-मूर्ति

प्रस्तर, सारनाथ, कुषाण सातवाहन काल। नारी-मूर्ति का भग्न ऊर्ध्व-भाग, स्तन बड़े, गले में हार, दोनों आँखें छोटी-छोटी, पतला माथा। सौष्ठवहीन मुखाकृति। ऊँचाई ५.६"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त-कालीन मूर्तियाँ
(३०० ई० से ६०० ई० तक)

श्र. ५—गज

प्रस्तर, गुप्त काल, खण्डित श्राकृति, राजघाट से प्राप्त। चारों श्रोर से कोरकर बनाई गई यह गज-प्रतिमा किसी भवन या देवालय के सुशोभन के श्रभिप्राय से बनी जान पड़ती है। गज के पैर तथा सूँड भग्न हो चुके हैं श्रौर ऊपर गर्दन के पास बैठा महावत भी टूट चुका है, केवल उसके पैर शेष बचे हैं, जिसको वह हाथी की गर्दन में जकड़े हुये झुका हुश्रा सा बैठा जान पड़ता है। हाथी बहुत सुडौल है श्रौर उसे सजाने की चेष्टा की गई है। उसके ऊपर झूल है श्रौर माथे पर दोनों श्रोर मोतियों की लड़ियाँ झूल रही हैं। लम्बाई १४". ऊँचाई ८½."

श्र. ६—भगवान् बुद्ध की चरण-चौकी

भुरभुरा पत्थर, सारनाथ की गुप्त-कालीन शिल्प-कृति, राजघाट से उपलब्ध।

यह तथागत की मूर्ति का श्रधोभाग है, जिसमें पद्मासन लगाकर बैठे हुये बुद्ध के चरण तथा नीचे की चरण-चौकी दिखलाई देती है। इस चौकी के मध्य में धर्म-चक्र उत्कीर्ण है तथा उसके दोनों श्रोर दो सिंह उकड़ूँ बैठे हुये हैं। ऊँचाई ४·५"

श्र. ७—ऋषि-गण

प्रस्तर, गुप्त-काल, राजघाट से प्राप्त। इस प्रस्तर-खण्ड में दो ऋषि-मूर्तियां दिखलाई देती हैं। सुडौल चेहरा, नोकीली नाक, वेष व केश-विन्यास से यह शिल्प-कृति गुप्त-काल की निश्चित होती है। ऋषि धोती पहने हैं श्रौर उनके कन्धे पर उत्तरीय पड़ा है। उनके कन्धे पर यज्ञोपवीत है। माथे पर जटा-जूट है, जैसा कि देवगढ़ के गुप्त-काल के शिल्प में श्रहिल्या उद्धार के दृश्य श्रादि में दिखलाई देता है। गुप्त-युग की मूर्तियाँ या चित्रों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-वर्ग उन दिनों धोती श्रौर दुपट्टा का व्यवहार करता था। धोती का एक सिरा कमर में खुरसा रहता था। कहीं-कहीं वे वैकक्ष्य भी पहने दिखलाये गये हैं। दोनों ऋषियों का एक-एक हाथ श्रभय-मुद्रा में ऊपर उठा है। उनमें से एक के हाथ में दण्ड है। ऊँचाई ५."

श्र. ८—नारी-मूर्ति

खण्डित, मस्तक-भाग, प्रस्तर, गुप्त-कालीन। केश-विन्यास की दृष्टि से यह मस्तक-भाग श्रध्ययन के योग्य है। इसमें रमणी के केश-बन्ध में एक श्रोर जूड़ा बँधा है। गले में हार है। ऊँचाई ८·५"

श्र. ९—नारी-मस्तक

खण्डित, प्रस्तर, गुप्त-कालीन, राजघाट से प्राप्त। लम्बा केशबन्ध, उसके ऊपर मुक्तावलियाँ, मुख पर मन्द स्मित, किसी देवी के सिर का भाग। ऊँचाई ६·"

श्र. १०—देव-मूर्ति

भुरभुरा पत्थर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। बैठी देवमूर्ति, जिसके एक हाथ में त्रिशूल श्रौर दूसरे में कलश है। पीछे मकर श्राकृति है। यह किस देवता की मूर्ति है, यह स्पष्ट नहीं होता। ऊँचाई ५"

श्र. ११—नारी-मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। वृक्ष की डाल को एक स्त्री श्रपने एक हाथ से थामे हुये खड़ी है, दूसरा कटि पर रक्खा हुश्रा था जोकि भग्न हो चुका है। मुख-भाग के पीछे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रफुल्लित कमल का प्रभा-मण्डल, जिस पर अलंकरण है। इस प्रकार का अलंकरणयुक्त प्रभा-मण्डल गुप्तकालीन-कला की एक विशेषता है। प्रभा-मण्डल के दोनों ओर ऊपर कमलनाल लिये दो गंधर्व उड़ रहे हैं। जिस समय बुद्ध-माता महामाया देवी अपने पितृ-गृह देवदह से कपिलवस्तु को लौट रही थीं, उस समय लुम्बिनी वन में उनके पुत्र का प्रसव हुआ। उस क्षण वे एक हाथ से शाल-वृक्ष की एक शाखा को पकड़े हुये थीं। "अधिकारी देवी को लेकर शाल-वन में प्रविष्ट हुये। वह सुन्दर शाल के नीचे जा उस शाल (साखू) की डाली पकड़ना चाहती थी। शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेंत की छड़ी के नोक की भाँति मुड़कर देवी के पास आ गई। उसने हाथ फैलाकर शाखा पकड़ ली। उस समय उसे प्रसव-वेदना प्रारम्भ हुई। (बुद्धचर्या, पृष्ठ ३)" इस मुद्रा का अंकन भारतीय शिल्पियों को अत्यन्त प्रिय रहा है। साँची के तोरणों पर भी शाल-भंजिकाओं की आकृतियाँ दिखलाई देती हैं। अपने मूल-रूप में यह शिल्प-कृति बहुत सुन्दर रही होगी किन्तु यह अत्यधिक भग्न अवस्था में उपलब्ध हुई है। ऊँचाई १३"

अ. १२--बुद्ध

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। भगवान् बुद्ध सहज भंगिमा में खड़े हैं। उनके वस्त्र इतने झीने हैं कि शरीर के अंग प्रतिभासित हो रहे हैं। माथे पर जटाओं का मुकुट है। गुप्त-काल की बुद्ध-प्रतिमाओं में उनके केश दक्षिण की ओर मुड़े हुये रहते हैं और ऊपर जूड़ा रहता है किन्तु इस मूर्ति के मस्तक पर योगियों जैसा जटा-जूट है। उनकी मुद्रा अत्यन्त शान्त और सौम्य है। वे सहज भंगिमा में खड़े हैं, जिससे मूर्ति और भी लावण्यवती जान पड़ती है। गले में यज्ञोपवीत है। ऊँचाई ५·५"

अ. १३--पुरुष-मूर्ति का मध्य भाग

प्रस्तर, गुप्तकालीन राजघाट से प्राप्त। इस प्रतिमा के चरण, हाथ और मुख सभी भाग भग्न हो चुके हैं। केवल गले से कटि तक का भाग शेष है। गले में यज्ञोपवीत तथा कंठ में हार शोभित है। चौड़ा वक्ष और सिंह सी पतली कटि है। आराध्य के कटि भाग पर झीनी धोती है। मुख, हाथ और उनकी मुद्राओं के भंग हो जाने के कारण यह किसकी मूर्ति है, यह स्पष्ट नहीं होता। ऊँचाई ४·५"

अ. १४--देव-मूर्ति का मुख

खंडित मूर्ति, प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। सारा शरीर भग्न है। मुख के अतिरिक्त अन्य कोई भाग शेष नहीं है फिर भी सजीवता कायम है। मुख पर शांति की भावना है। नेत्र उन्मीलित हैं। ऊँचाई ४·५"

अ. १५--नारी-मुख

प्रस्तर, गुप्तकालीन लाक्षणिकतायें, राजघाट की खुदाई से प्राप्त। ऊँचाई ६·५"

अ.० १६--विष्णु योगासन मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन। यह चारों ओर से कोरी हुई मूर्ति नहीं वरन् किसी शिला-पट्टिका का भाग है। विष्णु एक चौकी पर पद्मासन लगाये बैठे हैं मानों कोई निष्कम्प प्रदीप हो। उनके चार हाथ हैं, जिनमें से तीन भग्न हो चुके हैं। एक हाथ में चक्र दिखलाई देता है। विष्णु के माथे पर लम्बा मुकुट है जिसमें रत्नालंकार जड़े हैं। उनके कंठ में मुक्तावली है तथा कटि में मोतियों की करधनी है। विष्णु के पीछे मकर-आकृति है। ऊँचाई ८·३"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ. १७––रमणी-मस्तक

प्रस्तर, गुप्तकालीन, नारी-मूर्ति के इस मस्तक-भाग में केश-विन्यास विशेष रूप से दर्शनीय है। बालों में मोतियों की झूमती हुई मालायें हैं, जिन्हें 'बल पार्श्व' कहा जाता था। मुख पर गुप्तकाल के शिल्प की लाक्षणिकतायें हैं। ऊँचाई ५·५''

अ. १८––नारी-मस्तक

पाषाण, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। सौन्दर्यवती मुखाकृति, ललाट पर तृतीय नेत्र की भाँति शोभित लम्बा तिलक, जूड़ासहित केश-विन्यास और उसके ऊपर लिपटी मोतियों की मालायें। ऊँचाई ७''

अ. १९––भुजा का बीच का भाग

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से उपलब्ध। इस मूर्ति-खंड से भुजा के प्राचीन अलंकारों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें भुजा पर केयूर है और रत्नजड़ित बाजूबन्द 'कटक' है। कलाई पर सुन्दर वलय है। सभी आभूषण बड़े कलापूर्ण हैं। ऊँचाई ५·५''

अ. २०––गन्धर्व

पाषाण, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। इस प्रस्तर-खंड में एक गन्धर्व सनाल कमल पुष्प लिये उड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। गुप्त कला में गन्धर्वों की उड़ती हुई आकृतियाँ सारनाथ व अजंता आदि की सभी शैलियों में दिखलाई देती हैं। कभी-कभी गन्धर्व अलंकृत प्रभा-मंडल के ऊपर दोनों ओर उड़ते दिखलाये जाते हैं। ऊँचाई ७·५''

अ. २१––योद्धा-मूर्ति

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। एक हाथ में धनुष और दूसरे में दो बाण लिये एक योद्धा किसी आधार या वृक्ष के सहारे खड़ा है। उसके सिर पर लम्बी टोपी है। ऊँचाई ७·५''

अ. २२––शिखरयुक्त मन्दिर––

प्रस्तर, गुप्तकालीन, राजघाट से प्राप्त। यह गुप्तकालीन मन्दिर का एक छोटा सा नमूना है। दक्षिणापत्य में शिखर की द्राविड़ शैली प्रचलित थी, जिसमें शिखर गोलाकृति का रहता था। नागर शिखर उत्तरापथ के देवालयों में दिखलाई देता है जिसमें शिखर की बनावट मन्दिर के गर्भ-गृह की छत से प्रारम्भ होती है और शिखा का आकार ले लेती है। यह मन्दिर इसी शैली का नमूना है। इसमें बनावट चारों कोनों से शुरू होकर, धीरे-धीरे टेढ़ी होती हुई एक बिन्दु पर आकर मिल जाती है। इस मन्दिर की आकृति में चारों दिशाओं के द्वारों में चार आकृतियाँ दिखलाई देती हैं (१) पुत्र को लिये देवी-मूर्ति, (२) गणेश (३) दण्ड लिये द्वारपाल, (४) आकृति अस्पष्ट है। ऊँचाई १४''

अ. २३––चक्र

प्रस्तर, लाल पत्थर, गुप्त-कालीन। चक्र की जो एक प्रतीक भी है, आकृति लम्बाई लिये है। उसमें सोलह धुरे हैं। ऊँचाई ७''

पूर्व मध्य-कालीन

(६०० ई० से ९०० ई० तक)

अ. २४––पार्वती-मूर्ति

मस्तक भाग, सफेद भुरभुरा पत्थर, सारनाथ, पूर्व मध्यकालीन। यह किसी देवी अथवा राज-महिषी की मूर्ति का भाग है। देवी के सिर पर लम्बा जटा-मुकुट है जिससे यह अनुमान होता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
कि यह देवि पार्वती की प्रतिमा का मस्तक-भाग है। जटा-मुकुट मोती की लड़ियों से बंधा है, जिस के बीच में रत्न दिखलाई देते हैं। ऊँचाई ७.६"

अ. २५--भैरव

प्रस्तर, कुछ कालापन लिए हुए, राजस्थान, पूर्व मध्यकालीन। भगवान शिव का उग्र-रूप। सिर के जटा-मुकुट में कपाल और चन्द्र दिखलाई देता है। शिव के ललाट पर उनका तृतीय नेत्र है। गले में मालायें तथा कानों में लम्बे कुण्डल हैं। तनी हुई भौहें, उठी हुई मूँछें और विस्फारित नेत्र उनके उग्र-रूप का आभास देते हैं। शिव की त्रिमूर्ति अथवा महेश्वर मूर्ति में उनका यह रूप मिलता है। भैरव की प्रतिमाएँ भी उपलब्ध होती हैं। ऊँचाई ६"

अ. २६--देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन। सौम्य मुख पर रत्न-जड़ित सुन्दर मुकुट शोभित है। गुप्त-कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ऊँचाई ८.४"

अ. २७--देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन। यह देवी मस्तक किसी कोरी हुई मूर्ति का खंड नहीं अपितु किसी शिला-पट्ट का भग्न भाग है। सुन्दर भावमयी मुख-मुद्रा, पतले ओंठ, कमल की पंखुड़ी से उन्मीलित नेत्र और कमान सी तनी हुई भौहें बरबस ही ध्यान आकृष्ट करती हैं। माथे पर कारण्ड मुकुट है, जिसमें रत्न जड़े हुए हैं। ऊँचाई ५.६"

अ. २८--देवी-मूर्ति

मस्तक भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य-कालीन, अलंकरणयुक्त कारण्ड मुकुट, और कानों में कुण्डल। ऊँचाई ५.६"

अ. २९--द्वारपाल

भग्न स्तम्भ का भाग, प्रस्तर, सारनाथ, पूर्व मध्य कालीन स्तम्भ के सहारे एक द्वारपाल खड़ा है। उसके शरीर पर अंगरखा और सिर पर पगड़ी है। उसका एक हाथ कमर पर रक्खा है और दूसरे में असि है। आकृति अस्पष्ट है। ऊँचाई ८"

उत्तर मध्य कालीन

(९०० ई० से १२०० ई० तक)

अ. ३०--देवी-प्रतिमा

प्रस्तर, उत्तर मध्य-कालीन। यह प्रतिमा भग्न हो चुकी है। हाथ की मुद्राएँ तथा आयुध टूट चुके हैं अतः यह कह सकना कि यह किस देवी की प्रतिमा है, सम्भव नहीं है। चार भुजाओं में केवल एक ही हाथ शेष है जिसमें कमल अथवा नीलोत्पल दिखलाई देता है। देवी के माथे पर लम्बा जटा-मुकुट, कानों में गोल कुण्डल और शृंखला है। भुजाओं और हाथों में केयूर तथा कंकण है। गले में हार है और पीन पयोधरों के मध्य में झूलती मुक्तावली है। ऊँचाई ८.२"

अ. ३१--उमा-महेश्वर

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। भगवान् शिव देवि उमा के साथ एक आसन पर बैठे हैं। उनका एक पैर नीचे रक्खा है। शिव की मूर्ति चतुर्मुखी है। उनके दाहिने हाथों में से एक वरद् मुद्रा में है और दूसरा त्रिशूल लिए हुए है। महेश्वर बांयें हाथ से उमा का जो उनकी जंघा पर बैठी हैं, आलिंगन कर रहे हैं। शिव तथा उमा रत्नाभूषण धारण किए हैं।

आसन के नीचे शिव का वाहन नन्दी है और उमा के नीचे उनके वाहन सिंह की अस्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
आकृति है। मूर्ति के पीछे प्रभा-मण्डल है और उसके दोनों ओर आकाशचारी पुष्प-मालायें लिए उड़ रहे हैं। ऊँचाई ८·२″

अ. ३२—उमा-महेश्वर

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। यह उमा-महेश्वर मूर्ति के नीचे का खंड है। इसमें शिव की जंघा पर पार्वती बैठी हैं। आसन के नीचे नन्दी और सिंह हैं। एक ओर एक पुरुष स्तवन करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। दूसरी ओर नारी-मूर्ति है। उमा के निकट गणेश की छोटी सी आकृति दिखाई देती है। ऊँचाई ८·५″

अ. ३३—वाराही

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। देवी के तीन मुख हैं, जिनमें से वीच का मुख नारी का, एक ओर का सिंह का और दूसरी ओर का शूकरी का है। देवी के चार हाथ थे, जिनमें से तीन भग्न हो चुके हैं। एक में दण्ड दिखलाई दे रहा है। देवी के नीचे उनका वाहन है, जिसका शरीर पशु का और मुख मानव का है। ऊँचाई ९″

अ. ३४—वक्ष-भाग

किसी देव-मूर्ति का खंडित वक्ष-स्थल, काला प्रस्तर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। चौड़े विशाल वक्ष-स्थल पर चौलड़ी मोतियों की माला और बीच में श्री वत्स का चिन्ह है। ऊँचाई ८.१″

अ. ३५—बोधिसत्व-मस्तक

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। यह पाल युग की बोधिसत्व की किसी मूर्ति का मस्तक भाग है। इसकी नासिका भग्न हो गई है। देवता के मस्तक पर लम्बा मुकुट है, जिसमें रत्न जड़े हैं। कानों में पत्र-कुंडल हैं। ऊँचाई ९″

अ. ३६—भूमि-स्पर्श मुद्रा में बुद्ध

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्य-कालीन। इसमें एक चैत्य में बुद्ध को बैठे हुए दिखलाया गया है। एक हाथ की उंगली से वे भूमि का स्पर्श कर रहे हैं। ऊंचाई ६″

अ. ३७—तीर्थंकर-मूर्ति

काला पत्थर, नालन्दा, उत्तर मध्यकालीन। शिला-पट्ट पर ध्यान-मुद्रा में बैठी २८ तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। बीच की मूर्ति अपेक्षाकृत बड़ी है। ऊँचाई ७·९″

अ. ३८—पार्वती

पाषाण, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। पार्वती की चतुर्भुजी प्रतिमा है, जिसकी दो भुजायें टूट गई हैं। दाहिने हाथों में से एक में त्रिशूल और दूसरे में खप्पर है। देवी सुखासन में बैठी हुई हैं। उनके सिर पर मुकुट, गले में हार और दोनों स्तनों के बीच में मोतियों की माला झूल रही है। उमा की गोद में गणपति हैं। ऊँचाई १७″

अ. ३९—सूर्य

पाषाण, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। यह एक स्तम्भ का भाग है जिसमें एक ओर बेल का अलंकरण है और वीच में तीन पैनल हैं। ऊपरी भाग में भगवान् सूर्य देव की मूर्ति है। उनके दोनों हाथों में प्रफुल्लित पद्म हैं। नीचे के पैनलों में उपासकों की आकृतियाँ हैं। ऊँचाई २६″

अ. ४०—जैन-प्रतिमा के खंड

संगमर्मर, पल्लू (राजस्थान) उत्तर मध्य-कालीन। यह पार्श्वनाथ तीर्थंकर मूर्ति के ऊपर तथा नीचे के दो खंड हैं। नीचे के भाग में चक्र है जिसके दोनों ओर दो हरिण बैठे हुए हैं और उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऊपर जैनों का प्रतीक-चिन्ह है। उसके दोनों ओर दो सिंह उकडू बैठे हैं। निचले खंड में दो मूर्तियाँ हैं। उनमें से एक माता तथा पुत्र की आकृति है और दूसरी दण्ड लिये द्वारपाल की।

ऊपर के खण्ड में तीर्थंकर पर छाया करने वाला सात फन का नाग-मुख है जिसके दोनों ओर आकाशचारी गन्धर्व हाथ में नाल सहित कमल लिये उड़ते दिखलाये गये हैं। उनके साथ उनकी वीणाधारिणी स्त्रियाँ हैं। फन के ऊपर आसन पर कोई देवता बैठा शंख वादन कर रहा है और दोनों ओर दो गज अभिषेक कर रहे हैं।

इस शिल्प-कृति की आकृतियाँ बड़ी सुन्दर हैं। इस नमूने को आबू के शिल्प के आस-पास के समय का माना जा सकता है। ऊँचाई, ऊपर का खंड, १६″ × २३″

नीचे का खंड १०·२″ × २३·६″

अ. ४१—देवी-मूर्ति

संगमर्मर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। यह किसी देवी की प्रतिमा हैं, जो व्याघ्र-चर्म पहने दिखलाई गई है। उनके गले में मुंडों की माला है। ऊँचाई ९″

अ. ४२—शिव

प्रस्तर, उत्तर मध्यकालीन। सहज भंगिमा में देवातिदेव शिव खड़े हैं। उनके माथे पर लम्बा जटा-मुकुट है और गले में हार है। उनका एक हाथ भग्न हो चुका है और दूसरे में वे त्रिशूल धारण किये हुए हैं। ऊँचाई ६″

अ. ४३—देवी-मूर्ति

प्रस्तर उत्तर मध्य-कालीन। देवी के समस्त हाथ भग्न हो चुके हैं अतः उनके हाथों में कौन से आयुध थे और यह किस देवी की मूर्ति है, यह कह सकना कठिन है। नीचे दो उपासक हैं। ऊँचाई ९.५″

अ. ४४—योद्धा

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। काठ के एक चौखटे में योद्धाओं की दो शिला-मूर्तियाँ अथवा गहराई देकर कोरे गये अर्ध-चित्र। योद्धाओं का वेष पूर्णतः राजस्थानी है, सिर पर पगड़ी, एक लम्बा जामा और ऊँची कछनीदार धोती। दोनों योद्धाओं के हाथों में तलवारें और उनका एक हाथ ऊँचा उठा हुआ है। ऊँचाई ८·५″

अ. ४५—वृद्ध राजा

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। वृद्ध राजा, जो वेश-भूषा तथा दाढ़ी-मूंछ आदि से राजस्थान का जान पड़ता है, अपने लम्बे धनुष के सहारे टिका हुआ कुछ विचार कर रहा है। राजा लम्बा अंगरखा पहने है। उसके कानों में कुण्डल और सिर पर मुकुट है। ऊँचाई ७·९″

अ. ४६—वृद्ध पुरुष तथा नारी

प्रस्तर, राजस्थान, उत्तर मध्यकालीन। वृद्ध श्रमिक दम्पत्ति, जिनमें बूढ़ा कुछ थका हुआ सा लाठी टेकते हुए चल रहा है और बुढ़िया के सिर पर टोकरी है। ऊँचाई ५·२३″

इन मूर्तियों के अतिरिक्त लक्ष्मीनारायण, मुस्लिम स्त्री का मस्तक व चतुर्भुजी विष्णु आदि आधुनिक मूर्तियाँ हैं, जिनका विवरण आवश्यक नहीं है। गणेश और उमा महेश्वर की मूर्तियाँ अस्पष्ट और अत्यधिक भग्न हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वितीय कक्ष

भारतीय कला

(प्राचीन)

प्रस्तर-शिल्प की कला-वीथिका को पार कर दर्शक एक विशाल 'हॉल' में प्रवेश करता है जिसे दो पृथक् कक्षों में विभाजित कर दिया गया है। एक कक्ष में भारतीय व नेपाली धातु-मूर्तियों को स्थान दिया गया है और दूसरे कक्ष में मध्यकालीय शस्त्रों को सजा कर रखा गया है। प्रथम कक्ष में, जिसे 'भारतीय कला' (प्राचीन) का नाम दिया गया है, मुगल शाहन्शाहों के बड़े-बड़े ताम्र-चित्र भी हैं।

नेपाल की धातु-मूर्तियों को इस कक्ष में (वर्गीकरण की दृष्टि से) रखना चाहिए अथवा नहीं, यह एक प्रश्न था किन्तु कई कारणों से उनको इस कक्ष में ही स्थान दिया गया है। नेपाल राज-नैतिक दृष्टि से एक स्वतन्त्र देश है किन्तु उसकी कला पर भारतीय-कला का इतना अधिक प्रभाव है कि वह उसके क्षेत्र के अन्तर्गत ही आ जाती है। कुछ प्रतिष्ठित कला-समीक्षकों का मत है कि नेपाल की धातु-कला भारतीय-कला की एक शैली-मात्र है। इस कक्ष में नेपाल तथा दक्षिणापत्य की प्रतिमाओं को साथ-साथ इसलिए भी रखा गया है कि दर्शक उनका तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। वर्तमान स्थिति में संग्रहालय भवन में इतना स्थान भी नहीं है कि नेपाल की कला के लिये एक पृथक् कक्ष की व्यवस्था की जा सके। संग्रहालय के स्वतन्त्र भवन के निर्माण के पश्चात् वह सम्भव हो सकेगा।

कक्ष की दीवारों पर विशाल ताम्र-चित्र लगे हैं। कक्ष में दीवाल से सटी हुई एक बड़ी शीशे की मूल्यवान अलमारी है जिसमें दो भाग हैं। उनमें से एक भाग में दक्षिण भारत व बंगाल की तथा दूसरे में नेपाल की धातु-मूर्तियाँ तथा अन्य कलात्मक वस्तुयें रखी हैं। उनके आगे उनका विवरण भी है। बड़ी वस्तुओं को पृथक् से चौकियों और आसनों पर रखा गया है। इस कक्ष के एक ओर के शीशे के शो-केसों में नेपाल के काष्ठ व मृत्तिका-शिल्प, बीदर की कलात्मक वस्तुयें आदि हैं। यह समस्त संग्रह श्री स्वामी केशवानन्द एम. पी. का ही किया हुआ है और इस पर लगभग पन्द्रह हज़ार रुपये का व्यय हुआ है किन्तु इसकी अधिकांश वस्तुयें अलभ्य हो चुकी हैं अतः उनके मूल्य का कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. भारत की कांस्य-प्रतिमायें व अन्य शिल्प

दक्षिणापत्य अपने गोपुरम्-युक्त विशाल मन्दिरों के लिये जितना प्रख्यात् रहा है, उतना ही अपनी भव्य, भावमयी कांस्य-प्रतिमाओं के लिये भी। सत्, चित् और आनन्द के प्रतीक नटराज की चोल-कालीन प्रतिमायें भारतीय कला की मंजूषा की वे मणियाँ हैं जिन पर उसे सदा गर्व रहा है। भारतीय शिल्पी ने नटराज के रूप में मानों सृष्टि की गति और ताल-बद्धता को ही साकार किया है। 'दीप इव प्रदीपत्' एक दीप की ज्योति से दूसरा दीपक जलता है; परम्परा अपनी पूर्व-परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करती है। दक्षिण की वे कांस्य-मूर्तियाँ, जिन्हें देखकर विश्व के कला-पारखी आश्चर्य-चकित रह जाते हैं, एक गौरवशालिनी परम्परा रखती हैं। कांस्य के कलाकारों ने यह परम्परा गुप्त, वाकाटक, चालुक्य और पल्लवों की प्रस्तर-शिल्प की उन कृतियों से ली है जो आज भी दक्षिणापत्य के गगन-चुम्बी मन्दिरों के वास्तु में परिलक्षित होती हैं। यों भारत में कांस्य-प्रतिमाओं का प्रारम्भ तो सिन्धु घाटी-सभ्यता के प्राक्-ऐतिहासिक युग में ही हो चुका था। मोहें जोदड़ो, चिन्न डोरो और हड़प्पा की खुदाई में जो अवशेष मिले हैं उनमें नृत्य-कन्या की एक धातु-प्रतिमा भी है।

मोहें जोदड़ो की यह नृत्यांगना जो इस देश के कला के इतिहास की एक मूल्यवान प्रारम्भिक कड़ी है, नई दिल्ली के नवनिर्मित राष्ट्रीय संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है। गले में हंसली और बाँये हाथ में कलाई से कंधे तक चूड़ियाँ पहने, यह अनावृत्त नर्तकी अपनी कमर पर एक हाथ रक्खे हुये इस प्रकार खड़ी है, मानो अभी थिरक उठेगी।[1] प्राक् ऐतिहासिक काल की यह कृति सौन्दर्य और कलात्मकता की दृष्टि से भले ही अधिक सफल कृति न मानी जावे; (शरीर के अनुपात में हाथ और पैर बहुत बड़े जान पड़ते हैं) फिर भी उसमें एक लय है, जो दर्शक को आकर्षित करती है—

"The rhythmic swing of the body is realistically portrayed and the modelling of the back and hips is very effective."[2]

सिन्धु-उपत्यका के निवासी सोना, चाँदी, जस्ता और ताँबे आदि धातुओं से भलीभाँति परिचित थे, यद्यपि लोहे की कोई वस्तु अब तक खुदाई में उपलब्ध नहीं हुई है। उपलब्ध वस्तुओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन दिनों ताँबे का उपयोग सर्वाधिक था। उसकी न केवल दैनिक उपयोग की वस्तुयें बनती थीं वरन् शस्त्र और आभूषणादि भी तैयार किये जाते थे। मोहें जोदड़ो में ताँबे की वृषभ व मनुष्य की आकृतियाँ भी प्राप्त हुई हैं।[3]

---

१. ए गाइड टू दी गैलरीज़ आफ दी नेशनल म्युज़ियम आफ इण्डिया, प्लेट १४.

२ एक्ज़वीशन आफ दी एशियाटिक आर्ट एण्ड आरक्योलौजी पृष्ठ २३.

३. आइक्न्स इन ब्रोन्ज़, थापर, प्लेट २.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आज हमें मौर्य और शुंग-काल (३०० ई० पूर्व से १०१ ईसा-पूर्व तक) की कोई प्रतिमा उपलब्ध नहीं होती किन्तु इसके अर्थ यह नहीं कि परम्परा की धारा इतिहास के अंधकार युगों में सूख गई थी। महाकाव्य इस बात की साक्षी देते हैं कि मोहें जोदड़ो के काल (२५०० ई० पूर्व) से ईसा की सदी के प्रारम्भ होने तक धातु-मूर्तियाँ बनती ही रही हैं। महाभारत में अंधे सम्राट् धृतराष्ट्र ने छल-वश भीम का आलिंगन कर उन्हें दबाकर मार डालने की दुरभिसन्धि की थी किन्तु उनकी इस योजना को विफल बना देने के लिये भीम की एक मनुष्याकार, सादृश्ययुक्त धातु-प्रतिमा अथवा लोह-मूर्ति बनाई गई थी।

रामायण में श्री रामचन्द्र ने यज्ञ के समय, उसे विधिवत् पूर्ण करने के लिये अपनी सहधर्मिणी सीता की स्वर्ण-प्रतिमा बनवाई थी। इतिहासकार महाभारत का समय ८०० ईसा-पूर्व तथा रामायण का रचनाकाल ३०० ईसा-पूर्व मानते हैं। इससे स्पष्ट है कि उन दिनों स्वर्ण-प्रतिमाओं का प्रचलन था। स्वर्ण, रजत अथवा ताम्र-मूर्तियों की परम्परा चल रही थी। प्रथम शताब्दी से हमें कांस्य-प्रतिमाओं की उपलब्धि होने लगती है। इनमें अमरावती की कांस्य-मूर्तियाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। डा० सी० शिवराम मूर्ति ने लिखा है, "प्रारम्भिक धातु की मूर्तियों में कृष्णा-उपत्यका की अमरावती की बुद्ध-प्रतिमायें हैं। अमरावती मथुरा की भाँति ही एक महान् केन्द्र था। उसकी धातु-प्रतिमायें, जो वहाँ के प्रस्तर-शिल्प से अत्यधिक सादृश्य रखती थीं, सीलोन, मलाया, जावा और बोर्नियो भेजी जाती थीं।"

चतुर्थ शताब्दी के मध्यान्ह में परम प्रतापी गुप्त-सम्राट् समुद्र गुप्त के राज्य-काल में बुद्ध की एक स्वर्ण-प्रतिमा ढाली गई थी, जिसमें रत्नों का जड़ाव किया गया था।[1] पाँचवीं शताब्दी में चीन के महापर्यटक फाहियान ने खोतन में गोमती महा-विहार और अन्य संघारामों की बुद्ध-प्रतिमाओं की उत्सव-यात्रा देखी थी, जो लगातार चौदह दिवस तक चलती रही थी।[2] सम्भव है कि यह धातु-मूर्तियाँ ही हों। सातवीं शताब्दी में श्यूआन् चुआङ् ने ऐसी ही उत्सव-यात्रा कान्यकुब्ज में देखी थी जिसमें भगवान् बुद्ध की तीन फुट ऊँची प्रतिमा को, जो सोने की बनी थी, सवारी के रूप में रेशमी वस्त्रों और मूल्यवान् रत्न-आभूषणों से सजाकर निकाला गया था। उसके ऊपर छत्र ताने हुए हर्षवर्द्धन स्वयं चल रहे थे। श्यूआन् चुआङ् ने अपनी भारत-यात्रा में कई विशाल धातु-मूर्तियाँ देखी थीं। उन्होंने वाराणसी नगरी में महेश्वर देव (महादेव) की ताँबे की एक ऐसी प्रतिमा देखी थी जो सौ फुट से कुछ ही कम ऊँची थी। उन्होंने लिखा है, "इस प्रतिमा का स्वरूप गम्भीर और प्रभावशाली है और यह सजीव सी विदित होती है।"[3]

१, हैण्डीक्राफ्टस एण्ड इंडस्ट्रियल आर्ट आफ इंडिया, पृष्ठ ४।

२. दी ट्रेवल ऑफ फाहियान, एच. ए. गाइल्स, पृष्ठ ५६।

३. हुएनत्सांग का भ्रमण-वृत्तांत, पृष्ठ ३२०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस समय चीन के उन विद्वान् श्रमण ने भारत से चिर-विदा ली, उस समय वे अपने साथ सूत्र और शास्त्र-ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ स्वर्ण और रजत की प्रतिमायें भी ले गये। उनके शिष्य हुइली ने अपने आचार्य के जीवन-चरित्र में निम्नलिखित मूर्तियों का उल्लेख किया है—"प्राग्बोधिगिरि की नागगुफा की बुद्ध भगवान् की छाया से सादृश्य रखती सोने की मूर्ति, धर्मचक्र-प्रवर्तन मुद्रा में; सोने के सिंहासन सहित ३ फुट ३ इंच ऊँची।

मगध के गृध्रकूट गिरि पर सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र को उपदेश करने की मुद्रा वाली, भगवान बुद्ध की चाँदी की मूर्ति, अत्यंत चमकीले सिंहासन सहित, ४ फुट ऊँची।"

गुप्तकाल की इनी-गिनी धातु प्रतिमायें मिली हैं जिन पर उस युग के प्रस्तर-शिल्प का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। भगवान् बुद्ध की एक विशाल मूर्ति, जिसकी ऊँचाई साढ़े सात फीट और वजन एक टन से भी अधिक है, भागलपुर (बिहार) के सुलतानगंज नामक स्थान से मिली थी। यह वही स्थान है जहां पाल वंशीय नृपतियों की सहायता से विक्रम शिला का महान् ज्ञान-केन्द्र फूला-फला था। इस मूर्ति में आराध्य का एक हाथ अभय-मुद्रा में ऊपर उठा है और दूसरे हाथ से वे उस संघाती का छोर पकड़े हैं जिससे उनके शरीर का ऊपरी भाग ढका हुआ है। संघाती पारदर्शी है और उसमें से उनके शरीरांग, वक्ष, स्कंध, नाभि और कटि-भाग झलक रहा है। उनके नेत्र अधमुंदे हैं और कानों में लम्बे कुण्डल हैं। इस धातु-प्रतिमा पर मथुरा की यश दिन्न की गुप्तकालीन प्रस्तर-मूर्ति का प्रभाव है। यह विशाल प्रतिमा बिरमिङ्हम संग्रहालय में है। गुप्तकाल की दूसरी भव्य प्रतिमा ब्रह्मा की है। यह कांस्य-मूर्ति मीरपुर खास से उपलब्ध हुई थी और अब करांची के संग्रहालय में सुरक्षित है।

भारतीय कला के इतिहास का अध्येता सातवीं शताब्दी के लगभग भारत के कई भू-खंडों में उत्कृष्ट धातु-मूर्तियों को निर्मित होते हुए देखता है। गुप्तकाल की अथवा उत्तर-गुप्तकाल की धातु-प्रतिमायें इनी-गिनी ही हैं किन्तु मध्य काल के प्रारम्भ में धातु अथवा कांस्य-प्रतिमाओं का प्रचलन बढ़ा। देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग शिल्प-शैलियों में अनेक प्रतिमाओं का सृजन हुआ। बिहार में नालंदा और कुर्किहार इस कला के महान् केन्द्र बने जिनके शिल्प की चर्चा हम इस लेख में ही कर रहे हैं। महाराज धर्मपाल और देवपाल के राज्य-काल में धीमान और बित्पाल नामक शिल्पी पिता-पुत्र रहते थे, जिनके लिये तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने लिखा है कि "उनकी मूर्तियाँ नागों की कला-कृतियों के समकक्ष हैं।" तेरहवीं सदी तक यह धारा बहती रही किन्तु उन्हीं दिनों मुहम्मद-बिन बख्तियार खिलजी के आक्रमण के कारण यह धारा सूख गई। इन शताब्दियों में न केवल बिहार अथवा बंगाल में—अपितु गुजरात, राजस्थान, दक्षिणापत्य व नेपाल में भी श्रेष्ठ धातु-प्रतिमायें बनीं। दक्षिण भारत में चोलराजाओं से पहले की भी कुछ धातु-मूर्तियाँ मिलती हैं किन्तु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस शिल्प का पूर्ण-विकास उन्हीं के शासन-काल में दृष्टिगोचर होता है। नटराज की परिकल्पना को मूर्तरूप देने का श्रेय भी चोलयुगीन शिल्पियों को ही प्राप्त है।

कांस्य और धातु-प्रतिमाओं में अधिकांश 'उत्सव-मूर्तियाँ' हैं। कुछ मूर्तियाँ आकार में बहुत विशाल बनाई जाती हैं। उनकी देवालय में एक स्थान पर ही प्रतिष्ठा कर दी जाती है। यह अधिकतर पाषाण की रहती हैं। इन्हें 'अचल' मूर्तियाँ कहते हैं।

मध्यम-आकार की, पाषाण की, धातु की अथवा काष्ठ की वे मूर्तियाँ 'चला-चल' कही जाती हैं, जिनको कठिनाई से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। 'चल' मूर्तियाँ धातु की बनी होती हैं और उन्हें सरलतापूर्वक उत्सव यात्राओं में रथ आदि पर रखकर ले जाया जाता है। उस समय उन्हें 'उत्सव-देवगण' भी कहते हैं। कुछ छोटी-छोटी मूर्तियाँ जिनकी देवालयों या मठों में पूजा की जाती है, "कौतुक मूर्तियाँ" कही जाती हैं। धातु या कांस्य की प्रतिमाओं में पीठिका पर दोनों ओर कड़े लगे रहते हैं। 'उत्सव-यात्रा' या सवारी के समय उन्हीं कड़ों में रस्सी डालकर मूर्ति को जकड़ दिया जाता है ताकि वह हिले अथवा गिरे नहीं।

जैसा कि हम कह चुके हैं, यह मूर्तियाँ ताँबे की अथवा पीतल की बनाई जाती थीं। कुछ मूर्तियों में कई धातुओं की मिलावट मिलती है। इन्हें 'पंच लौह' और 'अष्ट-धातु' की मूर्तियाँ कहते हैं। इनका अधिकांश भाग पीतल, ताँबे और रांगे का रहता था और अल्प मात्रा में चाँदी और सोना भी मिलाया जाता था।

दक्षिणापथ की धातु-मूर्तियाँ अथवा पीतल-मूर्तियाँ ठोस ढलाई में तैयार की गई हैं। इनको तैयार करने का एक विशेष तकनीक था, जिसे विदेशी कला-समीक्षकों ने 'लौस्ट वैक्स सिस्टम' कहा है। मूर्ति को ढालने से पहले शिल्पी मोम की एक आकृति तैयार कर लेता था। स्थपति आराध्य की जो मुद्रायें, आयुध अथवा वाहन काँस्य-मूर्ति में ढालना चाहता, उन सबका पीले रंग के मोम की इस मूर्ति में ही समा-वेश कर लेता। फिर मिट्टी में कुटे हुए भूसे आदि को मिलाकर एक पतला पलस्तर तैयार किया जाता और उसे मूर्ति पर चढ़ाकर सुखाने के लिये छाया में रख दिया जाता। मूर्ति के ऊपरी तथा नीचे के भाग में नलियाँ लगा दी जातीं और मोम की मूर्ति पर पलस्तर लगाते समय उनके मुख को छोड़ दिया जाता। मूर्ति पर दो पलस्तर और चढ़ाये जाते और जब वह पलस्तर काफ़ी मोटा हो जाता तब शिल्पी ऊपर की नली से पिघली हुई धातु को डालता। पलस्तर एकदम टूट न जाये, इसलिये वह उस पर ताँबे या पीतल का तार भी लपेट देता। स्थपति मोम की मूर्ति को तोल लेता था और फिर उसी अनुपात में धातु डालता था। यदि उसे पीतल या तांबे की मूर्ति ढालनी होती तो वह मोम की दस गुनी धातु डालता, यदि चांदी की तो बारह गुनी और सोने की सोलह गुनी। रसायनिक विधि से तैयार की हुई गर्म धातु जब मूर्ति के ऊपरी भाग की नली में से अन्दर प्रवेश करती तो उसकी गर्मी से मोम पिघल जाता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और नीचे की नली के द्वारा बाहर निकल जाता । उसका स्थान धातु ले लेती । इस प्रकार ढलाई में मूर्ति तैयार हो जाती । ऊपर का पलस्तर चटक जाता । उसे अलग कर दिया जाता । शास्त्रकारों ने स्थपतिओं को पोली मूर्तियाँ बनाने का निषेध किया था । मूर्ति के अलग-अलग अंगों को ढालकर उन्हें बाद में जोड़ना भी अच्छा नहीं समझा जाता था ।

नागपत्तन अथवा नागपट्टनम् से उपलब्ध २९४ कांस्य-प्रतिमाओं की विशाल राशि ने भारतीय कांस्य-प्रतिमाओं के इतिहास में एक नया महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है । नागपट्टनम् दक्षिण-भारत में पूर्वीय सागर तट पर एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था जहाँ से जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों से व्यापारिक सम्बन्ध चलते थे । यहाँ से इन द्वीपों जो भारतीय वस्त्र, मोती व हाथीदाँत आदि वस्तुयें जाया करती थीं । मानसोल्लास नामक प्राचीन ग्रन्थ में नागपट्टनम् के बन्दरगाह का भी उल्लेख किया गया है ।[1] नागपत्तम आठवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का केन्द्र रहा । चोल राजाओं का प्रभाव दूर-दूर तक फैला था । उनके जावा के शैलेन्द्र नृपतियों से भी सम्बन्ध थे । जावा और सुमात्रा के अनेक व्यापारी नागपत्तन में निवास करने लगे थे । राजेन्द्र चोल ने नागपट्टनम् में दो बौद्ध विहारों की रचना कराई थी जिनमें दूरागत् बौद्ध श्रमण ठहरा करते थे । यह महा विहार पन्द्रहवीं सदी तक विद्यमान थे । नागपत्तन से उपलब्ध महायान के आराध्यों की धातु-प्रतिमायें दक्षिण-भारत और इंडोनेशिया के सांस्कृतिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालती हैं क्योंकि इस शैली का स्पष्ट प्रभाव इंडोनेशिया की समकालीन प्रतिमाओं पर परिलक्षित होता है ।[2] चोल राजाओं के सम्बन्ध में राहुल जी ने लिखा है :

"आठवीं शताब्दी के अन्त में पल्लवों का ध्वंस करके दक्षिण-भारत में चोल-वंश अपनी शक्ति बढ़ाता है । परान्तक प्रथम ९०७ ई० में अपनी विजय-यात्रा आरम्भ करता है और महान् राजराज (९८५-१०१४ ई०) सारे दक्षिण को अपने आधीन कर लेता है । उसका पुत्र राजेन्द्र चोल (१०१४-४४) तो बंगाल तक अपनी राज्य-सीमा बढ़ाता है । चोलों का सामूहिक बल भी स्थल के समान ही विशाल था । उस समय लंका (सिंहल द्वीप) उनकी दया पर निर्भर करता था । बंगाल की खाड़ी को वे चोल-सरोवर बनाना चाहते थे और उनकी नौका-वाहिनी बर्मा, मलाया और सुमात्रा तक धावा बोलती थी ।...चोल राजराज ने नागपट्टन में शैलेन्द्र राज मारविजयोत्तुंग वर्मा के बनवाये चूड़ामणि विहार के लिये १००५ ई० में अनय मंगल नामक ग्राम प्रदान किया था, जिसे उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल ने भी पुनः स्वीकृत किया ।"[3]

---

१. मानसोल्लास २,६, १७-२०, सार्थवाह पृष्ठ २१४ ।

२. एक्ज़बीशन आफ एशियाटिक आर्ट एण्ड आरक्योलौजी, ४७, पृष्ठ ३८ ।

३. बौद्ध संस्कृति, श्री राहुल सांकृत्यायन पृष्ठ ९५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नागपट्टनम् की इन प्रतिमाओं में बुद्ध, मैत्रेय, अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, चतुर्भुजी लोकेश्वर तथा तारा आदि हैं। इन प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन धातु-मूर्ति बुद्ध की है जिसमें उनका एक हाथ अभय और दूसरा वरद मुद्रा में है। इस खड़ी हुई प्रतिमा में बुद्ध की सुलतानगंज की ७ वीं शताब्दी की भाँति ही भगवान् का सारा शरीर संघाती से ढका है, जिसमें शरीरांग दिखलाई देते हैं।[१] दोनों प्रतिमाओं को ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नागपट्टनम् की बुद्ध मूर्ति पर सुलतानगंज की गुप्त-कालीन प्रतिमा का काफ़ी प्रभाव है। सौन्दर्य और कला के स्तर की दृष्टि से यह मूर्ति अधिक सफल नहीं कही जा सकती। बाद की चोल-कालीन मूर्तियाँ अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं। यह संग्रह मद्रास के म्युज़ियम में सुरक्षित है।

नटराज की कांस्य-प्रतिमा के रूप में चोल-युगीन शिल्पियों ने मानो सृष्टि की गतिमयता को ही साकार किया है। श्री राय कृष्णदास ने लिखा है :

"जीवन की इस स्फूर्ति को दक्षिण ने, कला में भी अनूदित किया। उनकी नटराज-प्रतिमा इस जागृति का मूर्त-रूप है। इस ब्रह्मांड की सृति में एक नृत्य विद्यमान है। इस सृति, गति में जहां देखिये लय और ताल चल रहे हैं। जिस क्षण उस लय-ताल में बाल-भर का भी अंतर पड़ता है, प्रलय हो जाता है। नटराज मूर्ति परमात्मा के इस नृत्यमय विराट् स्वरूप का प्रतिबिम्ब है।"

शिव का नृत्य भारतीय तक्षकों के अंकन का एक प्रिय विषय रहा है। शिव नृत्य के आराध्य देवता हैं। चिदम्बर के विशाल नटराज मन्दिर के गोपुरम् में उनके एक सौ आठ प्रकार के नृत्यों को आंका गया है। शिल्पशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में शिव के आनन्द ताण्डव, संहार ताण्डव, त्रिपुर ताण्डव आदि नृत्यों का उल्लेख हुआ है। एलोरा की पूर्व मध्य-कालीन गुफाओं में शिव के कटिसम और ललित नृत्य को दर्शक तन्मय होकर देखता ही रह जाता है। इन दोनों नृत्यों के सम्बन्ध में मैंने अपनी पुस्तक 'नटराज' में लिखा है—

"कटिसम में नर्तक के दोनों चरण समान रूप से झुके; दोनों हाथ वक्ष व नाभि के निकट रहते हैं। मुख दाहिनी ओर झुका रहता है। एलोरा की इस शिल्प-प्रतिमा में शिव के आठ भुजायें हैं। उनमें से एक में डमरू है। दूसरा नाभि के निकट है। तीसरा परिधान से ढका हुआ वक्ष के पास है और चौथा कटि पर टिका हुआ है। एक ऊपर उठा है और शेष हाथ भग्न हैं। शिव के मुख पर उल्लास और अधरों पर मुस्कान है। गले में रत्नजड़ित हार झूल रहा है। उनके निकट ही उमा स्कंद को गोद में लिये खड़ी हैं। पार्षदों में से एक वंशी बजा रहा है और दूसरा मृदंग। दो स्त्रियाँ भी वाद्य लिये हैं। एलोरा की प्रतिमायें इतनी प्राणमयी हैं कि दर्शक उन्हें ठगा-सा

१. आइकन्स इन ब्रोन्ज, श्री डी० आर० थापर, प्लेट २४ बी।

२. वही, प्लेट ३५, सी, मैत्रेय (नागपट्टनम्) चोल पीरियड।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखता रह जाती है। साथ ही वे इतनी विशाल भी हैं कि मन पर अपनी भव्यता की गहरी छाप डालती हैं।"

शिव का वह नृत्य, जो उनकी नटराज प्रतिमा में प्रदर्शित है, 'नादन्त' कहा गया है। नाद से ही सृष्टि का सृजन माना गया है। शिव के एक हाथ में नाद का प्रतीक डमरू है। नटराज के बाँयें हाथों में से ऊपर के हाथ में अग्नि की ज्वाला दिखलाई जाती है। शिव संहार कर्त्ता हैं। वे सृष्टि के कण-कण को विनष्ट करते हैं और फिर नया प्रभात, नई चेतना और नई प्राणमयता लेकर उगाते हैं। यों वे नित्य अपने साधक के हृदय की मलिनता को भस्म करते रहते हैं। तीसरा हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा रहता है। चौथा हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा में एक ओर झुका हुआ, उस बौने अथवा राक्षस को संकेत करता दिखलाई देता है जो उनके एक चरण के नीचे दबा पड़ा है।

शिव के इस नृत्य के सम्बन्ध में दक्षिण में एक पुराण-कथा प्रचलित है। एक बार वन में कुछ ऋषिगण निवास करते थे। वे बड़े दम्भी थे और उन्हें अपने तप पर बड़ा अभिमान था। उनका दर्प चूर्ण करने के लिये शिव विष्णु के साथ वहाँ गये। विष्णु ने लावण्यमयी मोहिनी का रूप धारण कर लिया। मोहिनी के रूप को देखकर ऋषियों के मन में विकार उत्पन्न हो गया और नारी-प्रलोभन के कारण आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। कुछ समय पश्चात् जब सारी स्थिति उनकी समझ में आई तब वे शिव पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपने मंत्रों की शक्ति से एक सिंह उत्पन्न किया। वह सिंह बड़ी फुर्ती से शिव की ओर झपटा। शिव ने उसका वक्ष अपनी उंगली से विदीर्ण कर दिया और उसका चर्म रेशमी वस्त्र की भाँति अपने गले में लपेट लिया। शिव नृत्य करने लगे। ऋषियों ने फिर आहुतियाँ पढ़ीं और अपनी मंत्र-शक्ति से यज्ञ में से सर्प उत्पन्न किये, जिन्हें भगवान् शिव ने पुष्प माला की भाँति अपने कंठ और भुजाओं में लपेट लिया और नृत्य में लीन हो गये। क्रुद्ध ऋषियों ने पुनः उन्हीं आहुतियों की आवृत्ति की। इस बार एक राक्षस का उद्भव हुआ, जो कि बौने के आकार का था। वह मुयालक अथवा अपस्मार राक्षस भगवान् पाशुपत की ओर झपटा किन्तु शिव ने उसे अपने चरण के नीचे डाल लिया और वे और भी वेग से नृत्य करने लगे।

शिव के इस नृत्य को देखने के लिये अगणित देवगण एकत्रित हो गये। उन्होंने शिव से यह प्रार्थना की कि वे एक बार फिर इस नृत्य की आवृत्ति करें। तिल्लई के स्वर्ण-खचित सभा-मंडप में शिव का नृत्य हुआ। तिल्लई दक्षिणापत्य का प्रमुख धार्मिक केन्द्र चिदम्बरम् है। चिदम्बरम् में नटराज का सुप्रसिद्ध मंदिर है जिसके सभा-गृह में, चोल-राजाओं ने, जिनके आराध्य नटराज थे, सोना मढ़वा दिया।

नटराज की मूर्तियों में वह अविद्या का प्रतीक अपस्मार पुरुष उनके चरणों के नीचे पड़ा हुआ दिखलाया गया है। नटराज के मुकुट में गंगा, चन्द्र तथा सर्प दिखलाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जाता है। उनकी जटायें लहराती हुई सी रहती हैं, जिनमें सर्प मुंह उठाये दिखलाई देते हैं। शिव के एक कान में नारी-कुण्डल और दूसरे में पुरुष-कुण्डल रहता है जो उनके अर्द्ध-नारीश्वर स्वरूप का प्रतीक है। भगवान् शिव को एक प्रभा-मंडल घेरे रहता है जिसमें अग्नि की ज्वालायें दिखलाई देती हैं। दक्षिणापत्य में नवीं शताब्दी से नटराज की कांस्य-प्रतिमायें ढलाई के साथ बनाई जाती रही हैं। उनकी यह परम्परा अब भी चल रही है। नटराज की सभी प्रतिमाओं में प्रतीक तथा लक्षणों का साम्य रहता है किन्तु कुशल कला-पारखी यह पहचान लेते हैं कि यह किस युग की कांस्य-प्रतिमा है।

नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक की अर्थात् चोल राजाओं के शासन-काल की नटराज प्रतिमाओं में जो गति और ओज प्रदर्शित है वह बाद की प्रतिमाओं में परिलक्षित नहीं होता। नटराज की अब तक प्राप्त हुई प्रतिमाओं में मद्रास संग्रहालय की वह मूर्ति सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है, जिसका चित्र डा० आनन्द के० कुमारस्वामी ने अपने लेख 'डान्स आफ शिव' में प्रकाशित कराया था। भारत सरकार के सांस्कृतिक टिकटों में छपकर यह कांस्य-मूर्ति सामान्य जनता की दृष्टि में आ गई। चोल स्थपतियों की कला इस कांस्य-मूर्ति में अपने चरम-विन्दु पर पहुँच गई है। इतनी ओजस्विनी प्रतिमा, जिसके अंग-प्रत्यंग से नृत्य का वेग प्रकट हो रहा हो, दूसरी नहीं मिलती।

नटराज की चोल-कालीन प्रतिमाओं में तिरुवरंगलु से उपलब्ध दसवीं शताब्दी की वह कांस्य-मूर्ति जो राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है, एक उत्कृष्ट नमूना मानी जाती है। यह मूर्ति मद्रास संग्रहालय की प्रतिमा से तनिक सी भिन्न है। इसमें शिव का एक चरण अपस्मार पुरुष पर रक्खा हुआ है और दूसरा भी उस पर टिका है। ज्योतियुक्त प्रभा-मंडल भग्न हो गया है। कोलम्बो (श्री लंका) के संग्रहालय की नटराज प्रतिमा की डा० आनन्द के० कुमारस्वामी ने बड़ी सराहना की है। एमस्टरडम (हालैण्ड) बैन्कॉक, पेरिस, बोस्टन, ब्रुकलेन संग्रहालय और साउथ कैंसिगटन आदि विदेशी संग्रहालयों में नटराज की अनेक ओजवती, भव्य प्रतिमायें हैं जो एक ही प्रतीकात्मक भावना को व्यक्त करती हैं।

चोल-कालीन शिल्पियों ने नटराज के अतिरिक्त अन्य देवगण की भी बड़ी प्राणवान कांस्य-मूर्तियाँ तैयार की हैं। इनमे शिव के अनेक रूप तथा देवि उमा आदि हैं। उमा की ग्यारहवीं शताब्दी की एक अतीव सुन्दर मूर्ति का चित्र श्री कार्ल खंडावाला ने अपने लेख 'सम मैटल इमेजेज़' में 'मार्ग' में प्रकाशित कराया है। श्री दयाराम थापर ने अपनी पुस्तक 'आइकन्स इन ब्रोन्ज़' में चोल कालीन नटराज, पार्वती, चन्द्रेश्वर शिव आदि सुन्दरतम कांस्य-प्रतिमाओं के चित्र दिये हैं। तंजोर और मदुराई, कांस्य-प्रतिमा गढ़ने वाले स्थपतियों के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। उनकी गढ़ी हुई श्रेष्ठ प्रतिमायें आज देश और विदेश के अनेक संग्रहालयों की श्री-वृद्धि कर रही हैं। नवीं शताब्दी से बारहवीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी तक चोलकाल की मूर्तियाँ बनीं और फिर विजयनगर शैली की कांस्य-प्रतिमायें बनने लगीं। विजयनगर शैली की मूर्तियाँ, सौन्दर्य व अलंकारिकता आदि की दृष्टि से किसी प्रकार हेय नहीं हैं फिर भी वे चोल-प्रतिमाओं के आगे नहीं ठहरतीं।

दीपयुक्त कलात्मक नारी-मूर्तियाँ दक्षिणापत्य की कांस्य-कला की एक विशेषता है। जिस समय कोई राजा विजयी होकर लौटता था अथवा कोई व्यवसायी विदेशों से धन-उपार्जन करके वापस लौटता था, उस समय वह अपनी सफलता का श्रेय कुल-देवता अथवा आराध्य की अनुकम्पा को देता था और उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए सुन्दर, कलामयी मूर्तियाँ अथवा दीपाधार रख देता था। यह दीपाधार सारी रात मंदिर का मंडप आलोकित करते रहते थे और उन पर घृत का जो व्यय होता था, उसे दान-दाता ही देता था। दीपाधारों में बहुधा एक नारी-मूर्ति अपने दोनों हाथों में दीपक लिए भक्ति में डूबी हुई, एक ऊँची पाद-पीठिका पर दिखलाई देती थी। इस प्रकार की मूर्तियों को डा० कुमारस्वामी, अर्द्धेन्दुकुमार गांगुली तथा श्री चिन्तामणि कर आदि कला-समीक्षकों ने 'दीप लक्ष्मी' का नाम दिया है। श्री गांगुली महोदय ने लिखा है :

"Of all the forms met with in South India few are perhaps so interesting and characteristically South Indian as those conceived in the forms of human statues carrying in their hands the cup which serves as the receptacle for the oil for burning of the wick. This type of lamp occurs very frequently, and with some variations as profusely strewn over almost all the temples in South India. The statue holding the wick is generally a female figure and is technically known as 'Deep Lakshmi'".

चोल कालीन दीप लक्ष्मियों की प्रतिमायें बड़ी कलात्मक तथा भावयुक्त मिलती हैं।[१] उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर राजस्थान, गुजरात तथा बंगाल के मूर्तिकारों ने भी दीप-लक्ष्मियों की प्रतिमायें ढालीं। राजस्थान की १७ वीं शताब्दी की दीप-लक्ष्मी की एक पीतल की मूर्ति का चित्र श्री कार्ल खंडावाला ने प्रकाशित कराया है जिसमें एक नारी मूर्ति, जिसका घुमावदार लंहगा राजस्थानी वेष-भूषा का सूचक है, सिर पर दूध का लोटा लिए खड़ी है। उसके हाथ में दीपक है।[२]

बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्युज़ियम में भी लगभग अठारहवीं शताब्दी की गुजरात की दीपलक्ष्मी की एक पीतल की मूर्ति है जिसमें एक नारी अपने दोनों हाथों में एक बड़ा दीपक लिए खड़ी है।[३] सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की दीप लक्ष्मी की

---

१. जनरल आफ़ इंडियन आर्ट एण्ड इंडस्ट्री; हैण्डी क्राफ्ट्स आफ इंडिया प्लेट ६-७.

२. 'सम मैटल इमेजेज़, मार्ग (वोल्यूम १, नं० ३) पृष्ठ ६६.

३. दी आर्ट आफ इंडिया, स्टैला क्रैमरिश, फिगर २७, पृष्ठ २२८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ऐसी ही पीतल की मूर्ति गुजरात के अनहिलवाड़ा नामक स्थान से उपलब्ध हुई थी जो कि अब बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है।[1] इन दीप-लक्ष्मियों की उपलब्धि से यह निश्चय हो जाता है कि राजस्थान, गुजरात अथवा पश्चिमी-भारत के शिल्पियों ने भी इस प्रकार की प्रतिमायें बनाई हैं। सौन्दर्य, भावना-शीलता अथवा कला की उत्कृष्टता के स्तर की दृष्टि से वे चोल-मूर्तियों के आगे नहीं ठहरती।

दक्षिण भारत में ऐसे दीपाधार भी मिलते हैं जिनमें एक वृक्ष का आकार ढाला जाता है और शाखाओं के कोनों पर दीपक रहते हैं। अलंकरण के लिये उनमें मयूर अथवा तोते आदि की आकृतियाँ भी बना दी जाती हैं। भारतीय दीपाधारों से प्रेरणा लेकर नेपाल में भी अनेक प्रकार के दीपाधार बने हैं।

दक्षिण भारत के धातु-शिल्पियों ने बड़े मनोहारी 'हंस दीप' बनाये हैं। इस प्रकार के दीपाधारों में अलंकरण-युक्त हंस दीपक को अपनी चोंच में लिए रहता है अथवा मूर्ति में नीचे आसन में दीपक जुड़ा रहता है। भारतीय कला के प्रतीकों में हंस को समादर मिला है। वह मोती चुगता है अर्थात् श्रेष्ठ तत्वों को ग्रहण करता है। श्रेष्ठ विवेकी पुरुष की उस हंस से तुलना की गई है जिसमें नीर-क्षीर को पृथक् करने –गुण और दोषों को परखने–की योग्यता है। इसीलिए हंस ज्ञान की देवी का वाहन माना गया है। दक्षिण भारत के शिल्पियों को हंस के शिल्पांकन में सम्भवतः प्रस्तर शिल्प से प्रेरणा मिली है जिसमें सादृश्य का उतना ध्यान नहीं रक्खा गया, जितना अलंकरण का—हंस की सुन्दरता में उसके पंखों के वर्तुलाकार अलंकरण ने और भी शोभा भर दी है। कई सदियों की चिर-उपेक्षा के कारण सभी भारतीय शिल्पों ने अपनी कला के पूर्व-स्तर को आज खो दिया है फिर भी दक्षिण भारत में यह परम्परा कुछ अंशों में जीवित है।

मैसूर में स्थपतियों के कुछ परिवार छोटी-मोटी धातु-मूर्तियाँ गढ़कर अपने पैतृक व्यवसाय को अब भी सजीव रक्खे हैं। शिवारापटना की पंचाल जाति का यही मुख्य व्यवसाय है। उनके पास मूर्तियों के सैकड़ों पुराने नमूने तैयार रहते हैं। कलाकार के चिर-अभ्यासी हाथ उसी प्रकार की मूर्ति, ग्राहक की इच्छानुसार तैयार करते हैं। वे पहले मोम की मूर्ति तैयार करके फिर 'पंच लौह' की प्रतिमा बनाते हैं। इस 'टैकनिक' की चर्चा की जा चुकी है। फिर मूर्ति को रगड़ कर उसे अंतिम रूप देते हैं और उसके ऊपर पॉलिश कर देते हैं। यद्यपि मन्दिरों के लिये देव-प्रतिमाओं की मांग पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई है फिर भी यह नई धातु-प्रतिमायें देश-विदेश के शौक़ीनों के ड्राइंग-रूमों की शोभा बढ़ाती हैं। इनमें भी नटराज की मूर्तियों की अधिक मांग रहती है। प्राचीन वस्तुओं के व्यवसायी विदेशी पर्यटकों को ठगने के लिए

१. दि आर्ट आफ इण्डिया, फिगर १५४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नई वस्तुग्रों को प्राचीनता देने की चेष्टा भी करते हैं किन्तु स्वतंत्र प्रतिभा ग्रौर मौलिक कल्पना के ग्रभाव में इस कला में जिस निर्जीवता ग्रौर जिन रूढ़िगत् तत्वों का समावेश हुग्रा है, वे पारखी दृष्टि से बच नहीं पाते।

२. नेपाल की धातु-प्रतिमायें व अन्य शिल्प

ग्रपने भव्य काष्ठ-मंडपों, भवनों की शिल्प-युक्त सोहावटियों, रत्न-जड़ित धातु-प्रतिमाग्रों ग्रौर सुन्दर चित्रमयी पोथियों के कारण नेपाल, "ललित-कला ग्रौर पुरातत्व का संग्रहालय" कहा जाता है। हिमालय की छोटी सी उपत्यका में ऐसी गरिमामयी कला-संस्कृति का उदय व विकास कैसे हुग्रा, यह प्रश्न कला-समीक्षकों को ग्राश्चर्य में डाल देता है। ग्रनुश्रुतियों के ग्रनुसार सृष्टि के किसी ग्रादि युग में, इस उपत्यका में निर्मल जल का सरोवर लहराता था। उस सरोवर में एक शतदल पद्म खिला, जिसमें से स्वयंभू बुद्ध का प्रादुर्भाव हुग्रा। क्या नेवारी संस्कृति ही वह पद्म नहीं थी, जिसमें ग्रनेक जातियों ग्रौर वंश-परम्पराग्रों के नये-नये पत्ते जुड़ते गये; पद्म विकसित होता गया? संस्कृति के इस शतदल को भगवान् बुद्ध से ग्रनुप्राणित कला ने सुरभित किया।

नेपाल के धर्म, कला, संस्कृति ग्रौर साहित्य सभी पर भारत की गहरी छाप है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने नेपाल को भारत का 'सहोदर' कहा है। ग्रग्रज के संस्कारों का प्रभाव ग्रनुज पर पड़ना सहज है। नेपाल के शिल्पियों की प्रतिभा ग्रौर नवोन्मेषशालिनी कल्पना ने भारत के कला-प्रभावों को भी जिस रूप में ग्रात्मसात् किया, उसमें वह उनकी मौलिक सर्जना बन गई है।

नेपाल ग्रौर भारत के स्नेहपूर्ण सम्बन्धों की परम्परा ग्रत्यन्त प्राचीन है। तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में देवानांप्रिय सम्राट् ग्रशोक ने शाक्य मुनि बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी में जाकर श्रद्धा के सुमन ग्रर्पित किये थे। लुम्बिनी का धर्म-लेख उस घटना का साक्षी है। हिमालय के ग्रंचल में शाक्यों का प्रदेश कहाँ तक फैला हुग्रा था, यह ग्राज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु उनकी राजधानी कपिलवस्तु ग्राज नेपाल की सीमा में 'तिलौरा कोट' गाँव के नाम से जानी जाती है। सम्राट् ग्रशोक ने ग्रपनी दुहिता चारुमती का परिणय नेपाल के किसी महासामंत से किया था। राजकन्या चारुमती ने तथागत की भक्ति-वश नेपाल के निकट बौद्ध-स्तूपों की रचना कराई। वे ग्रब भी विद्यमान हैं।

द्वितीय शताब्दी में नेपाल में लिच्छिवियों ने प्रवेश किया। डा० ग्रानन्द के० कुमारस्वामी ने लिखा, "द्वितीय शताब्दी में, लिच्छिवियों ने एक नये राज-वंश की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापना की। वे भारतीय सभ्यता के सारे तत्वों को अपने साथ वैशाली से ले गये।" इसके पश्चात् चतुर्थ शताब्दी के प्रारम्भ में जब गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त ने उत्तरापथ की समस्त बिखरी शक्तियों को एकत्रित कर एक विशाल साम्राज्य का स्वरूप दिया तब समतट, ढबोक (ढाका) और कामरूप के राजाओं के साथ नेपाल के अधिपति ने भी उनके चक्रवर्ती पद को स्वीकार किया। भारत और नेपाल के सम्बन्ध ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में काफी घनिष्ठ हो गये थे। नेपाल बौद्ध धर्म के मूल सर्वास्तिवाद का केन्द्र बन गया था। चौथी शताब्दी में आचार्य वसुबन्धु ने नेपाल की यात्रा की थी। प्राचीन युग में एक पथ कान्यकुब्ज से कामरूप होता हुआ नेपाल जाता था। सातवीं शताब्दी में श्वेनचाउ नामक भिक्षु, जो चीन से आचार्य जिनप्रभ के पास शिक्षा ग्रहण करने आये थे, इसी पथ से नालंदा से अपने देश को वापस लौटे थे। आठवीं शताब्दी में आचार्य शान्तिरक्षित ने इसी पथ पर यात्रा की थी और भोट राजा के आग्रहपूर्ण आमन्त्रण पर विक्रमशिला के आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान ने भी इसी पथ से नेपाल होते हुये तिब्बत को प्रयाण किया था। अलबरूनी के यात्रा-वृत्तांत से ज्ञात होता है कि यह पथ ग्यारहवीं शताब्दी में भी प्रचलित था। इसी पथ से भारतीय कला के प्रतीकों और अभिप्रायों ने भी नेपाल और तिब्बत की यात्रा की।

नेपाल और तिब्बत की मैत्री का सूत्रपात सातवीं शताब्दी में, राजा स्रोन् ग्चन् स्गमपो के शासन-काल में हुआ। उन्होंने राजा अंशुवर्मा की पुत्री के साथ विवाह किया। नेपाल के इस सम्पर्क से पहले तिब्बत में बोन धर्म था। उस समय वहाँ न कोई भाषा थी और न लिपि। भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत में लिपि तैयार की गई। तिब्बत की कला व संस्कृति के विकास में नेपाल के शिल्पियों का बहुत बड़ा हाथ रहा। श्री सिलवां लेवी ने लिखा, "लहासा बहुत हद तक नेपाल का एक उपनिवेश ही है। वे प्रमुख रूप से नेवारी ही थे, जिन्होंने तिब्बत में मन्दिरों का निर्माण किया, उनकी प्रतिमाओं को ढाला और मूर्तियों को रंगा। नेवारी शिल्पियों की कीर्ति सारी मध्य-एशिया में फैल गई थी। धार्मिक भवनों को चित्रित व अलंकृत करने के लिये, कुछ समय पहले तक, काफी व्यय करके भी नेवारी, शिल्पियों को ही दूर-दूर तक बुलाया जाता था।"

नेपाल में बौद्ध और हिन्दू धर्मों की धारायें समान गति से बही हैं। वहाँ इन दोनों धर्मों के अनुयायिओं में कभी कोई वैमनस्य नहीं हुआ। नेपाल के नृपतियों ने, चाहे वे किसी धर्म के उपासक रहे हों, सारी प्रजा को समान दृष्टि से देखा। ह्यूआन् चुआङ् के यात्रा-काल, सातवीं सदी में वे दोनों साथ-साथ मिले-जुले रहते थे। उनके मन्दिर और संघाराम पास-पास बने हुए थे। नेपाल में दोनों धर्म इतने मिल-जुल गये हैं कि उनकी पहिचान कठिन हो चुकी है। इस समन्वय का कला पर भी प्रभाव पड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
है। बौद्ध संघारामों की प्राचीरों के भीतर हिन्दू मन्दिर दिखलाई देते हैं और हिन्दू देव-प्रतिमाओं पर बौद्ध-प्रभाव झलकता है।

आधुनिक नेपाल में नेवार, गोरखा, तामांग, गुरुंग और मगर आदि जातियाँ निवास करती हैं। इनमें से कुछ बौद्ध हैं और कुछ हिन्दू। नेवार जाति मूल रूप से मंगोलियन शाखा की है और गोरखा अपने आपको चित्तौड़ के महाराणों के वंशज बतलाते हैं किन्तु शताब्दियों के सम्पर्क के कारण गोरखा लोगों के चेहरों पर भी मंगोलियन रक्त का प्रभाव दिखलाई देने लगा है। यों तो नेवारियों और गोरखों की शारीरिक बनावट में भी काफ़ी अन्तर होता है। गोरखा गठे हुए शरीर के नाटे किन्तु वलिष्ठ होते हैं और नेवारी लम्बे छरछरे बदन के अपेक्षाकृत सुकुमार। गोरखा मूलतः योद्धा जाति है और नेवारियों का कार्यक्षेत्र व्यवसाय व कला है। स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला और काष्ठकला सभी में नेवारी शिल्पी अग्रगण्य समझे जाते हैं।

नेपाल की सबसे पुरानी कला-निधि पाटन के निकटवर्ती अशोक-कालीन स्तूप हैं। वे भारतीय स्तूपों की भांति ही गोलार्ध में बने हैं। वे ईंटों के हैं। उनके ऊपर हर्मिका अथवा छत्रावली नहीं है। स्तूपों की अति प्राचीन शैली में उनके ऊपर छत्रावली नहीं होती।

नेपाल में मूर्तिकला का आरम्भ संभवतः लिच्छिवियों के प्रवेश के साथ हुआ। लिच्छिवि राजा मानदेव ने चाँगुनारायण के विष्णु-मन्दिर के आगे एक ध्वज-स्तम्भ स्थापित किया था, जिसके ऊपर गरुड़ की मूर्ति उत्कीर्ण थी। नेपाल की बहु-पूजित, पशुपतिनाथ की वर्तमान मूर्ति आठवीं शताब्दी की है और नचना के उस काल के ही चतुर्मुख महादेव मन्दिर की चतुर्मुख लिंग मूर्ति से अद्भुत सादृश्य रखती है। मध्य-काल में शिव-मन्दिर के गर्भगृह के बीच में शिवलिंग स्थापित किया जाता था और उसी में चारों दिशाओं में सद्योजात, अघोर, वामदेव व तत्पुरुष मुख उत्कीर्ण किये जाते थे। पंचमुख परमेश्वर शिव के पंचम मुख ईशान की कल्पना लिंग में ही की जाती थी।

नेपाल में अन्य स्थानों पर भी प्रस्तर-प्रतिमायें मिलती हैं किन्तु ये आक्रांताओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई हैं।

नेपाल की ख्याति रत्नमयी धातु-प्रतिमाओं के कारण है।

भारत में पाल और सेन राजाओं के शासन-काल में बौद्ध, ब्राह्मण और जैन सभी धर्मों की श्रेष्ठ धातु-प्रतिमायें बनीं। बिहार में कुर्किहार और नालन्दा इस कला के केन्द्र थे और बंगाल में रंगपुर, राजशाही और दीनाजपुर आदि। यद्यपि वह धातु-प्रतिमायें कला की श्रेष्ठता में गुप्तकालीन मूर्तियों के टक्कर की न थीं फिर भी उनकी शरीर की भंगिमायें आकर्षक थीं। मध्य प्रदेश में रायपुर के निकट खुदाई में भी नवीं दसवीं शताब्दी की बुद्ध तथा बोधिसत्व की भावमयी प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। सौष्ठव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और भाव-व्यंजना दोनों दृष्टियों से वे पाल-युग के श्रेष्ठ नमूनों के बीच रक्खी जा सकती हैं। नेपाल के शिल्पियों को नालंदा और कुर्किहार की मूर्तियों से विशेष प्रेरणा मिली। उन दिनों बौद्ध-कला तंत्रयान से प्रभावित होती जा रही थी इसलिये इन मूर्तियों में विविधता भी दिखलाई देती है। विभिन्न मुद्राओं में बुद्ध, अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि, वज्रपाणि, मैत्रेय, लोकेश्वर, तारा और मंजुश्री आदि की धातु-मूर्तियाँ नालंदा और कुर्किहार के शिल्पियों ने नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक तैयार कीं। नालंदा के पतन के बाद यह परम्परा नष्ट हो गई किन्तु नालंदा के आचार्य तथा भिक्षु अपने साथ उसे नेपाल ले गये। यात्रियों के लिये पाषाण-प्रतिमाओं की अपेक्षा धातु-मूर्तियां ले जाना सुविधाजनक था। नेवारी शिल्पियों ने इन्हीं आराध्यों की प्रतिमायें बनाकर उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मूल्यवान पत्थर, मूँगे, फीरोज़े और रक्त-मणियाँ आदि जड़ीं जिसके कारण मूर्तियों की शोभा दूनी हो गई। धातु-मूर्तियों में रत्नों का जड़ाव नेपाल के कलाकारों की अपनी मौलिक कल्पना थी। इनमें रक्तमणि और फीरोज़ा अधिक उपयोग में लाये जाते थे। नेपाल का शिल्पी पीतल या ताँबे की मूर्ति पर जो सोने का पानी चढ़ाता था उससे वे दमकने लगती थीं और 'मणि कांचन' का संयोग दिखलाई देने लगता था। नेपाल की धातु-मूर्तियों से भारत के कई संग्रहालयों के कक्ष शोभित हैं। नेपाल के शिल्प में ऐसी धातु-प्रतिमायें भी दिखलाई देती हैं जिनमें शक्ति आराध्य की गोद में आलिंगन-बद्ध बैठी है। वज्र-वाराही, प्रसन्न तारा और चण्डरोषण आदि देवी-देवताओं के गले में मुंड-मालायें भी दिखलाई देती हैं। यह सब तंत्रयान की ही देन है। नेपाल के मूर्तिकार अपनी यह देव-प्रतिमायें 'साधन-माला' और 'साधन समुच्चय' आदि शिल्प के ग्रन्थों के आधार पर तैयार करते थे इसलिये 'साधन' और 'मूर्ति' दोनों में साम्य दिखलाई देता है। बौद्ध मूर्ति-विज्ञान के अधिकारी विद्वान् डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने लिखा है, "पाटन के कुछ बौद्ध संघाराम प्रतिमाओं की दृष्टि से इतने समृद्ध हैं कि उन्हें ही छोटे संग्रहालयों की संज्ञा दी जा सकती है। महायान और वज्रयान के जिन देवताओं की प्रतिमायें भारत में दुर्लभ हैं वे नेपाल के बौद्ध विहारों में बहुतायत से मिल जाती हैं।" प्रसिद्ध कला-समीक्षक श्री कार्ल खंडालवाला का मत है कि मूर्तियों में रत्न जड़ने की कला नेपाल में भारत से ही गई। पाल राजाओं के समय मूर्तिकार अपनी धातु-प्रतिमाओं में किस प्रकार रत्न-मणि आदि जड़ने लगे थे इसका नमूना महाराज रामपाल के समय में तैयार की हुई कुर्किहार की अवलोकितेश्वर की मूर्ति है।

देव-प्रतिमाओं में रत्न जड़ने की कला का श्री गणेश कहीं भी क्यों न हुआ हो, नेवारी शिल्पी इसमें अत्यधिक कुशल हो गये थे। वे सोने के पतरों से ऐसी पॉलिश तैयार करने लगे थे जिसकी चमक कई सौ वर्षों तक नष्ट नहीं हुई। पिछली शताब्दी से स्वर्णकार ऐसी मूर्तियाँ भी बनाने लगे हैं जिनमें आराध्य के शरीर के मुख, वक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
और भुजा आदि अवयव रंगीन कांच के रहते हैं और मुकुट, आभूषण व वस्त्र आदि पीतल के। उन पर सोने का मुलम्मा चढ़ा दिया जाता है। प्रतिमा की पृष्ठ-भूमि और प्रभा-मंडल को मूंगे और फीरोज़े के रत्न और नीलाभ पुष्पों से भरा जाता है। बाद में मूर्ति काठ के चौखटे में जड़ दी जाती है।

नेपाल की धातु-मूर्तियों में आराध्य के नेत्र लम्बे व अर्ध-उन्मीलित रहते हैं। पलकें भारी रहती हैं और भौंहें कमान की भांति तनी रहती हैं। ओंठ छोटे-छोटे और पतले रहते हैं और उनके कोने ऊपर की ओर मुड़े रहते हैं। चौदहवीं शताब्दी के बाद की मूर्तियों पर मंगोल प्रभाव भी परिलक्षित होता है किन्तु भावना में वे भारतीय मूर्तियों के ही अधिक निकट रहती हैं। नेपाल में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में तारा और बोधिसत्व की बहुत बड़ी प्रतिमायें बनीं। इनमें देवाकृति के विविध अंगों को अलग-अलग ढालकर बाद में जोड़ दिया गया। इनमें अलंकारों और मुकुट को भी अलग से ढाला गया और फिर उन्हें टांके से जोड़ दिया गया। कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में बोधिसत्व और तारा की ऐसी कई बड़ी-बड़ी प्रतिमायें सुरक्षित हैं।

नेपाल में इन देव-प्रतिमाओं की रचना किस उद्देश्य को लेकर की गई यह प्रश्न सहज ही अध्येता के आगे आकर खड़ा हो जाता है। बौद्ध-साधना में देवता का मनोयोग-पूर्वक ध्यान करने वाले साधक के मानस-चक्षुओं के आगे आराध्य की प्रतिमा खड़ी हो जाती है। किन्तु यह साधना सतत् अभ्यास के बाद ही सम्भव होती है। साधक को शनैः-शनैः मृग-तृष्णा, धूम, ज्योति-कण और फिर दिव्य-ज्योति के दर्शन होते हैं फिर आराध्य का साक्षात्कार होता है। उस समय उसे इष्टदेव का शरीर-वर्ण, आयुध और वाहन सभी दृष्टिगोचर होता है।

बीज-मंत्र साधना की क्रिया-प्रक्रियाओं में सहायक होता है। साधक इस ध्यान के द्वारा अभीष्ट देवता का जिस रूप में दर्शन करता है, उसी को 'साधन' कहते हैं। 'साधनमाला समुच्चय' में विविध देवगण के साधनों का संकलन है। कलाकारों ने इन्ही साधनों के आधार पर प्रतिमायें गढ़ी हैं।

भारत के शिल्प की भाँति ही नेपाल की धातु-प्रतिमाओं में आराध्य के हाथों की विविध मुद्रायें प्रदर्शित की गई हैं जैसे वरद, अभय, अंजलि, भूमि-स्पर्श और व्याख्यान मुद्रा आदि। वरद् मुद्रा में हाथ खुला रहता है और उँगलियाँ नीचे की ओर रहती हैं। यह आराध्य के अपने उपासक पर प्रसन्न होकर वर देने की मुद्रा है। अभय मुद्रा में हाथ ऊपर की ओर उठा रहता है। भूमि-स्पर्श मुद्रा में दाहिना हाथ भीतर की ओर खुला रहता है और एक उँगली भूमि को स्पर्श करती रहती है। जिस समय वासना के स्वामी मार ने तप में लीन सिद्धार्थ पर आक्रमण किया था, उस समय उन्होंने भूमि को छूकर अपने तप की साक्षी ली थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपास्य देव के हाथों में अक्षमाला, अंकुश, प्रफुल्लित पद्म आदि प्रतीक रहते हैं। धातु-मूर्तियों में पुस्तक को पोथी के एक पृष्ठ के रूप में दिखलाया जाता है। उसका अभिप्राय प्रज्ञापारमिता से रहता है। कलश अथवा पूर्ण कुम्भ जीवन का प्रतीक है, जिसमें प्राण-रस पूरित रहता है। पाश दुष्प्रवृत्तियों को नाश करने वाला समझा जाता है। वज्र शून्यता का प्रतीक है और पद्म स्वसृजन का।

नेपाल के शिल्पी धातु की देव-प्रतिमाओं के अतिरिक्त उपासना के पात्र, दीपाधार, जलपात्र और वज्र आदि भी बड़े कलात्मक बनाते हैं। नेपाल के मन्दिरों के दीपाधार बहुत बड़े होते हैं। सुशोभन के लिये उनके ऊपरी भाग में मन्दिर अथवा प्रफुल्लित पद्म बनाया जाता है। कभी-कभी दीपाधार की आकृति मयूर अथवा हंस जैसी रहती है।

नेपाल में ऐसी झारियाँ अथवा जलपात्र बहुत लोकप्रिय हैं, जिनमें एक ओर दीपक रहता है। झारी के दण्ड पर दीपक को मिथुन-मूर्तियाँ साधे रहती हैं। दीपक के सामने अवलोकितेश्वर की ढलाई की हुई मूर्ति रहती है। इस मूर्ति में बोधिसत्व के तेरह मुख और अनेक हाथ दिखलाये जाते हैं। पीछे पत्तियों का अलंकरण रहता है। पात्र में हत्थे के पास नाग-मूर्ति बनाई जाती है। देव-मूर्तियुक्त झारियों में दीपक, पात्र और देव-मूर्ति को अलग से ढालकर बाद में जोड़ा जाता है। नेवारी शिल्पी भाँति-भाँति के ढलाई युक्त पात्र बनाते हैं जिनमें कुछ ढंके हुये रहते हैं और कुछ फूलदानों की भाँति ऊपर से खुले हुये।

नेपाल के कुम्हार मृत्तिका-शिल्प में बड़े कुशल थे। नेवारी वास्तु-कला की मंडप-शैली में काष्ठ और ईंटों के संयोग से ही सुदृढ़ भवनों का निर्माण हुआ था। नेपाल के मृत्तिका-शिल्प के केन्द्र थोमी और नाउकोटे थे, जिनमें चीनी मिट्टी के खिलौने भी तैयार किये जाते थे। इनमें आकृति की लुनाई और रंगों की सुरुचिपूर्णता बहुत मनमोहक होती थी। नेपाल के कुम्भकार सादा कच्ची मिट्टी की देव-मूर्तियाँ भी बनाते थे। कुछ मूर्तियाँ चारों ओर से कटाव देकर कोरी जाती थीं और कुछ भीतर से गहरा कटाव देकर बनाई जाती थीं। इन देव-मूर्तियों में गणेश, विष्णु, इन्द्र और वरुण आदि देवगण तथा तारा, बोधिसत्व, कुबेर और महाकाल आदि देवगण का समावेश रहता था। इस प्रकार की शिल्प-कृतियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पतली नहन्नी से पहले कच्ची मिट्टी की आकृति को कटाव देकर तैयार किया गया है और फिर उसे पकाया गया है। ठप्पे के द्वारा आकृति में इतनी गहराई और उभार लाना सम्भव नहीं जान पड़ता।

नेपाल के भवनों और देवालयों में स्थापत्य की एक निराली शैली दिखलाई देती है। इसमें कई खंडों के भवन बनाये जाते हैं। नीचे की मंजिल से ऊपर का खंड क्रमश: छोटा होता जाता है। जहाँ एक खंड पूरा होता है, वहाँ भवन के चारों ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुष्कोण का एक झुकावदार छज्जा बनाया जाता है। इस छज्जे को नीचे लकड़ियाँ लगाकर साध दिया जाता है। दीवाल में लगी हुई लकड़ियों के इन आधारों पर देवताओं की प्रतिमाओं तथा अन्य अलंकरणपूर्ण आकृतियों को खोदकर मंडप को अधिक सज्जायुक्त बनाया जाता है। इस शैली को 'मंडप शैली' कहते हैं।

प्राचीन भवनों के प्रवेश-द्वारों, गवाक्षों और वातायनों में जिस बारीकी के साथ काम किया गया है, जितनी विविध प्रकार की अनूठी डिजाइनें बनाई गई हैं, वे मध्ययुग के कारीगरों की कुशलता की परिचायक हैं। देव-मन्दिरों या राज दर्बारों के प्रवेश-द्वार बहुधा सादे रहते थे। कभी-कभी उन पर कठखुदाई का काम भी दिखलाई देता है। ऊपर की लम्बी विशाल चौखट में बुद्ध या तारा की आकृति को इतनी गहराई देकर काटा जाता था कि उसमें उभार आ जाता था। वह कोरी हुई मूर्ति जैसी ही लगती थी। इन विशाल द्वारों को सोहावटी कहते हैं। नेपाल की इन सोहावटियों में कमल के प्रफुल्लित व अर्ध-मुकुलित पुष्पों, कलिकाओं और पत्तों की इतनी डिज़ाइनें दिखलाई देती हैं कि नेवारी शिल्पियों की स्वतन्त्र प्रतिभा और सर्जना की सराहना करनी पड़ती है।

नेपाल की चित्र-साधना का जो स्वरूप आज कला-समीक्षकों के सन्मुख है, वह उसकी सूक्ष्म चित्र-कला (मिनियेचर पेन्टिग) है। इतिहास से ज्ञात होता है कि नेपाल में भित्ति-चित्रों का भी प्रचलन था। यह सच है कि अजन्ता, बाघ या चीन देश के सहस्र बुद्ध-गुहा-मन्दिर तुन्ह्वांग की भांति नेपाल की शिल्पियों ने गुहा-मन्दिरों को काट कर उनकी भित्तियों पर चित्र नहीं बनाये वरन् उन्होंने काष्ठ-भवनों को ही विविध प्रतिमाओं और चित्रों से अलंकृत किया। सातवीं शताब्दी के चीनी ग्रन्थकारों ने इन चित्रमय काष्ठ-मंडपों के शिल्प व चित्रों की सराहना की है। काष्ठ के माध्यम में, पाषाण की भाँति प्रकृति से निरन्तर संघर्ष करने की क्षमता नहीं होती इसलिये यह भित्ति-चित्र भी काष्ठ-मंडपों के साथ ही नष्ट हो गये। नेपाल की चित्र-कला केवल ताड और भोजपत्रों के ग्रन्थों तथा उनके काष्ठ के आवरणों में ही सुरक्षित रह सकी। नेवारी चित्रकला की प्रारम्भ की कड़ी उन दस भित्ति-चित्रों को माना जा सकता है जो तुन्ह्वांग की गुहाओं में हैं और जिनमें नेपाली चित्र-शैली में बोधिसत्व का जीवन अंकित है।

डा० कुमारस्वामी का मत है कि सभी नेवारी राजाओं के शासन-काल में काष्ठ-मण्डपों को मूर्तियों और चित्रों से सुसज्जित करने का रिवाज़ था। कुछ सदियों पहले मत्येन्द्रनाथ के मन्दिर में अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के विविध रूप, सुखावती लोकेश्वर, सिंहनाद लोकेश्वर और नीलकण्ठ लोकेश्वर आदि रंगमय चित्रों में आंके गये हैं।

उत्तर मध्यकाल में प्रज्ञा-पारमिता, पंच रक्षा, कारण्ड व्यूह और सद्धर्म पुण्डरीक आदि महायान के ग्रन्थों की ताल और भोजपत्र की पोथियों में भावपूर्ण चित्र बनाये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
गये। इन हस्तलिखित पोथियों में काली पृष्ठ-भूमि पर जमे हुये हाथ से स्वर्णाक्षरों में लिखाई की गई और बीच में बौद्ध आराध्यों के भाव-पूर्ण चित्र अंकित किये गये।

नेपाल के कला-स्वामियों को, धातु-मूर्तिकला की भाँति ही यह प्रेरणा बंगाल और बिहार के पाल-युगीन कलाविदों से मिली। नालंदा और विक्रमशिला के विनाश के पश्चात् भारत से कुछ पोथियाँ नेपाल और तिब्बत चली गईं। वे बौद्ध विहारों में कई शताब्दियों तक सुरक्षित रहीं। नेपाल की जलवायु भारत की अपेक्षा कम उष्ण होने के कारण भी विगत् शताब्दियों में वे नष्ट नहीं हुईं। डा० राइट और काठमाण्डू के अंग्रेज रेजीडेन्ट वी० एच० हॉगसन को संस्कृत बौद्ध-साहित्य का यह विशाल भण्डार उपलब्ध हुआ जो कि रायल एशियाटिक सोसाइटी तथा बिब्लोथिक नेशनले पेरिस के विद्या-संस्थानों में सुरक्षित है। इन पोथियों का आकार २२ इंच लम्बा और सवा दो इंच चौड़ा होता है। इनमें लिखावट के बीच में बोधिसत्व, तारा या वज्रयान के देवी-देवताओं के चित्र आंके गये हैं। यह चित्र-शैली, अजन्ता और बाघ के चित्रों की भाँति ही बौद्ध-कला का एक रूप थी जो पुस्तक-चित्रों के रूप में प्रकट हुई। रेखा का लालित्य, मनोहारी अंग-भंगिमायें, और रंगों की ताज़गी इन चित्रों की आत्मा है। नेपाल में ग्यारहवीं शताब्दी तक की ताल-पोथियाँ उपलब्ध हुई हैं। पाल और सेन राजाओं के शासन-काल में लिखी गई बंगला ताल-पाथियों और नेपाली सूक्ष्म चित्रकला (मिनियेचर) में इतना कम अन्तर है कि चित्रकला के पारखी नेत्र ही उसे पकड़ सकते हैं। गुजरात में भी जैन शैली या अपभ्रंश शैली के नाम से सूक्ष्म चित्र-कला की एक शैली का उदय हुआ। इन सभी शैलियों के चित्रों की विषय-वस्तु धार्मिक थी फिर भी बौद्ध कला की इस धारा में कल्पना और भावना की व्यापकता थी। भिन्न-भिन्न रंगों को मिलाकर वह एक निश्चित प्रभाव पैदा करती थी।

नेपाल की पोथियों के काष्ठ के आवरणों पर भी, चौरासी सिद्धों में से कोई सिद्ध, वज्रयानी देवता या स्वयं भगवान् बुद्ध दर्शन देते हैं। इनको देखने से मालूम होता है कि चित्रकार की विषय-वस्तु का कितना गहरा ज्ञान था? उसने छोटी से छोटी बारीकी को भी नहीं छोड़ा। अष्टसहस्रिका प्रज्ञापारमिता की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी की वे चित्रमय पोथियाँ नेपाल की श्रेष्ठतम चित्रकला की साक्षी हैं जो बोस्टन संग्रहालय, दरबार लाइब्रेरी नेपाल अथवा रायल एशियाटिक सोसाइटी में संरक्षित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कक्ष की धातु-मूर्तियाँ : विवरण

ब. १—शांतिनाथ तीर्थंकर

धातु-मूर्ति, दक्षिण-भारत, पन्द्रहवीं शताब्दी। तीर्थंकर श्री शांतिनाथ आसन पर पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनकी मुद्रा गंभीर है मानों चिंतन में हों और दोनों हथेलियाँ गोद में रक्खी हैं। आसन में सिंहों की आकृतियाँ परिलक्षित होती हैं। दोनों ओर दो बैठी हुई देव-मूर्तियाँ हैं। तीर्थंकर के दोनों ओर दो पार्षद खड़े हैं और उनके ऊपर तीर्थंकर की छोटी ध्यानावस्थित मूर्तियाँ हैं। भगवान् शांतिनाथ पर छत्र तना है और ऊपर भाग में दो गज अभिषेक करते हुए दिखलाई देते हैं।

मूर्ति पर यह लेख अंकित है :

युतेनस्व श्रेयसे श्री शांतिनाथ बिंबकारिति प्रतिष्ठितंत पणव श्री सोम सुन्दरम्।

फाल्गुन शुक्ल तृतीया, संवत् १८८२ वि०

आकार ६.५″×४″

ब. २—नटराज

कांस्य-प्रतिमा, दक्षिणापत्य, १७वीं शताब्दी। नृत्य के आराध्यदेव नटराज, मल अथवा अविद्या के प्रतीक अपस्मार पुरुष पर नृत्य कर रहे हैं, गम्भीर मुख-मंडल, भव्य मूर्ति—

नटराज की अन्य कांस्य-प्रतिमाओं की भाँति इस मूर्ति के भी चार भुजायें दिखलाई गई हैं। यह भुजायें कंधे से निकली हैं। नटराज के एक हाथ में सृजन का प्रतीक डमरू है, जिसके नाद से सृष्टि होती है। अगला दाहिना हाथ अपने भक्तों को अभय प्रदान कर रहा है। भुजाओं में वलय के स्थान पर सर्प दिखलाई दे रहे हैं। बायीं ओर के पिछले हाथ में अग्नि-शिखा है। प्राचीन मूर्तियों में यह अग्नि-ज्वाला हथेली में दिखलाई जाती है किन्तु इस मूर्ति में वह एक पात्र में रक्खी हुई है। हाथ की इस मुद्रा को अर्ध चन्द्रहस्त कहते हैं। आगे का हाथ गज-हस्त अथवा दण्ड-हस्त मुद्रा में है और नीचे पड़े हुए अपस्मार पुरुष की ओर संकेत कर रहा है। अपस्मार पुरुष एक बौने के रूप में दिखलाया गया है जो कि एक करवट से लेटा है। नटराज का बाँया चरण उसके वक्ष पर है जिसे वह एक हाथ से पकड़े हुए है।

नटराज के माथे पर मुकुट है जिसके ऊपर पंखों का किरीट दिखलाई दे रहा है। जटा-मुकुट में कपाल, अर्ध-चन्द्र व नाग दिखलाई दे रहा है। मुकुट में से लटायें छूटकर लहरा रही हैं। अन्य नटराज मूर्तियों की अपेक्षा यह आकार में छोटी भी हैं। इनमें नाग बैठे हुए हैं। नटराज के कानों में से एक में गोल तथा दूसरे में लम्बा कुण्डल है जो उनके अर्द्ध नारीश्वर रूप का प्रतीक है। उनके गले में कई लड़ों का हार है तथा कंधे पर यज्ञोपवीत शोभित है। उनकी बाँहों में भुज-बन्द तथा हाथों में कंकण हैं। कमर में वे एक कछनी पहने हैं जिसके ऊपर पटका बँधा है। पटके के दोनों छोर लहरा रहे हैं। उनमें से एक में घंटिका बँधी हुई है। यह छोर ज्वाला-मंडल अथवा प्रभावली का स्पर्श कर रहा है।

नटराज का नीचे का आसन पद्माकृति का नहीं है जैसा कि प्राचीन चोल या पल्लव युग की कांस्य-प्रतिमाओं में दृष्टिगोचर होता है। ऐसा जान पड़ता है कि आसन प्रतिमा के साथ नहीं ढाला गया वरन् अलग से बनाकर बाद में जोड़ दिया गया है। नटराज का ज्वाला-मंडल कुछ लम्बापन लिये हुए घोड़े की नाल के आकार का है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि इस प्रतिमा में प्राचीन नटराज-मूर्तियों जैसी गतिमयता और लय परिलक्षित नहीं होती और न भावाभिव्यक्ति व अंकन की दृष्टि से उस स्तर को छू पाती है, फिर भी मूर्ति सुन्दर है और कांस्य-मूर्तियों की शृंखला की एक पिछली कड़ी है। नटराज-मूर्ति की सारी लाक्षणिकताओं का समावेश इसमें हुआ है।

संग्रहालय की वस्तुओं के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ी कठिनाई सामने है, वह यह कि उनकी उपलब्धि के स्थान का कोई निश्चित पता नहीं चलता। अधिकांश वस्तुयें उन दूकानदारों से मूल्य चुका कर ली गई हैं जो कि पुरानी कलात्मक वस्तुओं का संग्रह रखते हैं। मूल-स्थान का पता न होने के कारण संग्रहाध्यक्ष को केवल समकालीन या सादृश्य रखने वाली वस्तुओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है। उसी आधार पर वह अनुमान लगाता है। ऐसी प्रतिमायें या वस्तुयें इनी-गिनी ही हैं, जिनके ऊपर कोई लेख अंकित हो। ऐसी स्थिति में यह कह सकना कठिन है कि नटराज-मूर्ति दक्षिण-भारत के किस स्थान की है? आकार—२२.५″ × १३″

ब. ३—कमण्डल

पीतल, राजस्थान, अठारहवीं सदी। यह विशाल कमण्डल राजस्थान की धातु-कला का एक विलक्षण नमूना है। आकार की दृष्टि से धातु की इतनी बड़ी कृति राजस्थान व भारत ही नहीं अपितु विदेश के संग्रहालयों में भी कठिनाई से मिलेगी। यह 'चौबीस अवतारों' के कमण्डल के नाम से इलाके में प्रसिद्धि ले चुका है और दूर-दूर के गाँवों के लोग 'ब्रह्मा के इस कमण्डल' को देखने के लिये आया करते हैं। इसके गोलाकार मध्य-भाग में दस अंडाकार चित्रों में विष्णु के अवतार दिखलाये गये हैं और ऊपर के भाग में महाभारत के विविध प्रसंग हैं। सम्पूर्ण कमण्डल तीन भागों में विभक्त है जिन्हें अलग-अलग किया जा सकता है। बीच का गोलाकार भाग कहीं जुड़ा है किन्तु उस जोड़ को इतनी कुशलता से छिपाया गया है कि ध्यान से देखने पर भी कहीं दिखलाई नहीं देता। नीचे के आधार-भाग पर लम्बी पत्तियों का अलंकरण किया गया है। फूलों और पत्तियों पर मुग़ल-कला का प्रभाव है। फूलों की यह तरहें ताज और फ़तहपुर सीकरी के वास्तु में सुशोभान के लिये बनाई गई तरहों जैसी है। कमण्डल में फूल-पत्तियों और मानव आकृतियों को ठप्पे से उभार देकर तैयार किया गया है और फिर ऊपर से तराश देकर उसे अन्तिम रूप दिया गया है।

मध्य के भाग में दस अण्डाकार चित्र हैं, जिनमें से प्रत्येक आकार में ८″ × ६″ है।

(१) श्री रामचन्द्र—आसन पर श्री राम बैठे हुये हैं और उसी आसन पर वामांग में सीता जी हैं। पीछे चंवर लिये लक्ष्मण खड़े हैं। श्री राम का एक चरण सुखासन मुद्रा में आसन पर है और दूसरा हनुमान की गोद में है जो आसन के नीचे बैठे हुए उनका चरण दबा रहे हैं। श्री राम द्विभुजीय दिखलाये गये हैं। उनके दाहिने हाथ में पंखुड़ियों से खिला हुआ कमल है और दूसरी भुजा सीता के कंधे पर रक्खी हुई है। राम धोती पहने हुए हैं और उनके कंधे पर उत्तरीय पड़ा है। माथे पर गोल टोपी के आकार का मुकुट है जिसमें चार पत्र हैं। सीता जी लंहगा और दुपट्टा पहने हैं। राजस्थान की यही वेश-भूषा राजपूत-शैली के चित्रों में भी दिखलाई देती है। उनके हाथों में चूड़ियाँ हैं। हनुमान का शरीर मानव का है और मुख बानर का। वे एक पगड़ी पहने हैं, जिसका बीच का गोल भाग ऊपर उठा है। राजस्थान में कुछ समय पहले तक इस प्रकार की पगड़ियाँ पहनने का रिवाज़ था। राम और सीता के मुख के पीछे प्रभा-मण्डल है।

(२) परशुराम अवतार—इसमें परशुराम सहस्रबाहु से युद्ध करते हुये दिखलाये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहस्रबाहु सिरस्त्राण पहने हैं जिसके ऊपर नोक निकली हुई है। वे नीचे घेरदार जामा पहने हैं और कमर पर पटका बंधा हुआ है। उनका वेश राजस्थान के मध्य-काल के योद्धा के समान है।

सहस्रबाहु के सोलह भुजायें दिखलाई गई हैं जिनमें से तीन भुजायें भूमि पर कटी हुई पड़ी हैं। शेष में भाला, असि, करवाल और गदा आदि अस्त्र-शस्त्र दिखलाई देते हैं।

परशुराम की वेष-भूषा प्राचीन ऋषि के सदृश्य है। उनके मुख पर दाढ़ी है और सिर पर जटा-जूट है। उनके एक हाथ में गदा है और दूसरे में वे परशु लिये सहस्रबाहु पर प्रहार कर रहे हैं। मानव आकृतियों के ऊपर की ओर फलक में किसी कुटी का दृश्य है, जिसमें आगे एक वृक्ष खड़ा है। उसके नीचे एक स्त्री अथवा पुरुष (जो आकृति से स्पष्ट नहीं होता।) लेटा है। गाय अपनी पूँछ उठाये बड़ी तेज़ी से दौड़ती दिखलाई देती है। यह दृश्य परशुराम की कथा का चित्रण करता है। इस धेनु को सहस्रबाहु अपहरण कर ले जाना चाहता था। यह धेनु ही उनके युद्ध का कारण थी।

(३) बलि-वामन--राज-प्रसाद के प्रांगण में, एक आसन पर राजा बलि बैठे हैं। वे जामा और पटका पहने हुये हैं। सिर पर पत्र-युक्त मुकुट है। राजा अपने दोनों हाथों में झारी लिए दान अर्पित कर रहे हैं। दान का संकल्प करते हुए राजा बलि के निकट उनकी रानी खड़ी हैं। वे लहंगा दुपट्टा पहने हैं और भक्ति-भावना से उनके दोनों हाथ जुड़े हैं। राजा के मुख के पीछे प्रभा-मण्डल है जो कि देव-मूर्तियों में दिखलाया जाता है। भवन छज्जेदार है। उसके द्वार चौड़े हैं। राजस्थानी चित्रों में इस प्रकार की बारहदरी का अंकन बहुलता से मिलता है।

राजा बलि के आगे बटुक रूप में विष्णु खड़े हैं। उनका कद बहुत छोटा दिखलाया गया है। वे बगल में छाता दबाये हैं और उनके दोनों हाथ याचना के लिये बलि के आगे फैले हैं। वामन के पीछे एक देव पुरुष खड़ा है जो सम्भवतः इन्द्र है।

(४) नृसिंहावतार—भवन के अलंकृत स्तम्भ को विदीर्ण कर नृसिंह भगवान् प्रकट हुए हैं। वे हिरण्य कश्यप को अपनी गोद में लिटाये, दोनों हाथों से उसका वक्ष विदीर्ण कर रहे हैं। हिरण्य-कश्यप का शरीर मानव का और मुख शूकर का दिखलाया गया है। कमण्डल में अन्य प्रसंगों में भी जहाँ असुर दिखलाये गये हैं, वहाँ उनका मुख शूकर का है या उनके लम्बे कान और सिर पर सींग दिखलाये गये हैं। फ़ारसी के ग्रन्थों में जिन्नात के चित्र भी इसी प्रकार के मिलते हैं। हिरण्य-कश्यप के निकट उसकी रानी तथा प्रहलाद हाथ जोड़े हुये नृसिंह का स्तवन कर रहे हैं।

(५) वाराह अवतार--उग्र-मूर्ति वाराह अपने एक दांत पर पर्वत लिये हैं। उनके मस्तक पर लम्बा मुकुट है। इस फलक में शूकर भगवान् के चार भुजायें दिखलाई गई हैं। उनके हाथ में गदा और दूसरे में चक्र है। एक हाथ की मुट्ठी बंधी हुई है, जिसमें शंख प्रतीत होता है। वाराह के एक हाथ में असुर की चोटी है जिसका शरीर तो मानव का है किन्तु सिर पर सींग हैं तथा लम्बे कान हैं। वाराह उसके वक्ष पर अपना चरण रक्खे हुये हैं। श्रीमद्भागवत् के अनुसार वह असुर हिरण्याक्ष था, जिसने अपने अपरिमित बल से देवगण को प्रकम्पित कर दिया था। वाराह ने उसका वध किया।

(६) मत्स्य अवतार—विशाल मत्स्य के मुख में से चतुर्भुज विष्णु का उद्भव दिखलाया गया है। उनके हाथों में शंख, चक्र और पद्म है तथा चतुर्थ कर से वे हयग्रीव नामक असुर की चोटी पकड़े हैं। हयग्रीव ने ब्रह्मा के वेदों को चुरा लिया था, यह कथा श्रीमद्भागवत् में आती है। लम्बे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सींगों का राक्षस एक शंख पर लेटा है । उसके निकट ही चतुर्भुज ब्रह्मा अपने हाथ जोड़े माया-मत्स्य-रूप नारायण का स्तवन कर रहे हैं ।

(७) **सागर-मंथन**—अमृत की उपलब्धि के लिये देव और दानवों ने मिलकर सागर का मंथन किया । मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाया गया और वासुकि की रज्जु । जिस समय वे सागर का मंथन करते २ थक गये और उसमें से अमृत की उपलब्धि न हुई उस समय उन्होंने विष्णु से प्रार्थना की कि वे बल प्रदान करें । विष्णु ने उन्हें शक्ति दी और सागर में से यह रत्न उद्भूत हुए; अगणित रश्मि-राशि और प्रकाश-किरणों से युक्त चन्द्रमा, देवि लक्ष्मी, सुरादेवी, श्वेतवर्ण का उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत, नारायण के वक्ष-स्थल पर शोभित होने वाली दिव्य किरणों से युक्त कौस्तुभ मणि, वांछित फल देने वाला कल्प-वृक्ष, अमृत-कलश लिये हुए दिव्य-देहधारी धनवन्तरि, कालकूट विष और कामधेनु आदि ।

इस चित्र में कच्छप पर मंदराचल पर्वत की मथानी है जिसमें वासुकि सर्प रज्जु के स्थान पर लपेटा गया है । मन्दराचल पर शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी विष्णु बैठे हैं । एक ओर ब्रह्मा और शिव तथा दूसरी ओर दो दैत्य लगे हुए सागर को मथ रहे हैं । फलक के ऊपर के भाग में एक ओर धनवन्तरि, लक्ष्मी, ऐरावत, कामधेनु और कल्प-वृक्ष दिखलाया गया है तथा दूसरी ओर उच्चैः-श्रवा अश्व, सुरा, चन्द्र, अमृत-कलश व मणि है ।

(८) **यज्ञ का अश्व लिये देव पुरुष**—इस चित्र में एक देव-पुरुष अश्व की राशि अपने हाथ में थामे हुए चलता जा रहा है । घोड़े पर जीन कसी है और उसके ऊपर छत्र तना है, जिससे यह प्रकट हो रहा है कि वह यज्ञ का अश्व है । घोड़े की आकृति बड़ी सजीव है । किस कथांश का शिल्पी ने कमण्डल के इस चित्र में अंकन किया है, यह स्पष्ट नहीं होता । यह सम्भावना होती है कि इन्द्र सगर का यज्ञ का घोड़ा चुराये लिये जा रहा है किन्तु देव पुरुष के शेष तीन हाथों में शंख गदा और पद्म हैं जो कि विष्णु के आयुध व प्रतीक हैं ।

(९) **लक्ष्मी**—लक्ष्मी एक आसन पर बैठी हैं । देवी के चार भुजायें हैं जिनमें उनके स्वामी विष्णु के प्रतीक गदा और चक्र हैं । शेष दो हाथ ध्यान-मुद्रा में एक दूसरे पर रक्खे हैं । मुख के पीछे प्रभा-मंडल है और ऊपर छत्र तना है । दोनों ओर दो पार्षद चँवर डुला रहे हैं । लक्ष्मी तथा पार्षदों की वेश-भूषा राजस्थान की दिखलाई गई है ।

(१०) **कृष्ण**—कृष्ण और राधिका प्रफुल्लित पद्मों पर खड़े हैं । कृष्ण त्रिभंग मुद्रा में खड़े हैं । उनके हाथों में मुरलिका है और माथे पर मोर-पक्ष युक्त मुकुट है । राधा लहंगा पहने हैं और उसके ऊपर दुपट्टा ओढ़े हैं ।

कमण्डल के ऊपर के भाग पर भी दस अंडाकार चित्रों के पैनल हैं । यह सब चित्र महा-भारत से सम्बन्धित हैं ।

(१) **रण-निमंत्रण**—यह एक भवन का दृश्य है जिसमें पर्दा उठा हुआ दिखलाई देता है । चतुर्भुजी कृष्ण अपने शयनागार में आसन पर लेटे हैं और उनके निकट दुर्योधन तथा अर्जुन, सिर-हाने और पैरों की ओर बैठे हैं ।

(२) **राजा और ऋषि**—राजा अपने आसन पर बैठा हुआ है और दो ऋषि उससे कुछ चर्चा कर रहे हैं। यह महाभारत का कौन सा प्रसंग है, यह स्पष्ट नहीं होता ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(३) गुरु द्रोण का अभिषेक--भारत में महर्षि द्रोण का सेनापति के स्थान पर अभिषेक किया जा रहा है। धनुर्धारी द्रोणाचार्य अपने आसन पर बैठे हैं और ब्राह्मण-वर्ग उनका अभिषेक कर रहा है। उनके निकट ही कौरव-पक्ष के वीर योद्धा अपने लौह-वर्म पहने हुए खड़े हैं। उनकी वेष-भूषा राजस्थान के मध्यकाल के योद्धाओं जैसी है।

(४) भीम और दुर्योधन का युद्ध--दुर्योधन महाभारत के अंतिम दिनों में अपनी प्राण-रक्षा के लिये जल के एक सरोवर में जा छिपा किन्तु भीम ने अपना प्रतिशोध लेने के लिये उसका वहाँ भी पीछा किया। इस चित्र में दुर्योधन जलाशय की ओर बढ़ता जा रहा है। भीम उसे हाथ पकड़ कर बाहर निकाल रहे हैं। दोनों के गठे हुए बलिष्ठ शरीर और उनके हाथों की भारी गदायें उनके शक्ति की साक्षी हैं। कृतियाँ अत्यंत ओजवती हैं।

(५) भीम की लौह-प्रतिमा--अन्ध राजा धृतराष्ट्र भीम की लौह-प्रतिमा का आलिंगन कर रहे हैं। एक ओर धनुर्धारी पाण्डव खड़े हैं और धृतराष्ट्र के पीछे चतुर्भुजी कृष्ण खड़े हैं।

(६) सन्धि का प्रस्ताव--कृष्ण, पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आये हैं। कौरवाधिपति धृतराष्ट्र अपने राजदर्बार में बैठे हैं और उनके पीछे साध्वी रानी गान्धारी पट्टी बाँधे हुए बैठी हैं। निकट ही दुर्योधन खड़ा है। धृतराष्ट्र के सामने एक पृथक् आसन पर एक जटा-जूट-धारी ऋषि बैठा है।

(७) भवन का दृश्य—कोई राजा, सम्भवतः युधिष्ठिर अपनी राज-सभा में बैठे हैं। उनके सामने समान आसन पर दो जटा-जूटधारी ऋषि बैठे हुए उनसे कुछ चर्चा कर रहे हैं। भवन के वातायन व द्वारों को बहुत सुन्दर बनाया गया है।

(८) कृष्ण--(जिनको चतुर्भुजाधारी, विष्णु के अवतार रूप में दिखलाया गया है) खड़े हैं और उनके निकट ही एक योद्धा लौह-वर्म पहने कंधे पर तूणीर लटकाये है। सम्भवतः वे गांडीव-धारी अर्जुन हैं। उनके सामने एक देवता खड़ा हुआ है, जिसका मुख शूकर का है। यह भी महा-भारत का कोई प्रसंग है।

(९) वन में पाण्डव—वन में वृक्ष की छाया तले योद्धा बैठे हैं और उनके साथ कुछ ऋषि हैं। योद्धा पाण्डव हैं जो अपने वनवास की अवधि में निष्कासित हैं और वन के ऋषि-मुनियों के साथ बातचीत कर रहे हैं।

(१०) भीष्म की प्रतिज्ञा—महाभारत में यह प्रसंग आता है कि जिस समय दुःशासन ने द्रौपदी का चीर खींचकर उनका सभा के बीच में नग्न कर देने का क्रूर-कृत्य करना चाहा था, उसी समय भीम ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वे दुःशासन का रक्त-पान करेंगे। इस चित्र में दरबार या किसी के अन्तःपुर का दृश्य दिखलाया गया है। भीम गदा लेकर कहीं जाने को उद्यत खड़े हैं। वे आवेश में हैं। कृष्ण उनका हाथ पकड़ कर उन्हें रोक रहे हैं। कृष्ण के नीचे विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है। उसमें से ही कृष्ण का उद्भव दिखलाया गया है। निकट ही पांच पाण्डव व द्रौपदी बैठी हैं।

कमण्डल में सबसे ऊपर एक बड़ा हत्था है जिसके ऊपर अष्ट-दलीय कमल-पुष्पों का अलं-करण है तथा गजों के मुख हैं। सबसे ऊपर चतुर्मुख ब्रह्मा है। उनके लम्बी दाढ़ी है और सिर पर मुकुट है।

कमण्डल के ऊपर कहीं-कहीं सोने की पालिश के चिन्ह दिखलाई देते हैं जिनसे यह अनुमान होता है कि इस पर सोने का पानी भी होगा जोकि अब उतर चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कमण्डल के भागों का आकार यह है:—

कमण्डल की ऊँचाई-५ फीट।
नीचे का भाग-६" इंच।
मध्य भाग-१ फीट ६ इंच।
ऊपर का भाग-१ फुट।
हत्था-२ फुट।
मध्य भाग—गोलाई ७ फुट।
ऊपर का भाग—गोलाई ७ फुट।

ब. ४—वेणु गोपाल

पीतल, बंगाल, १७ वीं शताब्दी। कृष्ण की नृत्य-मुद्रा और वंशी-वादन दक्षिण भारत और बँगाल ही नहीं काठमाण्डू उपत्यका के नेवारी धातु-शिल्पियों का भी अति प्रिय विषय रहा है। एक हाथ में नवनीत लेकर नाचते हुये 'नवनीत नृत्य कृष्ण' और एक चरण कालिय नाग पर रखकर उसके फन पर थिरकते हुये कृष्ण की धातु-प्रतिमायें चोल-काल से बनती आ रही हैं।

वेणु गोपाल की यह मूर्ति पुरानी पड़ जाने के कारण घिस गई है फिर भी लुनाई शेष है। उनके मुख पर मन्द हास्य की रेखा है। कृष्ण पैर तिरछा किये हुये त्रिभंग मुद्रा में खड़े हैं और हाथों की मुद्रायें भी इस प्रकार की हैं कि मानों उनमें मुरली थामे हैं। माथे पर मुकुट नहीं है वरन् जटाओं को ही ऐसा बांध दिया है कि वह मुकुट जैसा लगने लगा है।

यह धातु-मूर्ति वेणु गोपाल की १७ वीं शताब्दी की बंगाल की उस मूर्ति से अद्भुत सादृश्य रखती है, जिसका चित्र डा० स्टैला क्रैमरिश ने अपने ग्रन्थ 'आर्ट आफ इण्डिया' में प्रकाशित किया है। आकार १ फुट × २.५"

ब. ५—अलंकृत जल-पात्र

धातु, ताँबा और जस्ता, बंगाल १७ वीं शताब्दी। यह कलशी पहले ढलाव देकर तैयार की गई है और फिर गोलाई में कृष्ण वेणु गोपाल और नृत्य-काली की जस्ते की भावपूर्ण आकृतियों को अलग से बनाकर ताँबे की पतली कीलों से बड़ी कुशलता के साथ जड़ दिया गया है।

पात्र में नीचे तीन पंक्तियों में खिले पुष्पों और अलंकरणयुक्त पंक्तियों को सुशोभन के लिये बनाया गया हैं और उनके ऊपर, कलशी के मध्य में वेणुवादक कृष्ण और मुण्डमालिनी काली की बड़ी सजीव आकृतियाँ हैं। इसमें कृष्ण पैर बाँका किये त्रिभंग-मुद्रा में खड़े हुये वंशी बजा रहे हैं और काली गले में मानव-मुण्डों की लम्बी माला धारण किये बड़े वेग से दौड़ती हुई सी जान पड़ती हैं। आकृतियाँ अण्डाकार हैं और उनमें कटाव दिया गया है। दो आकृतियों के बीच के रिक्त भाग को फूलों से भरा गया है। उसके ऊपर मयूरों की पंक्ति है। कलशी की गर्दन पतली है और मुँह तथा गरदन पर नोकदार पत्तियों आदि से अलंकरण किया गया है। आकार ८" × ६.२५"

ब. ६—दीप लक्ष्मी

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १८वीं शताब्दी। दक्षिणापत्य के मंदिरों में ऐसी धातु-मूर्तियाँ रहती हैं जिनमें एक स्त्री अपने हाथ में एक बड़ा सा दीपक लिये हुए दिखलाई जाती है। इस प्रकार की मूर्तियों को दीप-लक्ष्मी कहते हैं। 'दक्षिणापत्य की काँस्य-मूर्तियों' में चोल और पल्लव काल की दीप-लक्ष्मी की सुन्दर धातु-मूर्तियों की चर्चा की जा चुकी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संग्रहालय की यह मूर्ति उन प्रतिमाओं की भाँति कमल पर नहीं वरन् एक चौकी पर खड़ी है। दीपलक्ष्मी गले में चौलड़ी माला पहने हैं। उसका मोतियों का हार दोनों स्तनों के बीच में लटक रहा है। वह एक लहरियेदार धोती पहने है जिसका एक सिरा पीछे लटक रहा है। कानों में गोल कुंडल है। सौन्दर्य और भाव की दृष्टि से यह धातु-प्रतिमा अधिक उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती और न चोलकालीन दीपलक्ष्मियों की तुलना में कहीं ठहर पाती है। आँखें चेहरे के अनुपात में बहुत बड़ी हैं, नाक चपटापन लिए है और चेहरा गोल है। दक्षिण में चोल और पल्लवों के बाद नायकों का अभ्युदय हुआ। उनका समय १७वीं शताब्दी तक माना जाता है। यह दीपलक्ष्मी मूर्ति उसके भी बाद की है। डा० शिवराम मूर्ति के मतानुसार यह दीपलक्ष्मी मूर्ति १५० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं ठहरती। आकार ६·२५" × २"

ब. ६—झूले की शृङ्खला

धातु, पीतल, सौराष्ट्र, १९वीं शताब्दी। सौराष्ट्र और गुजरात में अभिजात्यवर्ग अपने कमरों में सोफ़ा-सेट और मेज़-कुर्सी के अतिरिक्त झूला भी डालता है। काठ की पटरी के दोनों ओर कड़े लगे रहते हैं और उनमें जंजीरें पड़ी रहती हैं। इस प्रकार का झूला भारत के किसी अन्य प्रांत में नहीं दिखलाई देता। कृष्ण भक्ति के प्रधान्य के कारण इस प्रान्त में मन्दिरों में हिंडौले भी पड़ते हैं जिनमें बाल-कृष्ण झूलते दिखलाये जाते हैं। श्रावण के मास में ब्रज में भी हिंडौले पड़ते हैं। गुजरात के इस प्रकार के 'डोल' अथवा हिंडोल के सम्बन्ध में श्री जी० वेंकटचलम ने लिखा है :

"When Vaishnavism and the Cult of Krishna absorbed this primitive festival of spring and raised it to a religious festival, it became the sacred "Dole Leela". While preserving all the elements of the seasonal festival, it invested it with a peculiar mystery and dignity. It became a 'Leela' or sport or incident in the ideal of the sportive Krishna in the bowers of Brindaban. It is also a feast of national merry-making in which the ceremony of swinging (Dole) became an essential feature. In its religious side, it soon developed into a ritual, where the effigy or image of Krishna is rocked for three days on a beautifully decorated 'Palang' or seat hung in chains from the ceiling, amidst a gathering of festive makers."

संग्रहालय की पीतल की यह शृङ्खला किसी हिंडोले की ही जान पड़ती है। इसकी कड़ियाँ एक-दूसरे से जुड़ी हैं और बीच में सुशोभन के लिये नारी-मूर्ति, हाथी और झुनझुने भी डाले गये हैं। स्त्री के हाथों में घंटियाँ हैं। तनिक सा हिलते ही जंजीर बज उठती है और उसमें से बड़ी मधुर ध्वनि निकलती है। आकार ५ फीट ४ इंच × ४"

ब. ७—अलंकृत जल-पात्र

धातु, ताँबा, तंजोर, दक्षिण भारत, १९वीं शताब्दी। नवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक, लगभग पाँच सौ वर्षों की लम्बी अवधि तक तंजोर को कला-प्रिय चोल-नृपतियों की राजधानी बने रहने का श्रेय मिला है। चोलों के शासनकाल में तंजोर में अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
हुआ और उनमें भावमयी प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गई। तंजोर का विशाल देवालय, वृहदीश्वर मन्दिर चोल नरेशों की अक्षय कीर्ति का साक्षी है। उनके युग में बनी नटराज व अन्य धातु प्रतिमाओं की कला-समीक्षकों ने भूरि-भूरि सराहना की है। चोलों के पश्चात् शासन-सूत्र नायकों के हाथ में गया और फिर मराठों का आधिपत्य स्थापित हुआ। यह सभी राज-वंश स्थपतियों के प्रश्रयदाता थे इसलिए परम्परा की शृङ्खलाएँ नहीं टूटी।

वास्तु और मूर्ति-शिल्प के अतिरिक्त तंजोर के शिल्पी बड़े कला-पूर्ण पात्र भी गढ़ते थे। स्वर्ण, रजत और ताम्र के यह पात्र देव-पूजन के समय उपयोग में लाये जाते थे। सम्भ्रान्त वर्ग के लोगों के गृहों की यह पात्र शोभा भी थे। शिल्पी पात्र में नीचे से उभार देकर आकृति में स्पष्टता लाते थे। पौराणिक और धार्मिक दृश्य उन्हें विशेष प्रिय थे। जनता में मांग भी इन्हीं प्रसंगों की थी; राम-सीता का परिणय, शिव और उमा आदि। कभी-कभी इस प्रकार के उभारदार ताम्र-चित्रों को अलग से तैयार करके भी पात्र में जड़ दिया जाता था। इस प्रकार के धातु-शिल्प को दक्षिण भारत में 'स्वामी वर्क' कहा जाता है। तंजोर और मदुराई इस प्रकार के काम के लिए ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। तंजोर के 'स्वामी वर्क' के सम्बन्ध में रुस्तम जे० मेहता ने लिखा है—

"The encrusted Swami work of the south is justly famous. It has been described as consisting of 'mythological medallions and canopied niches in imitation of the encrusted and agglutinated style of work which is characteristic of all South Indian art."

संग्रहालय का यह जल-पात्र अथवा ढक्कनदार लोटा गत् शताब्दी की एक सुन्दर कला-कृति है। पात्र में गोलाकार में मिथुन-आकृति है। एक ही नमूने की आठ बार आवृत्ति की गई है। एक पुरुष जिसकी वेश-भूषा सामान्य नागरिक की है, एक स्त्री के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर रहा है। इस विषय-वस्तु का किसी धर्म-कथा से सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। वेश-भूषा तथा आभूषण आदि से जल-पात्र का शिल्प, लोक-कला और शास्त्रोक्त भावमय मूर्ति-शिल्प के बीच की कड़ी जान पड़ता है। अंडाकार, कटावदार आकृतिओं के बीच में जहाँ शिल्पी ने खाली स्थान देखा, वहाँ उसने कटावदार पत्तियों को बना दिया। पात्र में ढक्कन और गर्दन के ऊपर भी फूलों और कटावदार लम्बी पत्तियों का अलंकरण दिखलाई देता है। आकार ९" × ८·५"

ब. ८—नरसिंह मूर्ति

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १९वीं शताब्दी। विष्णु के दशावतार का शिल्प में अंकन गुप्त-वाकाटक कला की देन है। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर दक्षिण भारत के धातु-शिल्पियों ने विष्णु, राम व कृष्ण के अतिरिक्त कूर्म, मत्स्य, वामन, परशुराम और नृसिह आदि अवतारों की मूर्तियाँ तैयार की हैं। श्रीमद्भागवत् की कथा के अनुसार हिरण्यकश्यप को यह वर प्राप्त था कि उसे देव, मानव, पशु या कोई जन्तु मार नहीं सकता। न वह किसी आयुध से मारा जा सकता था। विष्णु ने उस आततायी के संहार के लिए नर और सिंह का सम्मिलित-रूप धारण किया और एक खम्भे को विदीर्ण कर उसमें से प्रकट हुए। विष्णु की नृसिंहावतार मूर्तियों में मनुष्य के शरीर पर सिंह का मुख दिखलाया जाता है। उनके चार भुजायें होती हैं जिनमें से दो में पद्म और चक्र रहते हैं और शेष दो हाथों से वे नखों द्वारा हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण करते दिखलाये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जाते हैं। नृसिह के वस्त्र, ग्राभूषण ग्रादि देवता के रहते हैं। 'योग-नृसिह' मूर्तियों में वे ध्याना-वस्थित दिखलाई देते हैं। वे योगासन लगाये रहते हैं। 'लक्ष्मी-नृसिह' प्रतिमाग्रों में उनकी गोद में लक्ष्मी ग्रासीन रहती हैं।

संग्रहालय की इस छोटी सी किन्तु लाक्षणिक, सुन्दर मूर्ति में नृसिंह विकराल मुद्रा में हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण करने के लिए उद्यत दिखलाई देते हैं। ग्राकार ३" × २½"

ब. ९—लक्ष्मी

धातु, पीतल, दक्षिण-भारत, १९वीं शताब्दी। प्रफुल्लित पद्म की गोलाकृति में लक्ष्मी का ढलाई में तैयार किया गया चित्र, जिसमें देवी लक्ष्मी एक ग्रासन पर बैठी हैं ग्रौर गज उनका ग्रभि-षेक कर रहे हैं। ग्राकार ६ व्यास"

ब. १०—ग्रप्सरा-मूर्ति

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, १९वीं सदी। यह एक सौन्दर्यवती नारी की धातु-प्रतिमा है जिसकी देह-यष्टि की भंगिमा बड़ी मनोरम है। शरीर का एक-एक ग्रवयव बड़ी सुगढ़ता से ढाला गया हैं। मुख पर मन्द स्मित है। सिर पर पत्राकार मुकुट है ग्रौर एक हाथ उठा हुग्रा है। ग्राकार ५" ऊँचाई

ब. ११—नारी-मस्तक

धातु, पीतल, दक्षिण भारत, ग्राधुनिक। किसी नारी का केवल मुख-भाग यह ग्रलग से ढाला गया है। ग्राकार ४·५"

ब. १२—बाल-कृष्ण

धातु, पीतल, राजस्थान, ग्राधुनिक। इसमें कुछ मास के शिशु कृष्ण हाथ में माखन लिए हुए घुटनों के बल चलते दिखलाये गये हैं। उनके माथे पर किरीट है। मूर्ति के नीचे ग्राधार नहीं है।

इन मूर्तियों के ग्रतिरिक्त इस कक्ष में दक्षिण भारत की ग्रन्य कलापूर्ण वस्तुएं भी हैं। देव प्रतिमाग्रों के कई प्रकार के ग्रासन, शिव मन्दिर, नाग-मूर्ति ग्रौर पार्वती की एक छोटी मूर्ति के ग्रतिरिक्त ग्रत्यन्त सुन्दर चम्मचें इस ग्रलमारी में रक्खे गये है। चम्मचों के सिरों पर वेणुवादक कृष्ण, नाग ग्रादि बने हुए हैं।

इस स्थान पर ही कुछ ऐसे पात्र रक्खे गये हैं जिन पर फारसी में कुरानें की ग्रायतें ग्रादि लिखी गई हैं। उनका ग्रन्यत्र उल्लेख किया जा रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेपाल की धातु-मूर्तियाँ : विवरण

स. १—अवलोकितेश्वर

धातु प्रतिमा, ताँबा, नेपाल, १७ वीं शताब्दी। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की यह प्रतिमा अष्ट-भुजी है। उनके दाहिने हाथों में से एक में अक्षमाला है और दूसरे में पाश। तीसरा अपने श्रद्धालु उपासकों को वर दे रहा है और चौथा अभय-मुद्रा में ऊपर उठा है। उनके बाँये हाथों में पुस्तक, अंकुश, प्रफुल्लित पद्म तथा मंगल-कलश है। वे भुजाओं में वलय, कंकण तथा गले में हार पहने हुये हैं। कानों में प्रफुल्लित पुष्पों की आकृति के कुण्डल हैं। उनके सिर पर पाँच पत्रों का मुकुट है जो पाँच ध्यानी बुद्धों का प्रतीक है। उनके कंधे पर यज्ञोपवीत की भाँति मणि बन्ध पड़ा है और कमर में मोतियों की कटि-मेखला है, जिसमें रत्न जड़े हुये हैं। उसकी लड़ियाँ धोती के ऊपर भी झूल रही हैं। मस्तक के ऊपर जटा-जूट में उनके ध्यानी बुद्ध अमिताभ की छोटी सी प्रतिमा है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अवलोकितेश्वर की ही धातु-मूर्ति है। श्री विनय तोष भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'इण्डियन बुद्धिस्ट आइकनोग्राफी' में अवलोकितेश्वर के १०८ विविध रूपों का उल्लेख किया है। उनको देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रतिमा उनमें से किसी रूप से लक्षणों में सादृश्य नहीं रखती। बोधिसत्व की इस धातु-मूर्ति पर सोने का पानी चढ़ा हुआ था, जोकि अब उतर गया है किन्तु उसके चिन्ह शेष हैं। भाव-व्यंजना, शरीर-अवयवों की लुनाई आदि से यह धातु-मूर्ति संग्रहालय की अन्य नेपाली प्रतिमाओं की अपेक्षा प्राचीन जान पड़ती है। मूर्ति पर कोई लेख नहीं है। आकार—६.२" ऊँचाई

स. २—बोधिसत्व पद्मपाणि

धातु, पीतल, मणियुक्त, नेपाल, १८ वीं शताब्दी। नेपाल की यह सुन्दरतम धातु-प्रतिमा संग्रहालय के इस कक्ष की एक कला-निधि है। इस पर सोने का पानी चढ़ा हुआ है तथा रक्त-मणियाँ जड़ी हुई हैं। मूर्ति के पीछे प्राचीन नेवारी में एक लेख है जिससे यह निश्चित होता है कि यह अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध की कृति है। लेख को पढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

पद्मपाणि बोधिसत्व की मूर्तियाँ तथा चित्र सभी देशों में उपलब्ध होते हैं। अजन्ता का पद्मपाणि का चित्र विश्व की श्रेष्ठतम कला-कृतियों में एक माना जाता है जिसमें वे अत्यन्त मोहक मुद्रा में तनिक तिरछे खड़े हैं। मुख पर शान्ति व करुणा के भाव हैं तथा एक हाथ में प्रफुल्लित पद्म है। एलोरा की गुफाओं में भी वे भगवान् बुद्ध के निकट खड़े दिखलाये गये हैं। पद्मपाणि के हाथों में उनके सृष्टि संचालन का प्रतीक पद्म रहता है।

"ध्यानी बुद्ध अमिताभ ने अपने नेत्रों की ज्वाला से पद्मपाणि का सृजन किया। वे यह कहते हुये प्रकट हुये कि सृजन का बीज रत्न कमल में ही है।" कमल पृथ्वी का प्रतीक है। पृथ्वी की अष्ट दिशायें कमल के अष्ट दल हैं।

संग्रहालय की इस पद्मपाणि बोधिसत्व की प्रतिमा में वे एक गोल पीठिका पर खड़े हैं जिस पर कमल की पत्तियों का अलंकरण है। पीठिका एक सिंहासन पर रक्खी है जिस पर सामने की ओर चार सिंहों की आकृतियाँ दिखाई देती हैं। पीठिका या चरण-चौकी पर बोधिसत्व के दोनों ओर, नीचे दो मंगल कलश दिखलाये गये हैं और उनके निकट ही से पत्र-युक्त दो अन्य कलशों में से बेलें निकलती दिखलाई देती हैं जिनके सिरे बोधिसत्व के मुकुट के ऊपर जाकर मिल गये हैं। जिस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्रकार दक्षिणापत्य की चोल-कालीन प्रतिमाओं में एक अग्नि-शिखा युक्त प्रभा-मण्डल रहता है, जोकि प्रतिमा को घेरे रहता है, उसी प्रकार इन लताओं और उनकी कटावदार पत्तियों ने पार्श्व-भूमि को आच्छादित कर दिया है। पाँच कटावों की पत्तियों के अलावा इसमें तीन खिले हुये कमल के अष्ट दलीय पुष्प दिखलाई देते हैं। उनके बीच में रत्न जड़े हुये हैं। एक कमल की नाल उनके बाँये हाथ में है। इस कमल की तरह शेष तीन कमलों से भिन्न प्रकार की है। बोधिसत्व के दाहिने हाथ की मुद्रा वरद है। पद्मपाणि राजकीय परिधान धारण किये हैं। वे एक पतली धोती पहने हैं जिसमें से अंग झलक रहे हैं। कंधों पर उत्तरीय पड़ा है। उसके छोर नीचे दोनों ओर घुमाव देकर इस प्रकार मुड़ गये हैं कि मूर्ति की शोभा और भी बढ़ गई है। आराध्य तनिक भंगिमा में तिरछे से खड़े हैं। उनके मुख पर चिन्तन का भाव है। उनके माथे पर रत्न-जड़ित मुकुट है, जिसके पीछे से उनकी बंधी हुई जटा दिखलाई दे रही है। उनके कानों में गोल कुण्डल हैं, गले में हार है व बड़े-बड़े मोतियों की लम्बी माला है, जो कि उनकी नाभि तक आ गई है। कटि में करधनी है, जिसमें रत्न जड़े हुये हैं और दोनों ओर मोतियों की लड़ियाँ झूल रही हैं। उनके हाथों में वलय व कंकण है व पैरों में भी कड़े हैं।

पद्मपाणि बोधिसत्व की यह मूर्ति अधिक पुरानी न होने पर भी बहुत भाव-युक्त और सुन्दर है। इससे स्पष्ट है विगत्-शताब्दियों तक नेवारी शिल्पियों ने अपनी कला की यशस्विनी परम्परा को सजीव रक्खा था। आकार १ फुट ३ इंच

स. ३--महालक्ष्मी मूर्ति

धातु, पीतल, ऊपर सोने का पानी, नेपाल, उन्नीसवीं सदी। देवि महालक्ष्मी की एक अपेक्षा-कृत बड़ी धातु-प्रतिमा बीच में है और उनके दोनों ओर तीन-तीन देवियाँ हैं। देवी महाराज लीला आसन से बैठी हैं। उनका घुटना कुछ उठा है जिस पर दाहिना हाथ रक्खा है, दूसरा हाथ पीछे टिका है मानों वे विश्राम कर रही हों। वे धोती पहने हैं और कंधे पर उत्तरीय पड़ा है जिसके दोनों छोर भुजाओं में लपेटा देकर पीछे की ओर गये हैं। देवी के गले में हार तथा नाभि का स्पर्श करती हुई मुक्ताओं की माला है। उनके कानों में लम्बे कुण्डल हैं और सिर पर रत्न-जड़ित मुकुट माथे पर त्रिपुण्ड जैसी तीन रेखाओं के बीच में लम्बी बिन्दी या तिलका दिखलाई देता है। कन्धों पर केशराशि छिटकी हुई है। पीठिका पर बैठी हुई शेष देवियों को देखकर पहले यह आभास होता है कि यह ब्राह्मी, कौमारी आदि सप्त मातृकायें हैं किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। सभी देवियाँ यद्यपि एक साँचे की ढली हुई नहीं जान पड़तीं, फिर भी उनमें सादृश्य है वे बीच की महालक्ष्मी प्रतिमा की ही प्रति-कृतियाँ जान पड़ती हैं। आकार में यद्यपि वे छोटी हैं। देवियों के पीछे पान के आकार का कटावदार अलंकरण है। पृष्ठ-भूमि मेंपत्तियों और फूलों की एक बेल है, जैसे कि नेपाली मूर्तियों में प्रभा-मण्डल के स्थान पर दिखलाई देती है। देवि-मूर्तियाँ पीठिका और पीछे की बेल, सभी भाग अलग-अलग ढाले गये हैं और फिर छेदों में फँसाये गये हैं। सभी मूर्तियों पर सोने का पानी है, जिसके कारण वे दमकती हैं। पीठिका अथवा चरण-चौकी पर सामने तथा पीछे की ओर लेख है जिसके अक्षर बँगला से मिलते-जुलते हैं इसीलिए कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि वस्तुतः यह बंगाल की एक कला-कृति है। लेख को अधिकारी विद्वानों द्वारा पढ़ाने की चेष्टा की जा रही है। उसे इस ग्रन्थ के परिशिष्ठ में प्रकाशित भी किया जा रहा है। आकार ४½" × ७"

स. ४—तोरण

धातु, पीतल तथा ताँबा, नेपाल, अठारहवीं शताब्दी। यह किसी बौद्ध चैत्य का तोरण है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जिस पर नेवारी भाषा में एक लेख है। इस लेख को पढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। नेपाल के प्रसिद्ध स्वयंभू नाथ के चैत्य में भी लम्बे शिखर के नीचे तथा चौकोर पीठिका के ऊपर इसी प्रकार के तोरण दिखलाई देते हैं। तोरण के नोंकें निकली हुई हैं और मनुष्य की मुखाकृति है।

स. ५—दीपाधार

धातु, पीतल, नेपाल अठारहवीं शताब्दी। तारादेवी तथा अश्वों की मूर्तियों व आकृतियों से शोभित यह दीपाधार किसी देवालय के अंधकारमय प्रकोष्ठ को शोभित करता रहा होगा। दीपाधार के, जो लम्बे आकार का है; दो भाग अलग-अलग करके ढाले गये हैं और फिर उन्हें मिला दिया गया है। उनमें एक दण्ड का नीचे का भाग तथा दूसरा ऊपर का शीर्ष भाग है। नीचे के भाग में गोल आधार है जो क्रमशः ऊपर छोटा होता गया है। उसके ऊपर कटाव देकर अलंकरण किया गया है। आधार के ऊपर स्तम्भ है जिसके ऊपर सुन्दर पत्तियों की बेल लिपटी हुई है। ऊपर के शीर्ष भाग में मन्दिर की आकृति दिखलाई देती है। मन्दिर शिखर-युक्त है और उसका गुम्बद कमल की आकृति का है जिसकी पंखुड़ियाँ नीचे की ओर झुकी हुई हैं। मन्दिर के छज्जे बाहर की ओर चतुष्कोण में निकले हुए हैं जिन पर चार पक्षियों की आकृतियाँ बनाई गई हैं। मन्दिर के चारों द्वारों में बीच में तारादेवी की मूर्तियाँ हैं, जिससे यह निश्चित होता है कि यह दीपाधार किसी बौद्ध संघाराम का है। तारादेवी एक आसन पर बैठी हुई हैं। उनके दोनों ओर सिंहों की आकृतियाँ हैं। मन्दिर के चारों कोनों पर चार दीपक हैं और उनके निकट अश्व हैं। अपनी दोनों अगली टापें उठाये यह अश्व अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते हैं। दीपाधार अत्यंत कलापूर्ण है और नेवारी शिल्पियों की धातु-कला का एक श्रेष्ठ नमूना है। आकार—१ फुट, १० इंच

स. ६—बोधिसत्व

धातु, पीतल, नेपाल १८वीं शताब्दी। बोधिसत्व, एक चौकी पर, जिस पर सिंहों की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं, खड़े हुये हैं। उनकी यह धातु-मूर्ति अष्टभुजी है। उनके करों में अंकुश, अक्षमाला, पुस्तक-पृष्ठ, पाश तथा कमन्डलु है। उनके दोनों हाथों की मुद्रायें वरद तथा अभय हैं तथा एक हाथ में भग्न है। बोधिसत्व के शरीर पर रत्न-जड़ित हार, मुकुट तथा मेखला शोभित है। पीछे प्रभामण्डल में कमल-पुष्पों तथा मकरों का अलंकरण है।

स. ७—अवलोकितेश्वर की मूर्ति युक्त झारी

धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवीं शताब्दी। इस झारी में एक दीपक भी लगा है। इस प्रकार की झारियाँ नेपाल में गत् शताब्दी से बनती आ रही हैं। जिनके चित्र, सर जान ह्वाट ने अपने ग्रंथ 'इंडियन आर्ट एट देहली' में प्रकाशित किये हैं। इस फलक में नेपाल की दो झारियां हैं, जो संग्रहालय की इस झारी अथवा दीपाधार से इतना सादृश्य रखती हैं मानों उनकी ढलाई एक ही साँचे से हुई हो। नेपाल में इसी प्रकार की हिन्दू देवताओं की मूर्ति सहित झारी भी बनती थीं। सर जान ह्वाट ने इन नेपाली दीपकों अथवा झारियों के सम्बन्ध में लिखा है:

"From Nepal has been received a fine display of hanging, standard and hand lamps, perhaps the best series ever shown at any Exhibition. (see Plate N. 12 on left hand side) Of these may be mentioned a brass lamp 6½ feet high, Rs. 1,314, a brass standard lamp with figures of Ganesh and Bharow, Rs. 80, and

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

a brass standard lamp without figures Rs. 180. Two of the Nepal lamps are shown on Plate No. 13".

इस दीप और मूर्ति-युक्त झारी में सामने की ओर एक बड़ा (कटावदार) पान की आकृति का दीपक जुड़ा हुआ है। उसके किनारों पर छोटी-छोटी पत्तियों का अलंकरण है। दीपक के नीचे के आधार पर, जिससे उसे साधा गया है पुरुष और नारी की उभरी हुई आकृतियाँ हैं। दीपक के सामने झारी के मुख से जुड़ी अवलोकितेश्वर की मूर्ति है और उसके पृष्ठ भाग में सुशोभन है जैसा कि नेपाली धातु-मूर्तियों में दिखलाई देता है। अवलोकितेश्वर बोधिसत्व के तेरह मुख हैं (जो ऊपर की ओर एक के ऊपर दूसरा उठता गया है और सबसे ऊपर एक मुख रह गया है।) अवलोकितेश्वर, समस्त बोधिसत्वों में सर्वाधिक पूजित हैं और उनकी इसी प्रकार की अनेक मुख वाली मूर्त्तियाँ, नेपाल, तिब्बत, भारत, चीनी तुर्किस्तान, मंचूरिया, चीन और जापान सभी देशों में उपलब्ध होती हैं। बौद्ध मान्यता के अनुसार यह चौथी सृष्टि है जिसका सँचालन अवलोकितेश्वर अथवा पद्मपाणि कर रहे हैं। अवलोकिश्वर पद्मपाणि का ही एक रूप है जिस पर तांत्रिक प्रभाव है। अवलोकितेश्वर के अर्थ हैं, वह देवता जो सबको देखता है। ऋग्वेद में वरुण और इन्द्र को 'सहस्र चक्षु' कहा गया है। वे सृष्टि के प्रत्येक प्राणी के कार्य-कलाप को देखते हैं। यही भावना इस करुणामय देव के साथ भी सन्निहित है।

झारी के हत्थे के स्थान पर सर्प और ऊपर नाग-मूर्ति दिखलाई गई है। नाग की आकृति पुरुष की है और उसके मस्तक पर पाँच फनों का सर्प-मुख है। साँची, भरहुत और अजंता आदि के भारतीय शिल्प में नागों का अंकन इसी प्रकार किया है। पुरुष अथवा नारी के ऊपर सर्प का फन दिखलाया जाता है जो कि यह प्रकट करता है कि वे नाग जाति के हैं। पुरुष के सिर पर पाँच या सात फनों का मुख रहता है और नारी के मस्तक पर एक—

इस प्रकार की झारियाँ नेपाल में इन दिनों भी बनती हैं। नई दिल्ली में जनपथ पर तिब्बतियों की दूकानों से विदेशी पर्यटक उन्हें खरीद ले जाते हैं किन्तु वे केवल भद्दी और कलाहीन प्रतिकृतियाँ ही रहती हैं।

स. ८—भगवान बुद्ध, भूमि-स्पर्श मुद्रा

धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवीं शताब्दी। भगवान् बुद्ध भूमि-स्पर्श मुद्रा में बैठे हैं। इस मुद्रा के सम्बन्ध में बौद्ध वाङ्मय में यह उल्लेख आता है कि जिस समय भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व की उपलब्धि नहीं हुई थी उस समय वासना के स्वामी मार-पिशुन ने उनकी साधना भ्रष्ट करने के लिये उनको भांति-भांति के प्रलोभन दिये किन्तु जब वे अपने ध्येय से विचलित न हुये तब उसेने अपनी सेना लेकर उन पर आक्रमण किया। किन्तु सिद्धार्थ तो यह संकल्प करके बैठे थे कि "चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न बाकी रह जाँय, चाहे शरीर, माँस, रक्त क्यों न सूख जाय आसन को नहीं छोड़ूंगा।"

"...मार वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़ और अंधकार-वृष्टि से बोधिसत्व को न भगा सका।...(फिर) बोधिसत्व के पास आकर बोला, "सिद्धार्थ इस आसन से उठ, यह तेरे लिये नहीं मेरे लिये है। "महासत्व ने उसके वचन को सुनकर कहा "मार! तूने न दस पारमितायें पूरी कीं, न उप-पारमितायें, न परमार्थ की पारमितायें, न पाँच महान् त्याग ही तूने किये, न जाति के हित का काम, लोक-हित का काम, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिये नहीं है, यह मेरे ही लिये है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार ने महापुरुष से पूछा "सिद्धार्थ तूने दान दिया है, उसका कौन साक्षी है ?" महापुरुष ने, "यह अचेतन ठोस महा पृथ्वी है, कह चीवर के भीतर से दाहिने हाथ को निकाल, "मेरे दान की तू साक्षिणी है", कहा और पृथ्वी की ओर हाथ लटका दिया। मार-सेना दिशाओं की ओर भाग चली। (बुद्धचर्या, पृष्ठ १६) भगवान् बुद्ध की यह मुद्रा असंख्य प्रतिमाओं में दिखलाई गई है। इसमें आराध्य वज्रपर्यंक आसन से बैठे रहते हैं। उनका दाहिना हाथ, जिसकी हथेली भीतर की ओर रहती है, खुला रहता है। उंगलियों की नोंक से वे पृथ्वी का स्पर्श करते हैं।

संग्रहालय की इस ठोस मूर्ति में बुद्ध एक आसन पर बैठे हैं। उनका शरीर एक चीवर से आच्छादित है। केवल दोनों हाथ बाहर निकले हैं। उनका दाहिना हाथ और कंधा भी खुला है। उनके कानों में बड़े-बड़े बाले हैं। सिर पर मुड़े हुये बाल हैं और ऊपर ककुद् है। माथे के ऊपर छोटे-छोटे कांच के टुकड़े लगे थे जिसमें से कुछ निकल गये हैं।

स. ९—बोधिसत्व मूर्ति

बोधिसत्व, मूर्ति धातु, पीतल, नेपाल, उन्नीसवीं शताब्दी। बोधिसत्व की यह मूर्ति अधिक प्राचीन नहीं जान पड़ती। मूर्ति वस्तुतः ताँबे की है जिस पर सोने का पानी चढ़ाया गया है जो कि अब मिट चुका है। ढलाई भी उत्कृष्ट कोटि की नहीं है। माथे और नेत्र की रेखायें ढलाई के बाद ही काटी गई हैं।

बोधिसत्व महाराज लीला आसन से बैठे हैं उनके एक हाथ में कमल का नाल है और दूसरे हाथ में वे पुस्तक का एक पृष्ठ लिये हैं। पुस्तक के पृष्ठ से प्रज्ञापारमिता का अभिप्राय व्यक्त होता है। बोधिसत्व घुटनों तक की धोती पहने हैं जिसपर फूलों का कटाव है। मूर्ति में रूढ़िगत तत्वों का समावेश है।

स. १०—अलंकृत पात्र

धातु, पीतल, नेपाल, १९वीं शताब्दी। यह देव-मूर्ति युक्त पात्र गोलाकार है और उसके ऊपर एक ढक्कन लगा है। ढक्कन पीतल की जंजीर से पात्र के साथ बंधा हुआ है। उसके ऊपर बारह पंखुड़ियों के विकसित कमल की आकृति है। पंखुडियाँ खिली हैं और उन पर अलंकरण हैं। ढक्कन की ढलाई के समय शिल्पी ने उसमें ऐसा कटाव दिया है जिससे कमल-दल व अलंकरण अधिक स्पष्ट हो गये हैं। पात्र के भीतर रक्खी हुई वस्तु में हवा लगती रहे, इसका ध्यान रक्खा गया है।

पात्र जो कि गोलाकार है, तीन पायों पर टिका है। पायों की आकृति सिंह के पंजों जैसी है। पायों के बीच में घुमावदार पत्तियों की 'तरह' है। पात्र के बीच में कटाव में बोधिसत्व और शक्ति की आकृति है। पात्र पुराना होने के कारण घिस चुका है फिर भी देव-आकृतियों में लुनाई दिखलाई देती है। बोधिसत्व, जिनके माथे पर मुकुट शोभित है, अत्यन्त मोहक मुद्रा में एक वृक्ष के सहारे खड़े हैं। उनका एक हाथ अभय-मुद्रा में उठा है और दूसरे हाथ से वे शक्ति का आलिंगन कर रहे हैं। शक्ति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं, अपने मुख को स्वामी की ओर से तनिक-सा तिरछा किये हुए—मानो लज्जा आ रही हो। देवाकृतियों में लावण्य और मृदुता का सुन्दर संगम हुआ है। लम्बे छरछरे बदन पर अधिक आभूषणों का भार नहीं है। ढलाव में गोलाई में यही आकृति आठ बार दिखलाई गई हैं। आकार ७·५"

स ११—वज्र

धातु, पीतल, नेपाल १९ वीं सदी। बौद्ध-दर्शन में वज्र को शून्यता का प्रतीक माना गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शून्यता को वज्र की तुलना क्यों दी गई इसके भी कारण है, शून्यता का ज्ञान जो निर्वाण की ओर प्रेरित करता है वह तथा वज्र अथवा हीरक दोनों ही मूल्यवान हैं। इसके अतिरिक्त यह दोनों ही अभेद्य हैं अर्थात् इन्हें कोई भेद नहीं सकता। डा० विनयतोष भट्टाचार्य ने वज्र की प्रतीकात्मकता के सम्बन्ध में लिखा है—

"In Buddhist Tantra the word generally designates Shunya or Void, which cannot be cut, cannot be destroyed, but which destroys all evils."

संग्रहालय के इस वज्र में ऊपर सिरे पर पर गोलाकार में क्रोधी देवता वज्रपाणि की एक ही प्रकार की चार आकृतियाँ हैं। वज्रपाणि की आकृति अत्यन्त भयानक है। उनके मुख में से दो विकराल दांत बाहर निकल रहे हैं। उनकी गोल-गोल फटी हुई सी आँखें वज्रपाणि की आकृति को और भी भयानक बना रही हैं। मुखों के ऊपर अश्व का मुख है। वज्र में कमल की पंखुड़ियों का अलंकरण है। नीचे भाले के आकार का फल है जो हाथी के मुख से निकलता दिखलाया गया है। फल पर सर्प घूम रहे हैं। आकार ७.५"

स.—१२ चैत्य

धातु, तांबा, नेपाल, प्राचीन। चैत्य तथागत के निर्वाण का प्रतीक है। यह ताँबे की चैत्य की आकृति है जिसकी नीचे की पीठिका पर वज्र और चक्र की आकृतियाँ हैं। पीठिका पर शिखर है, जिससे नौ चक्कर हैं। उसके ऊपर प्रफुल्लित पद्म है, जिसके ऊपर सूर्य और चन्द्र की आकृतियाँ दिखलाई देती हैं। चैत्य या स्तूप के सम्बन्ध में मैंने अपनी पुस्तक "लद्दाख," में लिखा है—

"बौद्ध मान्यता के अनुसार स्तूप या चैत्य निर्वाण के अतिरिक्त ब्रह्मांड का प्रतीक भी है। उसके ऊपर के शीर्ष भाग में नौ चक्र अथवा घुमाव रहते हैं जो कि भिन्न-भिन्न स्वर्गों के प्रतीक हैं। सर्वोपरि विन्दु में सुमेरु की कल्पना की गई है जहाँ बोधि-चित्त शून्यता में परिवर्तित हो जाता है।...लद्दाख के स्तूप में नीचे पीठिका पर ऊँची चौकोर चौकी रहती है और उसके ऊपर छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनी रहती हैं। फिर लम्बाई लिये अण्डाकार भाग रहता है और उसके ऊपर क्रमशः पतला होने वाला स्तम्भ। इस स्तम्भ में चक्र अथवा घुमाव रहते हैं। सबसे ऊपरी भाग में अर्ध-चन्द्र की गोलाकृति रहती है और उसके ऊपर एक छोटा गोल आकार।"

संग्रहालय का यह छोटा सा चैत्य का नमूना इसी प्रकार के चैत्य के आधार पर बनाया हुआ जान पड़ता है। आकार ५.५"

स. १३—बोधिसत्व

धातु तथा शीशा, नेपाल १९ वीं शताब्दी। पीतल के पतरे से तैयार की हुई बोधिसत्व-मूर्ति जिसके चार भुजायें हैं। (पीतल के शरीर के अवयवों में हरा काँच जड़ा हुआ है।) मूर्ति के पीछे प्रभा मंडल है जिसमें नीले तथा लाल कांच के चमकते हुए टुकड़ों से जड़ाई की गई है।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त नेपाली वस्तुओं में पीतल की हंस, सुराही, घंटाकृति, चाकू रखने का म्यान, चूड़ियाँ आदि वस्तुयें हैं जिनका पृथक् रूप से विवरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्र-चित्र : विवरण

इस कक्ष के विशाल ताम्र-पट्ट, जिन पर मुगल शाहन्शाह और बेगमों के चित्र उभार कर बनाये गये हैं, संग्रहालय की विशिष्ट कला-निधि समझे जाते हैं। इन ताम्र-चित्रों पर फारसी में लेख है जिससे यह ज्ञात होता है कि अमुक व्यक्ति का चित्र है किन्तु शिल्पी अथवा उनका रचना-काल का कहीं उल्लेख नहीं है जिसके आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सके कि यह अमुक शताब्दी की कृतियाँ है फिर भी ताम्र चित्रों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक ही काल की कृतियाँ नहीं हैं। उनमें एक परम्परा चलती हुई दिखाई देती है। चित्रों की विषय-वस्तु ईरानी और भारतीय है। सबसे पुराना चित्र सुलतान उमर शेख मिर्जा बादशाह का है जो तैमूर की वंश-परम्परा में चौथा मुगल बादशाह था। सुप्रसिद्ध विजेता शाहन्शाह बाबर सुलतान उमर शेख मिर्जा का पुत्र था, इस प्रकार यदि उस चित्र को बादशाह की समकालीन कला-कृति माना जावे तो इसका समय १५ वीं शताब्दी निश्चित होता है। सबसे आधुनिक चित्र अकबर शाह सानी (द्वितीय) बादशाह का माना जा सकता है जिनका शासन-काल इतिहासकारों के अनुसार सन् १८०६ से सन् १८३७ ई० तक है। इस प्रकार के चित्र किसी अन्य संग्रहालय में उपलब्ध नहीं होते जिनके आधार पर कुछ निर्णय निकाला ला सके। अधिकारी विद्वानों का अनुमान है कि यह ताम्र-चित्र १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक बनते रहे हैं। सन् १९०३ में सर जॉन ह्वाट और कला-समीक्षक श्री परसी ब्राउन के प्रयत्नों से दिल्ली में एक कला प्रदर्शिनी हुई थी, जिसका विवरण सर जॉन ह्वाट ने अपने ग्रन्थ 'इंडियन आर्ट एट देहली' में दिया है। उस प्रदर्शिनी में इस प्रकार के कोई ताम्र-चित्र नहीं रक्खे गये, जैसे कि यह विशाल ताम्र चित्र हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध पत्र 'जनरल ऑफ इंडियन आर्ट एन्ड इंडस्ट्री' में भी इस प्रकार के चित्रों का कहीं उल्लेख नहीं है। सन् १८८३ ई० में जयपुर में भी एक कला प्रदर्शिनी हुई थी, जिसका विवरण सर थॉमस हन्टले ने प्रकाशित कराया था। उनके इस ग्रन्थ में भी इस प्रकार के उभार कर बनाये गये ताम्र-चित्रों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इन सब को ध्यान में रखते हुये इस निर्णय पर पहुँचना पड़ता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य-काल के बाद इस प्रकार के ताम्र चित्र नहीं बनते थे।

जहाँ तक सुलतान उमर शेख मिर्जा और बेगम अख्तर जमानी जौजे बाबर बादशाह के ताम्र चित्रों का प्रश्न है, वे निश्चित रूप से भारतीय चित्रों के आधार पर तैयार नहीं किये गये। मुगलों में उनके पूर्वज तैमूर के समय से कला-प्रियता और गुण-ग्राहकता की भावना रही। उनके दर्बारों में कुशल चित्रकार रहा करते थे। श्री राय कृष्णदास ने लिखा है :

"तैमूरिया वंश आरम्भ से ही संस्कारी और गुणियों का आश्रय दाता था। तैमूर का पौत्र शाहरुख कवि था और उसके दर्बार में चित्रकार भी थे। जिनमें से एक शाहरुख के राजदूतों के के साथ चीन तक गया था। १५वीं शताब्दी अन्त में सुलतान मिर्जा हुसैन ने अपने समय के अच्छे से अच्छे चित्रकारों को अपने यहाँ रक्खा था जिनमें बिहजाद भी था जो ईरानी शैली का सर्व प्रसिद्ध चित्रकार है।" अनुमान है कि ईरानी शैली के इन प्राचीन चित्रों के आधार पर यह ताम्र-चित्र ईरानी या मुगल दर्बारों के भारतीय शिल्पियों द्वारा तैयार किये गये हैं। कैमरूँ शाह ईरान और रुस्तम शीर्षक ताम्र चित्र की विषय वस्तु पूर्णतया ईरान की है। उनकी वेष-भषा और आभूषण आदि भी उसी देश के हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ विद्वानों का मत है कि यह ताम्र-चित्र उन मुसलमान कलाकारों के हैं जिन्हें ईरानी कला की परम्परा पैत्तिक दाय के रूप में मिली थी। मुगल साम्राज्य के अवनति-काल में कोई प्रश्रयदाता न होने के कारण यह शिल्पी राजस्थान में, विशेष रूप से जयपुर चले गये। वहीं इन कृतियाँ का सृजन हुआ। कुछ विद्वान् इन्हें १९वीं शताब्दी से अधिक प्राचीन नहीं मानते।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन ताम्रचित्रों के पहले बड़े-बड़े ठप्पे तैयार किये जाते होंगे और फिर उनकी ढलाई की जाती होगी। ढलाई के पश्चात् उनपर कटाव का काम किया जाता होगा और फिर अंतिम रूप से तराश देकर आभूषण आदि पर सोने का पानी चढ़ाया जाता होगा। यह सोने का पानी इन चित्रों पर अब तक चमकता है। चित्र की भूमि काली है, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि ताँबे पर काले रंग की हल्की वार्निश की गई है। जहाँदार शाह का चित्र शेष चित्रों से भिन्न है और पीपल के मोटे पतरे से तैयार किया गया जान पड़ता है।

एक बात सहज ही आश्चर्य पैदा करती है। यदि यह ठप्पे से उभार देकर तैयार किया हुआ काम है तो उनके नमूने से इसी प्रकार के और भी ताम्र-चित्र तैयार किये गये होंगे किन्तु यह ताम्र-चित्र दुर्लभ हैं। भारत के किसी अन्य संग्रहालय में इस प्रकार के ताम्र-पट्ट है या नहीं, यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

द १. सुलतान उमर शेख मिर्जा बादशाह

तैमूर के वंशज उमर शेख मिर्जा बादशाह बाबर के पिता थे। वे तुर्क थे। बाबर की माता मंगोल वंश की थी इसीलिये यह वंश मुगल कहलाया। सन् १४९४ ई० में बाबर को ग्यारह वर्ष का छोड़कर सुलतान की दुर्घटना में मृत्यु हो गई।

इस ताम्र चित्र में उनके लम्बी ढाढ़ी और मूछों से भरा हुआ चेहरा दिखलाया गया है। उनकी आकृति भव्य और व्यक्तित्व रौबीला जान पड़ता है। वे सिर पर साफा बाँधे हुए हैं जो कुछ गोलाई देकर बाँधा गया है। बीच में गोल कुला है। साफ़ा के ऊपर मोतियों की लड़ियाँ दिखलाई दे रही हैं और सामने तुर्रा लगा है। वे एक लम्बा जामा पहने हैं जिसमें सीधा कटाव देकर बन्द लगाये गये हैं। इस प्रकार की कटाई के जामे प्राचीन ईरानी चित्रों में दिखलाई देते हैं। जामे के ऊपर भी कटाई है और ऐसा लगता है कि उस पर कलाबत्तू का काम किया गया हो गले में मोटा दुपट्टा है जिसके दोनों छोर नीचे की ओर आये हैं। दिल्ली में हाथी दाँत के पतरों के ऊपर भी सुलतान उमर शेख मिर्जा बादशाह के चित्र मिले हैं। उनसे यह आकृति मिलती है। सुलतान का नाम फारसी में एक कोने में लिखा है। आकार २२″ × १७″

द.२. बेगम अख्तर जमानी जौजे बाबर बादशाह

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध अथवा अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों का यह ताम्र चित्र धातु-शिल्पियों की श्रेष्ठ कृति है। बेगम का चेहरा गोलाई लिये है और उनके सिर के लम्बे बाल उनके सिर के मुकुट में से निकल कर कन्धों पर छिटक रहे हैं। सिर का मुकुट कुछ लम्बाई लिये है और उसमें रत्न जड़े हुये दिखलाई गये हैं। मुगल चित्रों के आधार पर श्रीमती जमीला वृज भूषण ने अपने ग्रन्थ 'इंडियन ज्वैलरी एन्ड ओरनामैन्टस' में मुगल बेगमों के कुछ रेखाचित्र प्रकाशित किये हैं। उस में उनके मुकुटों के जो नमूने दिये गये हैं उनसे यह बेगम अख्तर जमानी का मुकुट भिन्न प्रकार का है। वे जो जामा पहने हैं उसपर फूलों का कटाव है। उनके कानों में लम्बे बुन्दे, गले में हार तथा मोतियों की दुलड़ी मालायें हैं। हार में नीचे एक बड़ा रत्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जड़ा हुआ है। वे कमर में करधनी या पेटी पहने हैं जिसमें चार मोटी लड़ियाँ हैं और जिसका ठप्पा सामने दिखलाई दे रहा है। आकार २२" × १६"

द—३. कैमरू शाह ईरान और रुस्तम

यह विशाल ताम्रपट्ट किसी ईरानी कलाकार के चित्र पर आधारित जान पड़ता है। सरोवर के तट पर, जिसमें मछलियाँ आदि दिखलाई दे रही हैं ईरान के प्रसिद्ध शाहन्शाह कैमरू तथा उनके समकालीन वीर पुरुष रुस्तम अपने अश्वों पर बैठे हैं। उनके साथ अन्य योद्धा भी दिखलाई दे रहे हैं। शाहन्शाह की वेष-भूषा, मुकुट व अलंकार अन्य व्यक्तियों से भिन्न हैं। शेष व्यक्ति योद्धाओं जैसा जिरह बख्तर व नुकीली टोपी पहने हैं। उनके शरीर बड़े बलिष्ठ दिखलाये गये हैं। आकार ५०" × ३६"

द—४. पोलो का खेल

इस दृश्य में कुछ पुरुष और स्त्रियाँ घोड़ों पर सवार होकर पोलो खेल रहे हैं। पुरुषों तथा स्त्रियों की वेश भूषा और आकृतियों से यह ताम्र चित्र भी किसी ईरानी चित्र पर आधारित जान पड़ता है।

पुरुष लम्बे कोट पहने हैं और उनके सिरों पर लोहे की टोपियाँ हैं जिनमें नोक निकली हुई है। पार्श्व भूमि में एक पर्वतीय दुर्ग दिखलाई देता है। आकार ५२" × ३६"

द—५. जवाहर मेला अकबरी

यह ताम्र चित्र अन्य चित्रों से भिन्न है क्योंकि इसमें सरोवर के तट का एक दृश्य दिखलाया है। सरोवर की पृष्ठ-भूमि में दूर तक फैले हुये राजभवन दिखलाई देते हैं जिनकी वास्तु-शैली स्पष्ट रूप से मुस्लिम है। सरोवर के किनारे सीढ़ियोंदार घाट है जिन पर पुरुष तथा स्त्रियाँ दिखलाई देते हैं। सरोवर के बीच में नौकायें पड़ी हैं, जिनके ऊपर मल्लाह बैठे चिलम पी रहे हैं। ताम्र-चित्र लोक-कला के अधिक निकट है। आकार ५०" × ३५"

द—६. जहाँगीर और नूरजहाँ

बादशाह जहाँगीर अपनी बेगम के साथ बड़ी भावमयी मुद्रा में खड़े हैं। उनकी आकृति तथा वेष-भूषा वही है जो उनके चित्रों में दिखलाई देती है, लम्बा अंगरखा, साफे पर मोतियों की लड़ियाँ गले में पटका, सुन्दर व्यक्तित्व—

नूरजहाँ अपने हाथ में पंखा लिये खड़ी हैं। उनके गले में चम्पाकली, मोहनमाला तथा मोतियों के झूलती हुई मालायें हैं। आकृतियाँ अत्यंत सजीव हैं। ५०" × ३५"

द—७. शाहजहाँ और कदीसा बेगम

सुप्रसिद्ध मुगल शाहन्शाह शाहजहाँ अपनी बेगम कदीसा के साथ खड़े हैं। बादशाह के एक हाथ में फूल है और दूसरा हाथ अपनी राज महिषी के कंधे पर रक्खा है जो तनिक तिरछी खड़ी हैं। बेगम के हाथ में मद्य की सुराही है। शाहन्शाह अपने सिर पर लम्बा साफा बाँधे हैं जैसा कि उनके मुगल चित्र-शैली के चित्रों में दिखलाई देता है। वे अंगरखा पहने हैं जिसपर फूलों की खिलावट है। उनके कमर में एक पटका बंधा है जिसमें लम्बी तलवार लटक रही है। कदीसा की कमर में भी कटार है। आकार ५४" × ३८"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द— अकबर शाह सानी

अकबर सानी (सन् १८०६ ई० से सन् १८०७ ई० तक) का यह ताम्र चित्र अपेक्षा-कृत नया होते हुये भी बहुत सुन्दर है। बादशाह किसी गहरे चिंतन में है, उनके माथे की शिकन यह साफ बतला रही हैं। उन्होंने हुक्के की नली को मुँह से हटा दिया है। उनका चेहरा लम्बा और प्रभाव-शाली है। उनके दाढ़ी और मूछें हैं। मूंछों को ओठों पर से साफ कर दिया गया है। वे सिर पर साफा पहने हैं जिसके ऊपर जड़ाऊ पट्टा है और आगे की ओर तुर्रा है। उनके गले में दुपट्टा पड़ा है। जामा कलावत्तू का कामदार है जिस पर पत्तियों का कटाव है। आकार २२″ × १६″

द—६ जहाँदार शाह

मुगल बादशाह मोजिउद्दीन जहांदार शाह का शासन काल अकबर सानी से पूर्व का (सन् १२१२-१३) माना जाता है किन्तु यह चित्र अकबर सानी के चित्र की अपेक्षा नवीन है। आकृति में वह स्वाभाविकता आदि नहीं दिखलाई देती जो अन्य ताम्रचित्रों में है। कटाव भद्दे हैं। आकार ३८″ × ३८″

द. १०—फानूस

धातु, पीतल, भारत, १६वीं शताब्दी। यह किसी दर्बार का फानूस है, जिसको मोमबत्ती लगाकर छत से लटका दिया जाता होगा। जाली के छिद्रों में से प्रकाश फैलता होगा। कटाई व बनावट बड़ी कलापूर्ण है।

द. ११—कटोरा

पीतल, भारत, इस गोल कटोरे में भीतर और बाहर कुरान की आयतें खोदी गई हैं। इसमें जल रखकर, फिर उससे रोगी को छींटे दिये जाते होंगे। ऐसा विश्वास पिछले दिनों तक प्रचलित था।

द. १२—मद्य-पात्र

ताँबा, विदेशी पात्र, समय अनिश्चित। इस पात्र पर, जो चाय या मद्य का जान पड़ता है, किसी भाषा में लेख है। इस लेख को पढ़ाने की चेष्टा की जा रही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तृतीय कक्ष

भारतीय-कला

(आधुनिक)

भारत का शिल्पी मूल-रूप से व्यवसायी नहीं वरन् कलाकार रहा है। यद्यपि वह किसी ऐसे लोक का प्राणी नहीं, जहाँ के निवासी सांसारिक आवश्यकताओं से ऊपर उठे हों, फिर भी वह अपनी कृति में अपने को खो देता है। उसकी रचना में उसका आनन्द भी निहित है। यही कारण है कि उसकी कृति में एक सजीवता, एक प्राण आ जाते हैं जो मशीनी चीजों में नहीं मिलते। विदेशी दासता में हमारे शिल्प का पतन भी हुआ। सस्ती, विदेशी वस्तुओं से बाज़ार पट गये। ढाके की वह मलमल, जिसके एक थान में अम्बारी सहित हाथी ढंक गया था, बीते दिनों की एक कहानी बन गई।

भारतीय स्वाधीनता के उषा-काल में जागृति की रश्मियां फूटीं। देश ने अपने शिल्प की गौरवमयी परम्परा की ज्योति को पुनः प्रज्वलित किया। आज देश के विभिन्न भागों में विविध प्रकार की कलात्मक वस्तुओं का सृजन हो रहा हैं। इस कक्ष में इसी प्रकार की वस्तुओं का (प्रान्त के अनुसार वर्गीकरण करके, प्रदर्शन किया गया है। श्रीनगर (काश्मीर) की पेपियर मेशी और काष्ठ-कला, खुर्ज़ा, चुनार, लखनऊ, जयपुर, बीकानेर और नौहर का मनमोहक मृत्तिका-शिल्प, राजस्थान और मैसूर की हाथीदांत की आश्चर्यजनक कृतियाँ, कटक की सींग की वस्तुयें, आगरे का संगमर्मर, वाराणसी की तांबे की कलापूर्ण वस्तुयें और पंजाब की काष्ठ-कला आदि के श्रेष्ठ नमूने इस कक्ष की शोभा हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तों के कला-कौशल का परिचय ही इस कक्ष के उद्देश्य है। सारी वस्तुयें शीशे के आकर्षक शो-केसों में रक्खी गई हैं और साथ ही शिल्प-विशेष का परिचय पृथक् पट्टिका में दिया गया है ताकि दर्शक उसके बारे में पर्याप्त जानकारी लेकर जा सकें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय-कला : आधुनिक

१. हाथीदांत का भारतीय-शिल्प

यह सच है कि हाथीदाँत के शिल्प को अस्थि होने के कारण उपासना के उपकरणों में स्थान नहीं मिला ; हाथीदाँत की मूर्तियाँ बनाकर उनकी देव-मन्दिरों में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं की गई फिर भी अपने सौन्दर्य, चमक और चिकनेपन के कारण हाथीदाँत शिल्पियों और कला के रसज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। वह संसार के प्राचीनतम शिल्पों में से एक है। जिस समय मानव की सौन्दर्य-भावना का विकास हो रहा था और वह नये-नये औज़ारों को निर्मित करने में लगा था, उस प्राक्-ऐतिहासिक काल की भी हाथीदाँत की वस्तुयें संसार के भिन्न-भिन्न भागों में उपलब्ध हुई हैं। मोहेंजोदड़ो के उत्खनन से प्राप्त हाथीदाँत की वस्तुओं की चर्चा हम इस लेख में ही कर रहे हैं।

रामायण में हाथीदाँत के शिल्प और उसके कारीगरों का उल्लेख मिलता है। भरत ने राम की खोज के लिये वन-प्रान्तर में जिन सेवकों को भेजा उनमें 'दन्तकार' भी थे। लंकाधिपति रावण का भवन हाथीदाँत की कलाकृतियों से सुसज्जित था। हाथीदाँत भवनों के तोरण और वातायनों के वास्तु में उपयोगी समझा जाता था। महाभारत में यह उल्लेख है कि राजसूय के अवसर पर कामरूप के नृपति ने सम्राट युधिष्ठिर को अपनी मैत्री के उपहार-रूप हाथीदाँत का पलंग और हाथीदाँत के मूँठ की तलवार भेंट की थी। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवीं शताब्दी ईसा-पूर्व में भारत में हाथीदाँत की सुशोभन आदि की उपयोगी वस्तुयें बनने लगीं थीं।

कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में लिखा है कि राजा अपने राज्य की सीमा पर वन रखता था और उसमें हाथियों को पालता था। हाथियों का शिकार वर्जित था किन्तु जो व्यक्ति मरे हुये हाथी के दाँत लाकर देता था उसे सवा चार पण पुरस्कार के रूप में दिये जाते थे। कौटिल्य के समकालीन ग्रीक इतिहासकारों ने भी हाथीदाँत की कलात्मक वस्तुओं का उल्लेख किया है। एरियन ने लिखा है कि राज-परिवार की रमणियाँ हाथीदाँत के भुजबन्द धारण किया करती थीं।

हाथीदाँत देखने में तो बहुत सुन्दर लगता ही है, इसको काटना भी अधिक कठिन नहीं होता। काटने से पहले मसालों आदि के द्वारा इसे तैयार किया जाता है। पहले हाथीदाँत का टुकड़ा काट लिया जाता है और फिर रूखानी से उसकी मोटी आकृति तैयार की जाती है। उसके पश्चात् उत्कीर्ण रूप के अंगों को तराश-तराश कर स्पष्ट कर लिया जाता है। इस कार्य में खोदने वाली कलम और बर्मे से सहायता ली जाती है। जब वस्तु तैयार हो जाती है तब मछली के छिलके और खड़िया से उस पर पालिश कर दी जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जातक-कथाओं में एक कथा सीलव जातक है। उससे ज्ञात होता है कि वाराणसी में हाथीदाँत के कारीगरों का एक पृथक् बाज़ार था। उसमें अनेक दुकानें थीं। कथा का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

एक बार बोधिसत्व ने गज-रूप में जन्म लिया। उनका शरीर रजत की भाँति श्वेत वर्ण था, नेत्र मणि की भाँति ज्योतियुक्त थे तथा मन क्षमा, करुणा और परोपकार आदि दिव्य-गुणों से पूरित था। एक बार उन्होंने वन में बस्ती के किसी आदमी को रास्ता भूलकर भटकते हुये देखा। उसके दुःख से उनका मन द्रवित हो उठा। वे उस व्यक्ति को अपनी पीठ पर चढ़ाकर वन से बाहर पहुंचा आये। उन्होंने बस्ती के उस व्यक्ति से विदा लेते समय कहा कि किसी को यह स्थान न बतलाना। पर वह कृतघ्न निकला। वह जब वाराणसी में पहुंचा तब घूमते हुये उसने हाथीदांत का बाज़ार देखा। उसने वहाँ काम करते हुये शिल्पियों से पूछा, "यदि तुम्हें जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे खरीदोगे?" शिल्पी बोले, "जीवित हाथी का दाँत तो मृत हाथी के दाँत से भी कहीं अधिक मूल्यवान होता है तुरन्त उसे ले आओ।" वह अकृतज्ञ मनुष्य एक तेज़ आरी लेकर फिर उसी वन में गया। उसने सीलव बोधिसत्व से उनके दाँत की याचना की। बोधिसत्व कभी किसी याचक को विमुख नहीं करते। उस व्यक्ति की दरिद्रता दूर करने के लिये उन्होंने अपने दाँतों को कटवा लिया।

श्री रे डेविट्स ने जातकों के आधार पर लिखा है कि बौद्ध युग के व्यापारी रेशमी वस्त्र, सुगन्धियों और किमख़ाव आदि के अतिरिक्त हाथीदाँत व उससे बनी हुई वस्तुओं का व्यवसाय भी करते थे।

मृच्छकटिक नाटक में हाथीदाँत के तोरण का और वृहत् संहिता में हाथी दाँत की सुलंकृत शैया की चर्चा आती है।

भारत अत्यन्त प्राचीन युग से विदेशों को रत्न, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं के साथ हाथीदाँत भी भेजता रहा है। दसवीं शताब्दी ईसा-पूर्व में बादशाह सुलेमान को भारत से रत्न, मयूर, तौते, चन्दन तथा हाथीदाँत प्राप्त हुआ था। उसके पश्चात् यह परम्परा आगे बढ़ती हुई दिखलाई देती है। प्रथम शताब्दी तक भारत के रोम के साथ व्यापारिक सम्बन्ध पूरी तरह से स्थापित हो चुके थे। यहाँ से रोम को मोती, शंख, चन्दन व हाथीदाँत भेजे जाते थे। वहाँ से मूंगा, मद्य, और शीशा आता था। भारत से रोम जाने वाली वस्तुओं का मूल्य अपेक्षाकृत अधिक होता था इसलिये रोम को इन वस्तुओं का मूल्य स्वर्ण के रूप में चुकाना पड़ता था। रोम के आभिजात्यवर्ग की स्त्रियाँ मोती के आभूषण पहनने में परस्पर स्पर्द्धा किया करती थीं। वे बन्दर, मयूर और तोते भी पालती थीं। यह पशु मलावार के बन्दरगाहों से भेजे जाते थे। भारत से रोम को हाथी भेजे जाते थे और हाथीदांत भी। विशेष अवलरों पर भारतीय गज रोमन् सम्राट का रथ खींचते थे। रोम के कारु-शिल्पी, हाथीदाँत से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शृङ्गार की वस्तुएं कंघियाँ और कुर्सियाँ आदि बनाते थे। बचे हुए टुकड़ों से मेजों और दरवाज़ों पर सुन्दर पच्चीकारी की जाती थी।

ईसा की प्रथम शताब्दी में लिखे गये ग्रन्थ पेरिप्लस से रोमन व्यापारियों तथा सार्थवाहों की रोम-यात्रा पर प्रकाश पड़ता है। जिन बन्दरगाहों से भारत का माल रोम जाता था उनमें भड़ौंच, सुपारा, मुशिर तथा तेलकुण्डा मुख्य थे। इन स्थानों से मोती व रेशमी वस्त्र आदि के साथ हाथीदांत भी काफ़ी परिमाण में लदता था। यह युग रोम का स्वर्ण-युग समझा जाता है। सम्राट् आगस्टस् उन दिनों रोम के राजसिंहासन पर आसीन थे। उनकी सद्भावनापूर्ण नीति के कारण यह दोनों सुसभ्य देश, भारत और रोम, एक-दूसरे के अत्यधिक निकट आ गये थे। इस युग में न केवल व्यापार में अधिक वृद्धि हुई वरन् दक्षिणापत्य में रोमन व्यापारियों की बस्तियाँ बस गईं। रोम के नागरिकों के साथ कुछ शिल्पी भी भारत आये। उन्होंने अपने सम्राट् आगस्टस् की स्मृति में एक भव्य-मन्दिर का निर्माण किया। वे हाथीदाँत और शंखों पर अतीव सुन्दर व कलात्मक आकृतियाँ खोदते थे।

लेम्पेस्कोस से चाँदी की एक बड़ी तश्तरी उपलब्ध हुई है जिसका समय दूसरी या तीसरी शताब्दी निश्चय किया जाता है।

इस तश्तरी में एक स्त्री मलमल की साड़ी पहने हुए एक कुर्सी पर बैठी है। कुर्सी के पाये हाथीदाँत के हैं। स्त्री की पगड़ी में से ईख के दो टुकड़े बाहर निकल रहे हैं। उसके बाँये हाथ में धनुष है। इस तश्तरी में एक तोता एक सुनाल पक्षी तथा दो बन्दर दिखलाई देते हैं। तश्तरी के नीचे के भाग में दो मनुष्य शेर और चीते को रस्सी में बाँधे हुए खड़े हैं। मनुष्यों की पीठ पर सामान की गठरियाँ लदी हैं। डा० मोतीचन्द का मत है कि यह मूर्ति भारत-लक्ष्मी की प्रतीक है और तश्तरी में उन वस्तुओं को प्रदर्शित किया गया है जो उस युग में भारत से रोम को भेजी जाती थीं। यहाँ से न केवल रोम को वरन् अन्य देशों को भी हाथीदाँत जाता रहा है। मार्को-पोलो ने पूर्वीय देशों से वेनिस की ओर आने वाली जिन वस्तुओं का उल्लेख किया हैं, उनमें रेशमी वस्त्र, सोना, मोती, हीरे और क़ीमती लकड़ी के अतिरिक्त हाथीदाँत भी है।

भारत और अरब के सांस्कृतिक सम्बन्ध अत्यंत प्राचीन हैं। सन् १४ हिज्री में हज़रत उमर से एक व्यापारी ने कहा था, "आठवीं शताब्दी में भारत से अरब और ईराक को चन्दन, कपूर, लोंग, लाल, मोती, गिल्लौर, काली मिर्च, मलमल और हाथी-दाँत आदि वस्तुयें जाती थीं।"

नवीं शताब्दी के एक अरब यात्री ने लिखा है—"भारत के पानी में मोती और अम्बर होता है। उसके पहाड़ों में जवाहरात और सोने की खानें हैं। उसके पशुओं के मुख में हाथीदाँत है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अरब को हाथी और हाथीदाँत सिन्ध के बन्दरगाहों से जाया करते थे। अरबी के एक कवि अलूजिअज़ ने जो सम्भवतः सिन्ध में रहा था, भारत के गुणों की सराहना करते हुए लिखा है कि इस देश की मुख्य वस्तुओं में कस्तूरी, कपूर, अम्बर, चंदन, सागौन की लकड़ी, भाँति-भाँति के इत्र तथा हाथीदाँत हैं।

भारतीय-कला में हाथीदाँत के शिल्प के नमूने सिन्धु-घाटी-सभ्यता के समय से ही उपलब्ध होने लगते हैं, इससे ज्ञात होता है कि प्राक् ऐतिहासिक काल से ही हाथीदाँत कारु-शिल्प का एक माध्यम बन चुका था। गज भारत का एक अति प्राचीन पशु है। उसे पद्म, स्वस्तिक, कुम्भ और चक्र की भाँति संस्कृति के प्रतीकों में स्थान मिला है। गज, विवेक और वैभव का प्रतीक है। मोहेंजोदड़ो की मुद्राओं पर गज की आकृतियाँ उत्कीर्ण मिली हैं। सिन्धु-संस्कृति के अवशेषों में, धातु और मृत्तिका की वस्तुओं की तुलना में हाथीदाँत की वस्तुयें अपेक्षाकृत कम उपलब्ध हुई हैं। इससे जान पड़ता है कि दुष्प्राप्य और मूल्यवान होने के कारण जन-सामान्य में हाथीदाँत का अधिक प्रचलन न था। सर जान मार्शल का अनुमान है कि सिन्ध प्रान्त में हाथी अत्यंत पवित्र पशु समझा जाता था। उसका शिकार वर्जित था। हाथी की स्वाभाविक मृत्यु के पश्चात् ही गज-दन्त प्राप्त किये जाते थे।

मोहेंजोदड़ो में समूचे हाथीदाँत के अतिरिक्त उसके कटे हुए टुकड़े भी प्राप्त हुये हैं। हजारों साल के बाद भूमि से बाहर आने के पश्चात् भी वे ख़राब नहीं हुए हैं। मिट्टी में मिले हुए खारे पदार्थ, उसकी चमक नष्ट नहीं कर सके हैं। ई० मैके को मोहेंजोदड़ो की खुदाई कराते समय एक बालिका के अस्थि-पिंजर के निकट एक कंघी पड़ी हुई मिली थी जो कि हाथीदाँत की थी। इस कंघी पर दोनों ओर छोटे-छोटे वृत्तों को बनाकर अलंकरण किया गया है।

सिन्धु-घाटी के अवशेषों में मछली और घोंघे की आकृति के हाथीदाँत के कुछ खिलौने भी मिले हैं।

हमें हाथीदाँत के शिल्प की जानकारी के लिये भारतीय ललित-कला के इतिहास पर एक दृष्टि डाल लेनी होगी। मौर्यकालीन-शिल्प में हाथीदाँत की कोई वस्तु उपलब्ध नहीं होती। सांची के एक शिला-लेख से ज्ञात हुआ है कि द्वितीय शताब्दी ईसा-पूर्व में विदिशा के हाथीदाँत के शिल्पियों ने सांची के प्रस्तर-शिल्प को बनाने में अपना योग-दान दिया था। विदिशा उन शुंगों की वैभवशालिनी नगरी थी, जिनके शासन-काल में सांची के भव्य-स्तूपों का निर्माण-कार्य हुआ। सांची के तोरणों और वेष्ठनियों की रचना में निकटवर्ती नगरी विदिशा के दंतकारों का शिल्प-कार्य में सहयोग देना स्वाभाविक था। सांची के शिल्प-लेख से यह भी प्रकट है कि उस युग के कुशल कलाकार प्रस्तर, काष्ठ और हाथीदाँत सभी पर समान-रूप से कार्य कर सकते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेग्रम (प्राचीन कपिशा) में, उत्खनन में ईसा की प्रथम शताब्दी के हाथीदाँत के चित्र-फलक मिले हैं। उन्होंने भारतीय-कला के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। बेग्रम इस समय अफगानिस्तान की सीमा के अन्तर्गत है किन्तु ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में वह भारत का एक नगर था। यह चित्र-फलक हाथीदाँत के पतले पतरे पर हैं। इनकी विषय-वस्तु मथुरा के कुषाण-शिल्प और सातवाहनों के अमरावती के शिल्प से अत्यधिक सादृश्य रखती है; मिथुन, शृङ्गार करती हुई राज-महिषियाँ, कहीं किसी मदनिका के पैरों से मंजीर खिसका पड़ रहा है, कहीं अधिक मद्य पी जाने के कारण कोई रमणी बेसुध पड़ी है। कहीं करताल और वीणा पर संगीत चल रहा है तो कहीं नृत्य का समारोह है। इन चित्र-फलकों में मकर और कमल की बेलों आदि से अलंकरण किया गया है। कटाव में मोटा-पतलापन देकर रेखा में वेग और गति पैदा करने की चेष्टा की गई है। बेग्रम की चित्रकला के यह नमूने अजन्ता और बाघ के गुह-मन्दिरों की चित्रावलियों की भाँति यद्यपि बौद्ध-कला की ही एक देन हैं किन्तु इनमें हँसता-खेलता, आनन्द लेता लोक-जीवन अधिक उभरा है। यह चित्र पेरिस के मुसी गुमेत् संग्रहालय में हैं।

मोहेंजोदड़ो और बेग्रम की इन कलाकृतियों के मिलने से पहले तक ब्राह्मणाबाद के हाथीदाँत के शतरंज के मुहरों को ही सबसे पुरानी शिल्पनिधि समझा जाता था। सिन्ध का यह प्राचीन नगर आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भूकम्प में नष्ट हो गया था। हाथीदाँत के यह मोहरे उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में खुदाई के समय उपलब्ध हुये थे। तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों द्वारा यह सुन्दर मोहरे लंदन के विक्टोरिया एण्ड एलवर्ट म्युज़ियम में भेज दिये गये।

दसवीं शताब्दी का हाथीदाँत के शिल्प का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना अमेरिका के सटिल म्युज़ियम में सुरक्षित है। मगध में पाल और सेन राजाओं के शासन-काल में, (नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक) ब्राह्मण, बौद्ध और जैन सभी धर्मों की प्रस्तर और धातु-प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। इस धारा को 'मध्यकालीन पूर्वीय-शिल्प-शैली' का नाम दिया जाता है। इस शैली की विष्णु, बुद्ध, बोधिसत्व और तीर्थंकरों आदि की प्रतिमाओं से कलकत्ता का भारतीय संग्रहालय तथा पटना व नालंदा आदि के संग्रहालय समृद्ध हुये हैं। सटिल म्युज़ियम की यह कला-कृति हाथी दांत का एक स्तूप है जिसमें भगवान् बुद्ध, बोधिसत्व और तारा की प्रतिमाओं को गहरा कटाव देकर बनाया गया है। स्तूप की इन मूर्तियों में आराध्यों की वरद, अभय व भूमि-स्पर्श आदि विविध मुद्रायें दिखलाई देती हैं। सभी प्रतिमायें भावमयी है और कुशल हाथों की सूक्ष्म कला-कृतियां हैं। पूरे बड़े दांत पर केवल बहुत होशियार कारीगर काम कर सकता है। ज़रा सा दोष आते हो समूचे दांत को नष्ट कर देना पड़ता है। मामूली लोग टुकड़ों का तराश कर उन्हें जोड़ दिया करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाथीदांत के(दसवीं शताब्दी के) इस स्तूप के बाद की कोई कला-कृति उपलब्ध नहीं होती। राजभवनों के द्वारों पर हाथीदांत की पच्चीकारी का काम अवश्य दिखलाई देता है। अमृतसर के स्वर्ण-मन्दिर के दर्सनी-द्वार पर हाथीदांत के लाल और हरे रंग के टुकड़ों से पच्चीकारी की गई है। यह द्वार सन् १८०२ ई० में उस समय बना था जब कि महाराजा रणजीत सिंह ने स्वर्ण-मन्दिर का पुनरुद्धार कराया था। इस समय हाथीदांत के शिल्प के जो अन्य नमूने मिलते हैं वे सत्रहवीं शताब्दी से अब तक के हैं। राजस्थान में राज भवनों में भी इसी प्रकार का काम दिखलाई देता है।

हाथीदांत की कला-कृतियों को तैयार करने का कार्य मुर्शिदाबाद, आसाम, जयपुर, दिल्ली और दक्षिण-भारत के कई नगरों में गत् दो-तीन शताब्दियों से होता रहा है।

उड़ीसा प्रान्त के पुरी और कटक नगरों में हाथीदांत के सुन्दर खिलौने बनते हैं। कलिंग अथवा उत्कल, हाथीदांत के व्यापार के लिये प्राचीन युग से प्रख्यात् है। तोसलिनगर इसकी एक बड़ी मन्डी था, जहाँ से योरोप व एशिया के अनेक देशों को हाथीदांत जाया करता था।

कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में लिखा है, "कलिंग, अंग और कामरूप के गज श्रेष्ठ होते हैं।" शरीर की विशालता तथा बल में इनकी समता सौराष्ट्र व अपरान्त आदि प्रदेशों में पाये जाने वाले हाथी नहीं कर सकते। दुर्भाग्यवश उत्कल के हाथी दांत के पुराने नमूने अब उपलब्ध नहीं है। सन् १६०२ ई० में दिल्ली की कला-प्रदर्शिनी में उड़ीसा की दो अतीव सुन्दर कृतियाँ रक्खी गई थीं। उनमें से एक वेणु-वादक कृष्ण की मूर्ति थी और दूसरा एक कछुआ था। कृष्ण त्रिभंग-मुद्रा में खड़े हुये वंशी बजा रहे थे और उनके मुख पर आनन्द छाया था। इस मूर्ति की विशेषता उसकी लुनाई और सजीवता थी। कछुये पर फूलों का कटाव था। उसकी बारीक कारीगरी आश्चर्य में डाल देती है। सर जॉन ह्वाट ने इन दोनों कला-कृतियों के चित्र 'दी आर्ट एट दिल्ली' में प्रकाशित किये हैं।

दक्षिण में ट्रावनकोर के हाथीदांत के शिल्पियों ने विष्णु, शिव, सूर्य और लक्ष्मी आदि हिन्दू देवी-देवताओं की कलात्मक मूर्तियां बनाई। इन नमूनों में एक विशेषता दिखलाई देती है, वह यह कि ट्रावनकोर के शिल्पियों ने चोल और होयसल काल के प्रस्तर-शिल्प की परम्परा को गृहण किया है। जिस भू-भाग में चिन्नकेशव और हलेबिड़ जैसे भव्य कला-मंडपों का निर्माण हुआ हो, वहाँ का शिल्पी अपनी पूर्व परम्परा से प्रेरणा लिये बिना रह भी नहीं सकता। उसकी कृतियों में शास्त्रीय तत्व निखरे हैं और प्रस्तर-शिल्प की भव्यता का समावेश हुआ है। आधुनिक वस्तुओं में यह विशेषता कम होती हुई दिखलाई देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आसाम, हांथीदांत की कलात्मक वस्तुओं के लिये बहुत दिनों तक प्रख्यात् रहा है। अहोम राजाओं के शासन-काल में यह आसाम की एक मुख्य कला समझी जाती थी। कुशल शिल्पी इन राजाओं के दरबार में वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में जीवन-पर्यन्त काम किया करते थे। उनका एक समाज बन गया था जिसे 'खनिकर समाज' कहा जाता था। यह कारीगर आसाम के राजा तथा उनके सामन्तों के लिये वस्तुयें बनाने में लगे रहते थे। उन्हें अपने उदर-पोषण के लिये अधिक माल तैयार करने की चिन्ता न रहती थी। स्तर उत्तरोत्तर ऊंचा उठता जावे और स्वामी प्रसन्न व संतुष्ट रहें, इसका उन्हें ध्यान रहता था। अहोम राजाओं के यहाँ हाथी रहते थे और हाथियों का जंगलों में शिकार भी होता था इसलिये कारीगरों को पर्याप्त मात्रा में हाथीदांत मिल जाता था और उनका काम कभी रुकता न था। राजा खनिकरों को भूमि और रहने के लिये स्थान भी देता था।

आसाम में ब्रिटिश शासन स्थापित होने के साथ ही हाथीदांत के गृह-उद्योग के दुर्दिन आ गये। राज्य का प्रश्रय छिन गया। जन-सामान्य कंघी, पेपर कटर और चाकू आदि अल्प मूल्य की छोटी-मोटी वस्तुओं की खरीद करता था। कभी-कभी कोई अफ़सर नमूना देकर बड़ी वस्तु भी तैयार करा लेता था। अंग्रेजी शासन में कारीगरों को हाथीदांत की उपलब्धि कठिन हो गई क्योंकि कानून बन जाने से आसाम में हाथी का शिकार वर्जित हो गया। जो हाथी स्वाभाविक मृत्यु से मर जाता है अथवा नागा लोग अपने इलाकों से जो हाथी मार कर लाते उन्हें कलकत्ते के व्यापारी डिब्रूगढ़ के बाज़ार में ऊंची कीमत देकर खरीद लेते। इन विरोधी परिस्थितियों में हाथीदांत के कारीगरों को इस व्यवसाय से अपनी गुज़र चलाना कठिन हो गया। उन्होंने उसे छोड़ दिया। राजाओं द्वारा मिली हुई भूमि में वे खेती करने लगे। वही उनका मुख्य पेशा बन गया। जिस प्रदेश का हाथीदांत का शिल्प सारे भारत में प्रख्यात्था वहां केवल इने-गिने कारीगर रह गये।

अब यह गृह-उद्योग पुनः जागृत हो रहा है और शासन द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त कर रहा है। आसाम की हाथीदांत की मंडी से राजस्थान व अन्य प्रान्तों में हाथीदांत और उसके टुकड़े भेजे जाते हैं। उत्कृष्ट कोटि का कार्य अफ्रीका के हाथीदांत से होता है।

मध्य-काल से जयपुर ललित-कलाओं का केन्द्र रहा है। दिल्ली के कलाकारों ने मुगल-साम्राज्य के पतन के पश्चात् जिन राज्यों में प्रश्रय लिया उनमें जयपुर मुख्य था। दिल्ली के शाहन्शाहों और आमेर के नृपतियों की मैत्री की परम्परा अत्यंत प्राचीन थी इसलिये दिल्ली व आगरे के शिल्पी जयपुर आ गये। चित्रकला, हीरों की कटाई, संगमर्मर की मूर्तियां तथा धातु की कलात्मक वस्तुओं के सृजन के साथ ही हाथीदाँत के शिल्प का भी विकास हुआ। यह परम्परा अब भी सजीव है। जयपुर के शिल्पी आसाम से हाथीदाँत मंगवाते हैं और फिर अपनी मामूली रेती, करौती या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाहन्शाह बाबर और अकबर
बेगमों के साथ,
हाथीदांत पर चित्र, १९वीं सदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छोटे बर्मे से हाथीदांत के टुकड़ों को सुन्दर कला-कृति का रूप दे देते हैं। वीणापाणि सरस्वती, पद्मासना लक्ष्मी और वेणुवादक कृष्ण आदि की आठ-दस इंच तक की प्रतिमायें यह शिल्पी गढ़ते हैं और फिर उन मूर्तियों में बड़ी बारीकी से आभूषण, रत्न-जड़ित मुकुट आदि बनाते हैं। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इन मूर्तियों को भले ही कला का अति-उत्कृष्ट नमूना न समझा जावे परन्तु इनकी सुन्दरता दर्शकों की दृष्टि को अनायास ही अपनी ओर खींच लेती है। अम्बारी सहित हाथी, हाथियों के पुल और सजे हुए ऊंट आदि पशु न केवल भारत में ही बहुत बिकते हैं वरन् विदेशों में भी इनकी काफी मांग रहने लगी है। अभिजात्य-वर्ग अपना ड्राइंग-रूम सजाने में इन वस्तुओं व खिलौनों का उपयोग करता है। हाथीदांत की अलंकार-मंजूषा, शतरंज की मुहरें, टेबिल-लैम्प और अशोक-स्तम्भ आदि की भी काफ़ी मांग रहती है।

जयपुर के हाथीदांत के शिल्पियों को इस कला में इतनी दक्षता प्राप्त है कि माला के एक खोखले दाने में सौ हाथियों तक को स्थान मिल जाता है। राजस्थान में हाथीदांत का दूसरा केन्द्र मेड़ता है जो कि हाथीदांत के चूड़े के लिये पिछली शताब्दी से प्रसिद्ध रहा है। जोधपुर और बीकानेर के इलाकों में इन चूड़ों का अब भी प्रचलन है। उन्हें लाल व हरा रंगा जाता है। विवाह के समय वधू का मामा उसे मेड़ता का बना हुआ हाथीदांत का चूड़ा भेंट करता है जिसे वधू मांगलिक-चिन्ह समझ कर वर्ष भर धारण करती है। पिछली शताब्दी में अलवर में भी हाथीदांत की कला-पूर्ण वस्तुयें बना करती थीं। सन् १९०२ में दिल्ली की कला-प्रदर्शिनी में अलवर के किसी कारीगर के हाथ का बना हुआ ऊंट और उसका सवार आया था। ऊंट की हाथीदांत की लगाम मनुष्य के बाल से अधिक मोटी न थी। भरतपुर में हाथीदांत का पतला तार तैयार किया जाता था। उससे चटाइयां बनती थीं।

आजकल दिल्ली हाथीदांत की एक प्रमुख केन्द्र बनती जा रही है। विभिन्न प्रांतों के कुशल कारीगर यहां के व्यवसायिक संस्थानों के द्वारा अपनी कृतियां देते जा रहे हैं। हाथीदांत की वस्तुओं के ख़रीदार मुख्य रूप से विदेशी पर्यटक हैं। दिल्ली के हाथीदांत के शिल्प की विशेषता, उसके पतले पतरों पर अंकित चित्र हैं। मध्यकाल की कला में इस प्रकार की हाथीदांत की चित्रकारी के नमूने उपलब्ध नहीं होते। यह कला अठारहवीं, उन्नीसवीं शताब्दी में मुग़ल चित्रकला की एक शाखा के रूप में पनपी। दिल्ली के चित्रकारों ने हाथीदांत के अंडाकार पतरे तैयार करके उन पर मुग़ल बादशाहों और बेग़मों के रंगीन चित्र तैयार किये। दिल्ली के यह चित्रकार झीने कागज़ पर चित्रों के ख़ाके तैयार करके रख लेते थे। उन्हीं की सहायता से आकृति उतार कर फिर उनमें रंग भरते थे। इस प्रकार के चित्र जयपुर में भी बनने लगे हैं।

हाथीदांत की कलात्मक वस्तुओं का एक बड़ा उत्पादन-केन्द्र बंगाल प्रान्त का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुर्शिदाबाद नगर समझा जाता था। कुछ शताब्दियों पहले मुर्शिदाबाद के कला-प्रिय नवाबों ने दिल्ली से हाथीदांत की कला के कुछ माने हुए कारीगरों को अपने यहां बुलवाया था। मुर्शिदाबाद के कारीगरों ने उन्हीं से यह शिल्प प्राप्त किया था। धीरे-धीरे वे स्वयं भी इस कला में पारंगत हो गये। उनमें तुलसी नामक ब्राह्मण शिल्पी को बहुत ख्याति मिली। तुलसी ने इस शिल्प में कुशलता प्राप्त करने के लिये उन नगरों में अनेक वर्ष बिताये जहां हाथीदांत की कारीगरी की वस्तुयें बनती थीं। तुलसी की कुल-परम्परा के व्यक्ति इस शताब्दी के प्रारम्भ तक हाथीदांत की कलापूर्ण वस्तुयें तैयार करते रहे। यह भास्कर ब्राह्मण कहलाते थे। भास्करों की आजीविका का मुख्य साधन ही हाथीदाँत की कारीगरी थी। सन् १८८३ की जयपुर की प्रदर्शनी में लालबिहारी नामक भास्कर शिल्पी पुरस्कृत भी हुए थे।

मुर्शिदाबाद का शिल्पी अन्य स्थानों के कारीगरों की भांति टुकड़ों को जोड़कर कोई वस्तु तैयार नहीं करता था, वरन् वह एक ही टुकड़े को लेकर उसमें विविध आकृतियां उभारता था। इस टैकनिक में बहुत ही कुशल हाथों की आवश्यकता रहती है क्योंकि ज़रा सा दोष आ जाने पर समूचा टुकड़ा ही बेकार हो जाने का भय रहता है पर यह काम अधिक मजबूत रहता है।

मुर्शिदाबाद के यह कारु-शिल्पी हाथीदांत के बड़े टुकड़ों को लेकर उनसे जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा, राजाओं की शोभा-यात्रा, अलंकृत बजरे व शिकार के दृश्य आदि बनाते थे। विविधता और सजीवता मुर्शिदाबाद के शिल्प की विशेषता थी। जगन्नाथ जी की रथ-यात्रा में हाथी, घोड़े और ऊंट आदि पशुओं के साथ दर्जनों मनुष्याकृतियां तैयार की जाती थीं किन्तु उनमें से प्रत्येक इतने मनोयोग के साथ बनाई जाती थी कि उसमें प्राण आ जाते थे। शोभा-यात्रा के हाथी, हौदों और अम्बारियों से सजे दिखलाये जाते थे।

मुर्शिदाबाद के शिल्पी देव-प्रतिमायें भी बनाते थे, विशेष रूप से दुर्गा। धीरे-धीरे इन मूर्तियों में एक प्रकार की रूढ़ता आ गई। दुर्गा-पूजा के समय बहु भुजा-धारिणी, महिषासुर-मर्दिनी दुर्गा की एक ही प्रकार की मूर्तियां बनने लगीं। मुर्शिदाबाद के शिल्प में दिल्ली की बेल-बूटों की बारीक पच्चीकारी और कटाव न था और न उसे दक्षिणापत्य के शिल्प की भांति पाषाण-शिल्प की गौरवमयी पूर्व-परम्परा मिली थी। मुर्शिदाबाद की कला तो मन को मुग्ध कर देने वाले खिलौनों का ही एक सुन्दर रूप था।

२. बीदर के धातु-पात्र

बीदर के धातु-पात्र अपने गहरे काले रंग और उसके ऊपर चाँदी की पच्चीकारी के लिये अत्यन्त लोक-प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इन पात्रों में लोहे का सम्मिश्रण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं होता पर यह पात्र कभी तड़कते नहीं, न धीरे-धीरे घिसते हैं; गिर जावें या ज़ोर का आघात पड़े तभी टूटते हैं। बीदर के पात्र दक्षिण भारत में, विशेषतया हैदराबाद राज्य में प्रत्येक सम्पन्न मुस्लिम परिवार की शोभा समझे जाते हैं। गृह-स्वामी आगत अतिथि का स्वागत बीदर की कलापूर्ण तश्तरी में पान के बीड़े रखकर करता है। बीदर के पात्रों की यह परम्परा विगत् चार सौ वर्षों से चल रही है। श्री महमूद मिर्ज़ा की राय में यह कला बेहमनी और बीदर राज-वंशों के शासन-काल में पनपी और उनके शासन के अन्तिम वर्षों में और भी निखर कर पूर्णत्व को प्राप्त हुई।[1]

कुछ कला-समीक्षक बीदर की कला के इतिहास को और भी पीछे ले जाते हैं और इसका श्रेय हिन्दुओं को देते हैं। 'एशियाटिक जनरल' में डा० बैन्जमिन हैने ने अपने लेख का प्रारम्भ ही इस प्रकार किया है :

"The Hindus have since time immemorial not only excelled their neighbours in the management of metals for useful and curious purposes but are even acquainted with alloys unknown to our practical chemists."[2]

अधिकांश समीक्षक इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि यह कला मूल रूप से ईरान की है। अरब और ईरान में लौह और ताम्र पात्रों में सोने और चाँदी से पच्चीकारी की जाती थी।[3] फिर भी बीदर की कला, धातुओं के रसायनिक मिश्रण और पात्रों की सुन्दरता आदि का श्रेय बीदर के उन कारीगरों को ही दिया जा सकता है जो पिछली चार शताब्दियों से अपनी वंश-परम्परा के रूप में इस कुटीर-उद्योग का संरक्षण कर रहे हैं।

यद्यपि इस शिल्प का प्रचार लखनऊ, काश्मीर तथा अन्य स्थानों में भी हुआ फिर भी यह बीदर के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसका मूल स्रोत वही है। बीदर हैदराबाद से दक्षिण दिशा में ७५ मील की दूरी पर स्थित है। प्राचीन काल में बीदर हिन्दू नृपतियों की राजधानी रहा और मुस्लिमों की विजय के पश्चात् भी इसे बेहमनी राजवंश के सुलतानों की राजधानी का गौरव प्राप्त होता रहा।

बीदर के धातु-पात्रों को तैयार करने की एक विशेष प्रक्रिया प्रचलित रही है और वही आज भी चल रही है। इस विधि के तीन अंग किये जा सकते हैं; ढलाई, पच्चीकारी और पालिश। ढलाई के लिये कलाकारों के पास विविध वस्तुओं के विभिन्न आकार के लाल मिट्टी के साँचे होते हैं। ढलाई के पश्चात् कारीगर रेती और

१. हैदराबाद आर्ट, आर्क्योलाजी एण्ड हैण्डीक्राफ्टस, पृष्ठ ३४।
२. एशियाटिक जनरल, मार्च, १९१७, इंडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ ४६।
३. दी हैण्डीक्राफ्टस आफ इंडिया, पृष्ठ ६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लकड़ी पर पालिश करने के बालू लगे हुये कागज़ के ज़रिये वस्तु को साफ़ करता है। उसके बाद वह पात्र पर विविध प्रकार की नक्काशी खोदता है और उसको चाँदी के पतले तार की पच्चीकारी से भर देता है। इस कार्य में वह लोहे के छोटे हथौड़े का प्रयोग करता है। यह कार्य बड़ी कुशलता से किया जाता है क्योंकि ज़ोर का आघात लगने से पात्र के टूट जाने का भी भय रहता है।

पात्र पर पच्चीकारी हो चुकने के पश्चात् कारीगर उसके ऊपर सज्जीखार अथवा शोरे और मिट्टी का लेप करता है। यह मिट्टी बीदर के किले में मिलती है और इसमें कुछ ऐसे तत्त्व रहते हैं जो रसायनिक क्रिया में सहायक होते हैं। अन्य जगहों की मिट्टी में यह गुण नहीं होता। कारीगर फिर पात्र को हलकी आग में रखता है और उसमें इतना परिवर्तन होता है कि पात्र का रंग एकदम गहरा काला हो जाता है। चाँदी की पच्चीकारी में तपने से और भी चमक आ जाती है। उसके बाद शिल्पी उसे अन्तिम रूप देता है। वह पात्र पर यदि आवश्यक हुआ तो कुछ गहरा काला रंग चढ़ा देता है।

पात्र की धातु के सम्बन्ध में कई लेखकों ने फार्मूला दिये हैं। वस्तुतः इसमें प्रधान धातु जस्ता रहता है। इसमें कुछ अन्य धातुओं को भी मिश्रित किया जाता है। कुछ स्थानों में रांगे को प्रमुख धातु के रूप में रक्खा जाता है। डा० बैंजमिन हैने ने लिखा है कि इसमें २४ भाग रांगा और एक भाग ताँबा रहता है।[1] डा० विल्किन्स लिखते हैं कि इसी प्रकार के, बीदर जैसे पात्र बनारस में भी बनते हैं किन्तु वहाँ जस्ता के साथ ताँबा मिलाया जाता है।[2] मुर्शिदाबाद में शीशा बिलकुल नहीं मिलाया जाता। लखनऊ में मुख्य धातु जस्ता रहती है और उसके साथ शीशा, राँगा और ताँबे का मिश्रण किया जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में इस शिल्प के मुख्य केन्द्र हैदराबाद का बीदर, लखनऊ, पूर्णिया व मुर्शिदाबाद माने जाते थे। थोड़ा-बहुत काम काश्मीर में भी होता था। सभी स्थानों में यह कला मुस्लिम कारीगरों के हाथ में थी।

बीदर के पात्रों पर विविध पशुओं और पुष्पों आदि की आकृतियाँ तैयार की जाती थीं। उनमें पोस्ता का फूल शिल्पियों को अधिक प्रिय था। अब तरहों में वैविध्य और अधिक कलात्मकता आती जा रही है। कारीगर बीदर के प्रसिद्ध दुर्ग और अजन्ता के चित्रों से प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं। पहले हुक्कों और पानदानों का अधिक प्रचलन था। सम्पन्न मुस्लिम परिवारों में कन्या का दहेज तब तक पूरा नहीं समझा जाता था, तब तक उनमें बीदर की बनी वस्तुयें, पीकदान, हुक्के, तश्तरियाँ और फूलदान आदि शामिल न हों। इसीलिये लड़की के विवाह से काफी दिनों पहले से कन्या का पिता इन वस्तुओं का संचय प्रारम्भ कर देता था।[3]

१. इंडियन आर्ट एट दिल्ली, पृष्ठ ४६। २. वही, पृष्ठ ४६।
३. दी हैण्डीक्राफ्ट्स आफ इंडिया, पृष्ठ २६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आजकल सिगरेट और सिगार बाक्स, ऐश ट्रे, मोमबत्तीदान, शृङ्गारदान और अनेक वस्तुयें बनने लगी हैं। अन्य वस्तुओं के साथ बीदर के कलापूर्ण पात्रों को विदेशी पर्यटक बड़े चाव से खरीदते हैं। यदि वे किसी विशेष डिज़ायन की कोई वस्तु बनवाना चाहते हैं तो भारतोय हस्त-कौशल बोर्ड के द्वारा आदेश देकर बनवा भी सकते हैं।

सर जॉन ह्वॉट ने अपने ग्रन्थ "इंडियन आर्ट एट देहली" में बीदर की कला के दो प्रकार बतलाये हैं—तेह निशाँ और ज़र निशा या ज़र बुलन्द। तेह निशाँ में पात्र में गहरा कटाव दिया जाता है और फिर उसे चाँदी के तार से भर दिया जाता है जबकि जर निशाँ अथवा ज़र बुलन्द में तरह या डिज़ायन उभरी हुई रक्खी जाती है। इस प्रकार का काम लखनऊ में अधिक हुआ करता था। बीदर तेह निशाँ के काम के लिये प्रसिद्ध रहा है और लगभग चार सौ वर्षों की लम्बी अवधि से शिल्पी वंश-परम्परा के रूप में इस गृह-उद्योग की रक्षा कर रहे हैं। अपनी नीति के अनुसार भारत सरकार और राज्य सरकार शिल्पियों को इस शिल्प-कार्य के लिये भी आर्थिक सहायता या अनुदान दे रही है। कारीगरों की वस्तुओं की माँग देश और विदेशों में बढ़ती जा रही है। अन्य कुटीर-उद्योगों की भाँति इस शिल्प का भविष्य भी उज्ज्वल जान पड़ता है। हैदराबाद के पुरातत्व संग्रहालय में बीदर की बनी हुई वस्तुओं का एक सुन्दर संकलन है।

३. चन्दन का काष्ठ-शिल्प

भारतीय बृक्षों में चंदन को अपनी सुगन्ध के कारण एक विशेष स्थान प्राप्त है। वैदिक युग का होता यज्ञ की आहुतियों को प्रज्वलित करने से पूर्व घृत, मधु, शर्करा, यव और समिधाओं के साथ चन्दन का चूर्ण भी अपने निकट रख लेता था। चन्दन की सुरभि से यज्ञ-धूम गन्धमय हो उठता था; दिशायें महक उठती थीं। फिर चन्दन को उपासना के उपकरणों में स्थान मिला। साधक भक्ति-भाव से चन्दन घिसकर प्रभु की प्रतिमा के तिलक लगाता। चन्दन पवित्र मानस का प्रतीक है। अविवेकी, विष-युक्त और द्वेषियों के साथ रहकर भी वह अपने गुण-धर्म को नहीं छोड़ता, "चन्दन विष व्यापै नहीं, लिपटे रहत भुजंग।"

चन्दन के अनेक उपयोग थे। भारतीय वास्तु शास्त्र के अनुपम ग्रन्थ 'मानसार' का प्रणेता लिखता है कि देव-मूर्ति की पीठिका, रक्त चन्दन, चन्दन और वकुल आदि की रहे तो अन्य काष्ठ की अपेक्षा श्रेष्ठ रहती है। प्राचीन भारत का द्विज वर्ग पवि-त्रता की दृष्टि से, अपने भवनों के निर्माण में चन्दन का यथाशक्ति उपयोग करता था।[1]

बौद्ध वाङ्मय से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में चन्दन की काष्ठ-

१. आर्चिटैक्चर आफ मानसार, पी. के. आचार्य पृष्ठ ६०.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्तियों का अत्यधिक प्रचलन रहा है। सातवीं शताब्दी में चीन के महापर्यटक श्यूआन् चुआङ् ने कौशाम्बी नगर के एक विशाल विहार में भगवान् बुद्ध की एक चन्दन-मूर्ति देखी थी, जिसके बारे में यह विश्वास प्रचलित था कि यह महाराज उदयन की बनवाई हुई है।

"विहार के भीतर बुद्ध की मूर्ति, जो चन्दन की लकड़ी पर खोदकर बनाई गई है, पत्थर के सुन्दर छत्र के नीचे स्थापित है। वह उदयन महाराज की कीर्ति की द्योतक है।"[1]

श्यूआन् चुआङ् ने अपने यात्रा-विवरण में 'गोशीर्ष चन्दन' का उल्लेख किया है। भगवान् बुद्ध का वह दण्ड जो उन्होंने नगरहार के निकटवर्त्ती स्थान हिलो (हिड्डा) में देखा, गोशीर्ष चन्दन का था। यह पीले रंग का, अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का चन्दन होता था जो कि मकासार अथवा सेलिबीज में मिलता था।[2]

महाराज उदयन की बनवाई चन्दन-मूर्ति की अनेक प्रतिकृतियाँ तैयार हुईं। बील महोदय ने चीन में एक मूर्ति देखी थी, जिसके बारे में यह मान्यता थी कि यह उदयन की चन्दन-मूर्ति से सादृश्य रखती है। श्यूआन् चुआङ् की जीवनी का लेखक व उनका शिष्य ह्वइली लिखता है कि आचार्य-श्री ने जब भारत से विदा ली, उस समय ग्रंथों व अन्य मूर्तियों के साथ वे तीन फुट, पाँच इंच ऊंची एक ऐसी बुद्ध मूर्ति भी ले गये थे, जो उदयन की मूर्ति के सदृश थी।[3]

भारत से विदेशों को जो सामग्री जाती थी, उसमें विविध प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रों, हाथीदांत तथा मूल्यवान रत्नों के अतिरिक्त चंदन भी पर्याप्त मात्रा में जाता था। यह चंदन न केवल भारत के प्रदेशों से प्राप्त होता था वरन् तिब्बत, वर्मा और दक्षिणी सागर के द्वीपों से आता था। देश के भीतर व्यापारी एक जनपद से दूसरे जनपद को सोना, चांदी, वस्त्र, मद्य और अन्य पदार्थों के साथ चन्दन के मुट्ठे भी ले जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि व्यापारियों को चंदन पर $\frac{१}{१५}$ भाग कर रूप में देना पड़ता था।[4] भारत में यों तो कई स्थानों से चन्दन आता था किन्तु सबसे उत्कृष्ट कोटि का चन्दन मध्य एशिया से प्राप्त होता था।

"एक समुद्री व्यापारी ने बौद्ध-साहित्य में प्रसिद्ध विशाखा मृगार माता के पास चन्दन की गड्डी भेजी। चन्दन के मूल और अग्र-भाग की जाँच करने की ठानी गई। उसके लिए विशाखा ने एक मामूली-सा प्रयोग बतलाया। चन्दन का कुन्दा पानी में भिगो देने से जड़ तो पानी में बैठ जाती थी और सिरा तैरने लगता था।"[5]

---

१. हुंएनत्सांग का भ्रमण वृत्तांत, पृष्ठ २५४.
२ सार्थवाह, डा० गोतीचन्द, पृष्ठ १४५.
३. सुयेनच्वांग, जगन्मोहन वर्मा, पृष्ठ २५०.
४. अर्थशास्त्र, कौटिल्य, पृष्ठ १७२.
५. सार्थवाह, डा० मोतीचन्द, पृष्ठ १४५.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काष्ठ के पारखी चन्दन की लकड़ी में भी भेद करते हैं। यह परख वृक्ष की आयु, उसके उत्पत्ति-स्थान और मूल के प्रकार पर निर्भर करती है। चन्दन की पकी हुई लकड़ी कुछ अधिक गहरा रंग ले लेती है। वही अधिक श्रेष्ठ और मूल्यवान समझी जाती है।

दुर्भाग्य की बात है कि हाथीदांत की भांति ही हमें चन्दन की कोई अधिक प्राचीन-शिल्प-कृति अथवा मूर्ति उपलब्ध नहीं होती। दक्षिण में मैसूर के सिमोगा ज़िले, कनारा, ट्रावनकोर और कोयम्बटूर तथा गुजरात में सूरत तथा अहमदाबाद में अब भी कुछ परिवार, वंश-परम्परा से इस कला की रक्षा करते चले आ रहे हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ में सर जॉन ह्वॉट ने लिखा था "चंदन के काष्ठ पर कारीगरी हर एक स्थान पर एक-दो परिवारों में ही सीमित है। केवल मैसूर के सिमोगा नामक स्थान में इस व्यवसाय में आठ परिवारों से अधिक लगे हुए हैं जिनमें लगभग ३५ व्यक्ति हैं। वंश-परम्परा से यह लोग मन्दिरों में नकाशी और चित्रकला का काम करते हैं।[1]

सूरत, अहमदाबाद और बम्बई की चन्दन-काष्ठ की वस्तुओं पर जैन-कला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कृति को बनाते समय उनके आगे अहमदाबाद की नक्काशी और कटावदार खिड़कियाँ रहती थीं। फूल-पत्ते, साफ़ और बड़े रहते थे और कटाई इतनी गहरी की जाती थी कि आर-पार दिखलाई देने लगता था। सर जॉन ह्वॉट का अनुमान है कि इन स्थानों के काष्ठ-शिल्पियों ने अपनी पूर्व-परम्परा आबनूस की लकड़ी के शिल्प से ग्रहण की है।

प्रत्येक स्थान की चन्दन की कला की कुछ निजी लाक्षणिकतायें हैं—

ट्रावनकोर की कला-कृतियों में अधिक खुदाई या पच्चीकारी नहीं होती। अलंकरण की अपेक्षा उसमें प्रकृति से सादृश्यता अधिक रक्खी जाती है किन्तु उससे सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी नहीं आती वरन् सीधी और स्पष्ट होने से मन को छूती है।

सन् १६०३ ई० की दिल्ली की कला-प्रदर्शनी में चन्दन की काष्ठ-कला के ऐसे नमूने आये जिनके ऊपर की खुदाई और कटाव ने परसी ब्राउन जैसे कला-पारखी को आश्चर्य-चकित कर दिया था। सर जॉन ह्वॉट ने उनमें से एक दृश्य, जिसमें कृष्ण की चीर-लीला दिखलाई थी, बेहद पसन्द किया। अपने ग्रन्थ में इस कला-कृति का चित्र प्रकाशित करते हुए उन्होंने यह स्वीकार किया कि वह चन्दन के काष्ठ का सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण नमूना है। इस दृश्य में किशोर कृष्ण, यमुना के किनारे एक वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए दिखलाये गये थे। यह मैसूर के नवीन राज्य भवन के एक द्वार के ऊपर का अलंकृत भाग था। इस दृश्य में ब्रज की गोपियों, पशुओं और मछलियों तक का बड़ा

१. इंडियन आर्ट एट देहली, सर जान हाट, पृष्ठ १४८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सजीव और मनोहारी चित्रण किया गया था "Nature seems to rejoice with the advent of the god on earth; every bough of the tree, every bird and animal as also the fish in the waters, sing his praise, while the contentment of the trooping homeward of the cattle is simply admirable."

मैसूर के अन्य शिल्प की भांति चन्दन की कला भी प्राचीन चालुक्य-कला से प्रभावित रही है, कनारा की चन्दन की खुदाई के नमूने से यह स्पष्ट हो जाता है। काष्ठ-शिल्पियों ने न केवल मन्दिरों में उत्कीर्ण देवगण की वेष-भूषा व अलंकरण को ज्यों का त्यों उतारा है बल्कि वे भाव-मुद्राओं में भी अनुरूपता लाने में सफल हुए हैं। अपनी विषय-वस्तु भी उन्होंने मैसूर के हलेबिड़ और चिन्न केशव आदि के मन्दिरों से ली है। (देखिये, विशाल भारत, कला अंक, १९३१, पृष्ठ ७९) उनमें कला के वही प्रतीक और अभिप्राय दिखलाई देते हैं जो कि प्रस्तर-शिल्प में दिखलाये गये हैं।

मैसूर और कनारा के चन्दन के शिल्प में बहुधा पौराणिक कथाओं का अंकन मिलता है। उसमें अलंकारमयता अधिक रहती है जो कि चालुक्य मूर्ति-शिल्प का एक मुख्य लक्षण है। पुष्प-वल्लरियां घुमावदार रहती हैं जिनसे कलात्मकता व्यक्त होती हैं। पिछली शताब्दी की चंदन की कला-कृतियों में से एक अन्य मंजूषा दिल्ली की प्रदर्शिनी में रक्खी गई थी जिस पर महाभारत के युद्ध का दृश्य अंकित था। उस सस्ते समय में उस मंजूषा का मूल्य १५३७) रु० निश्चित किया गया था। मैसूर में ब्रह्मा, कृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की मूर्तियाँ भी बनती थीं। यह परम्परा अब भी चल रही है।

चंदन के काष्ठ-शिल्प की अब काफ़ी माँग बढ़ने लगी है। कुटीर उद्योगों को शासन द्वारा जो प्रोत्साहन मिला है, उसके कारण कारीगरों की संख्या बढ़ने लगी है। उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा है और उनकी बनी हुई वस्तुओं की देश तथा विदेश में मांग बढ़नी प्रारम्भ हो गई है। सम्भ्रान्त वर्ग गृहों के कक्षों; विशेष रूप से ड्राइंग-रूम को चन्दन की कलापूर्ण वस्तुओं से सजाने लगा है। आधुनिक समय में चन्दन की कारीगरी के मुख्य केन्द्र अहमदाबाद, सूरत, कोयम्बटूर, मदुराई, कनारा, मैसूर, ट्रावनकोर, ट्रिचनापाली आदि हैं। पिछली शताब्दी में उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद, में चन्दन की वस्तुयें बनती थीं। उनमें हाथीदाँत की पच्चीकारी की जाती थी। आज-कल चन्दन की कला की छोटी चीजों; जैसे कंघे, बटनें, पंखे, शतरंज के मुहरे, विविध प्रकार के पशुओं, छड़ियों और गहनों की छोटी पिटारियों आदि की अधिक मांग रहती है। चन्दन के काम की बड़ी-बड़ी कलात्मक वस्तुयें, विशेष रूप से वे मंजूषायें जिनके बनाने तथा जिनके ऊपर पौराणिक दृश्य उत्कीर्ण करने में काष्ठ-शिल्पी महीनों लगा देता था, अब दुर्लभ हो गयी हैं। चन्दन, आबनूस और अखरोट आदि की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लकड़ियाँ यों ही मंहगी होती हैं और जन-साधारण उनसे बनी वस्तुओं का व्यवहार करने में समर्थ नहीं होता, फिर शिल्पी का श्रम उसे और महंगा बना देता है।

लकड़ी की कारीगरी में खुदाई की कीमत रहती है। चंदन की वस्तुयें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं, इसलिये शिल्पी बड़ी चतुरता के साथ उस पर सूक्ष्म कारीगरी दिखलाता है। कारीगर सुडौल, गाँठ और रेशाहीन लट्ठे में से लकड़ी निकालता है। वह रुखानी, काँटा, गुनिया और परकार से पहले आकृति का स्थूल रूप तैयार करता है और फिर उसमें बारीक व छोटी रुखानी से सूक्ष्मता लाता है। सबसे पहले आकृति अथवा दृश्य को सीधे, चिकने काष्ठ पर उतार लिया जाता है। यदि दृश्य में अधिक बारीकी हुई तो नक्शे अथवा खाके को कागज़ पर उतारा जाता है और उस कागज़ को काष्ठ पर चिपका दिया जाता है। फिर रुखानी से उसमें आकृतियाँ स्पष्ट की जाती हैं। श्री जे. रुस्तम ने लिखा है :

The different effects of light and shade, every expression and curve, and every grade of texture are clearly brought out. The intricacy of good sandle-wood carving can only be equalled by ivory carving of the same high quality.

४. पेपियरमेशी या कागज़ कुट्टी

जिन वस्तुओं को लोग व्यर्थ समझ कर फेंक देते हैं, उन्हीं की कुशल शिल्पी ऐसी सुन्दर कलात्मक वस्तु बना देते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। घटना किशोरावस्था की है किन्तु उसकी स्मृति मानस-पटल से धुल नहीं सकी है। कलकत्ते की बात है। विक्टोरिया मेमोरियल के सामने के मैदान में हम चार-पाँच मित्र बैठे हुये गन्ना चूस रहे थे। गन्ने अच्छी किस्म के थे और उनका छिलका ऊपर से नीचे तक उतरता चला जाता था। उसी समय वहाँ एक घूमता हुआ जापानी वृद्ध आ गया। वह मैदान में बैठा हमारी ओर देखता रहा। जब हम गन्ना खा चुके तो उसने निकट आकर पूछा कि क्या वह छिलके ले सकता है? हम मुस्करा दिये। भला उस व्यर्थ, फेंकी चीज़ के लेने पर हमें क्या आपत्ति हो सकती थी? पर यह देखकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसने उन्हीं छिलकों से एक बड़ी खूबसूरत टोकनी बना दी। बचपन में कागज़ की लुग्दी को कूट कर तैयार की हुई टोकनियाँ देखी हैं किन्तु काश्मीर की बनी हुई कागज़ कुट्टी या पेपियरमेशी की मनोहर वस्तुयें देखकर ऐसा लगा कि क्या लुग्दी की ऐसी सुन्दर चीजें भी बन सकती हैं?

काश्मीरी अपनी कला-कुशलता के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। ऊनी शाल, लकड़ी की खुदाई, चांदी का कलापूर्ण कार्य और पेपियरमेशी आदि उनके सौन्दर्य, रूप और रंगमयता के प्रति प्रेम की साक्षी देते हैं। वे उनके मन को ही तृप्ति नहीं देते वरन्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी जीविका का एक मुख्य साधन भी हैं। काश्मीर में यह व्यवसाय पैत्तिक रूप में चलते आ रहे हैं।

"The skill of Kashmiri craftsman is traditional and mostly hereditary. For centuries othese raftsmen have zealously guarded the secrets of their ancient and beautiful crafts and handed them down to succeeding generations."

काश्मीर का शिल्पी आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न नहीं रहा। विदेशी कला-समीक्षकों को यह देखकर आश्चर्य होता है कि कारीगर भीड़-भरे घर और अशान्त वातावरण में, दरिद्रता के बीच ऐसी श्रेष्ठ कृतियों का सृजन कैसे कर पाता है? काश्मीर की पेपियरमेशी की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कहा जाता है कि यहाँ पेपियरमेशी का काम सुलतान ज़ैनुलाब्दीन (सन् १४२३-१४७२ ई०) के शासन-काल में प्रारम्भ हुआ। जैनुलाब्दीन काश्मीर के उन महान् शासकों में माने जाते हैं जिनके समय में काश्मीरी कला ने प्रगति की। जैनडब महल, जैनगीर नहर, जैनाकोटा, जैना बाजार, ज़ैना कदल पुल और डल झील में ज़ैना लेक उस सुल्तान के नाम की अब भी याद दिलाते हैं। जैनुलाब्दीन ने समरकन्द से कालीन बुनने वाले बुलवाये। उसने जिल्द साज़, जीन साज़, कागज़ बनाने वाले, पेपियरमेशी का काम करने वाले व अन्य कारीगरों को विदेशों से बुलवाकर काश्मीर में बसाया।[1] पेपियरमेशी की कला फारस से आई। पात्रों की फूलों की विविध तरहों तथा उन पर तैयार किये जाने वाले दृश्यों से यह अब भी प्रकट है कि इस कला का मूल स्रोत ईरान का है। इस शिल्प को कुमानगीरी कहते हैं। श्रीनगर के मध्य में एक मुहल्ला है, जिसे कुमानगरपुर कहते हैं। यह पेपियरमेशी का केन्द्र है, जहाँ कई सौ कारीगर इस काम में लगे रहते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय यही है। वे अपने-आपको फ़ारस के उन शिल्पियों का वंशज बतलाते हैं जो कई सौ वर्ष पूर्व काश्मीर में आकर बस गये थे।[2]

कलाप्रिय मुग़ल शाहन्शाहों के शासन-काल में काश्मीर की अन्य दस्तकारियों की भांति ही पेपियरमेशी का शिल्प भी काफी विकसित हुआ। काश्मीर उत्कृष्ट कागज बनाने का केन्द्र तो था ही। वहीं से सिल्क के रंग का चिकना कागज़ तैयार होकर आता था, जिस पर चित्र बनाये जाते और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज लिखे जाते थे।[3] जयपुर के पुरा-अभिलेख संग्रह में ऐसे दस्तावेज़ अब भी सुरक्षित हैं।

काश्मीर की पेपियरमेशी के बहुत पुराने नमूने अब उपलब्ध नहीं होते। सन् १९०३ ई० की दिल्ली प्रदर्शनी के समय सर जान व्हाॅट ने पुराने नमूनों को खोजने की बहुत चेष्टा की किन्तु उन्हें निराशा ही मिली।

१. काश्मीर : देश व संस्कृति, शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ १६४.
२. काश्मीर, इट्स कल्चरल हैरिटेज डा० कौमुदी. पृष्ठ १८४.
३. हैण्डीक्राफ्ट्स आफ़ इंडिया, पृष्ठ ७६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"The writer was much surprised to find while in Kashmir that neither in the Palace nor in the State Museum, have there been preserved samples of the fine old forms of Kashmir papier-mache, so much appreciated by collectors of Indian Art."[1]

कुछ समय पूर्व काश्मीर के पुराने नमूनों की खोज की गई थी। जो वस्तुयें उपलब्ध हुई वे श्रीनगर के महाराज प्रतापसिंह राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि प्रोत्साहन की कमी के कारण न केवल पेपियरमेशी अपितु काश्मीर की सभी दस्तकारियों का स्तर गिरने लगा था। राजकीय संरक्षण खत्म हो गया था और बनी हुई वस्तुओं के ख़रीदार विदेशी पर्यटक रह गये थे जिन्हें सस्ती वस्तुयें चाहिए थीं। काबुल के पठान कारीगरों को उनकी वस्तुओं की अच्छी कीमत दे जाते थे, इसलिए उन्हें उत्कृष्ट वस्तुयें मिल जाती थीं। कारीगर पेपियरमेशी की अपेक्षा काठ की वस्तुयें तैयार करने लगे थे और उन पर तरहें तैयार करके बेच रहे थे क्योंकि वे विदेशी ग्राहकों को सस्ती पड़ती थीं। सर जान ह्वाट ने लिखा है कि आप पेपियरमेशी के किसी पुराने कारीगर के पास जाइये और उससे उस तरह की चीजें मांगिये जो पहले काबुल जाया करती थीं तो वह आपको जो माल दिखायेगा, वह उस सस्ते, कूड़े से, जो बाजार में पेपियरमेशी के नाम से बिक रहा है, बिलकुल ही भिन्न प्रकार का होगा।[2] "गुन ना हिरानों गुन ग्राहक हिरानों है" की उक्ति यहाँ चरितार्थ होती है। कागज़ कुट्टी तैयार करने की विधि बड़ी श्रम-साध्य है, ऐसी स्थिति में काठ का सस्ता पड़ना स्वाभाविक है।

कारीगर सबसे पहले साँचे के ऊपर तहें जमाता है। बीच-बीच में वह माड़ीदार कागज़ भी रखता जाता है ताकि इच्छित वस्तु में मोटाई आ जावे। आकृति बन जाने के बाद, जब वह थोड़ी सूखने लगती है, तब उसे घिस दिया जाता है ताकि सतह बराबर हो जावे। फिर उसे बारीक कपड़े में लपेट कर रख दिया जाता है। पेपियरमेशी की वस्तु सूखने के लिये कभी आग के निकट नहीं रक्खी जाती वरन् हवा और धूप से ही उसमें कड़ापन आता है। कारीगर पात्र या वस्तु को जली हुई काश्मीरी ईंट 'कुरकत' से घिसकर चिकना करता है फिर 'मानस बल' की खान से निकलने वाले पत्थर को, जिसे 'वसवतर' कहते हैं, पानी के साथ घिसकर उस पर पलस्तर करता है। इसके ऊपर पानी और सरेस के साथ काश्मीरी सफेदा चढ़ाया जाता है।[3] कुछ कारीगर 'प्लास्टर आफ पेरिस' भी चढ़ाने लगे हैं। फिर जिस रंग को ज़मीन करनी होती है, हरी नीली, पीली या सुनहली, वही रंग चढ़ाया जाता है और

---

१. इंडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ १६४.

२. वही.

३. काश्मीर, देश व संस्कृति पृष्ठ १६५.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब वह सूख जाता है तब उस पर जर्दा से डिज़ायन या तरह बनाई जाती है। चिर-अभ्यस्त शिल्पी तरह अपने मन से बनाता है। उस समय वह किसी नमूने को सामने रखना भी आवश्यक नहीं समझता। पेपियरमेशी की डिज़ाइनों के कई प्रकार हैं। वह उन्हीं में से कोई, पोलो खेलते अश्वारोही अथवा बेल-बूटे चित्रित करता है। फूलों में गुलाब, केसर, पोस्ता आदि के फूल बनाये जाते हैं। जिन जगहों पर कारीगर सोने या चाँदी का रंग लगाना चाहता है, उन पर गोंद और शक्कर में ज़र्दा मिलाकर लेप करता है और फिर सोने या चाँदी के वर्क चिपका देता है। कुछ सूखने पर वह पात्र पर वार्निश करता है और फिर सूखने के लिये रख देता है। यह वार्निश अलसी के तेल में राल डालकर तैयार की जाती है।

५. जयपुर की मीनाकारी

स्वर्ण, रजत, ताँबा और पीतल के अलंकारों, पात्रों व अन्य वस्तुओं को विविध प्रकार के रंगों से अधिक सुन्दर और शोभायुक्त बनाने की कला को ही मीनाकारी कहते हैं। मीनाकारी के प्रसार का श्रेय मुग़लों को है। यह सच है कि मुस्लिम आक्रमणों ने भारत की श्री का अपहरण किया; उसकी रूपमयी शिल्प प्रतिमाओं को अंग-भंग कर विकृत कर डाला और नालन्दा व विक्रमशिला जैसे विश्व-विश्रुत विद्यालयों की ज्ञान-राशि को बड़ी निर्ममता से अग्नि-शिखाओं में फैंक दिया पर यह भी सच है कि मुग़लों ने भारत को अपनी मातृभूमि समझा और इसे वास्तुकला के श्रेष्ठतम नमूनों से सजा दिया। यह देश "सम्राट् शाहजहाँ के प्रेम के एक अश्रु, ताज" पर सदियों से गर्व करता रहा है। न केवल स्थापत्य वरन् चित्रकला, साहित्य, दर्शन और संगीत आदि के उन्नयन को भी मुग़लों ने प्रोत्साहन दिया। उनका सम्बन्ध ईरान से था जो अपने युग का बड़ा समृद्ध और संस्कृत देश था। मुग़लों के शासन-काल में भारत और ईरान के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ हो गये। भारत में मीनाकारी की कला ने ईरान के रास्ते प्रवेश किया। कला का इतिहास बतलाता है कि ईरान ने यह कला फोनेसिया से ग्रहण की। भारत में मीनाकारी का केन्द्र लाहौर बना।

ईरान से आये हुए कारीगरों से यह शिल्प सिक्खों ने भी सीखा। महाराज मानसिंह प्रथम अपने साथ लाहौर के पांच कारीगर लाए। इन्हीं जोरावरसिंह, जवाहरसिंह व शोभासिंह आदि कारीगरों ने जयपुर में इस कला का श्री गणेश किया। धीरे-धीरे मीनाकारी अन्य स्थानों में भी लोक-प्रिय हो गयी। पिछली शताब्दी में सोने की मीनाकारी अलवर, दिल्ली और बनारस; चाँदी की मीनाकारी मुल्तान, भावलपुर, काश्मीर, कांगड़ा, कुलू, लाहौर, लखनऊ, हैदराबाद (सिंध) नूरपुर आदि और पीतल व तांबे की मीनाकारी, काश्मीर, तथा पंजाब के अनेक नगरों में होती थी।[1]

१. मैमोरियल्स आफ जयपुर एक्जीबीशन, पृष्ठ ३५.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जयपुर में सोना, चांदी, पीतल और ताँबा सभी पर उत्कृष्ट मीनाकारी की जाती थी। भारतीय और विदेशी सभी कला-समीक्षकों ने इस बात को स्वीकार किया है कि जयपुर की मीनाकारी सर्वोत्कृष्ट है। वह जगत्-प्रख्यात हो गई है और विश्व के कई प्रमुख संग्रहालयों में उसकी वस्तुओं को स्थान मिला है। थॉमस एच० हैण्डले महोदय ने विगत् शताब्दी में लिखा था :

"The art of enamelling on metal is successfully acknowledged that the best work on gold is produced in Jeypore, in Rajputana. The colours employed rival the tints of rainbow in purity and brilliancy, and they are laid on the gold by the Jeypore artists with such exquisite taste that there is never a want of harmony, even when jewels are also used they serve but to enhance the beauty of the enamel."[1]

थॉमस एच० हैण्डले का यह मत उन कलात्मक वस्तुओं को देखकर बना था जो सन् १८८३ ई० की जयपुर कला प्रदर्शनी में संकलित की गई थीं।

मीनाकारी के प्राचीन, मूल्यवान नमूनों में महाराज मानसिंह की वह छड़ी समझी जाती है, जिसे लेकर वे मुग़ल शाहन्शाह अकबर के दरबार में खड़े होते थे। ३३ सुनहली नलकियों की छड़ी बावन इंच लम्बी है। इस पर हल्के हरे रंग के जवाहरात जड़े हुए हैं और मीनाकारी के रंग इतने तेज़ और चमकदार हैं मानों यह छड़ी कुछ दिनों पहले की बनी हुई हो। छड़ी पर विविध प्रकार के रंगीन फूल-पत्तियाँ, दृश्य और पशुओं आदि का चित्रण है जो बहुत सूक्ष्म साथ ही स्पष्ट है। इसके रंग, वनस्पतियों और खनिज पदार्थों से तैयार किए गए हैं जो बड़े शुद्ध हैं। कला का वह स्तर जो सोलहवीं सदी की उस छड़ी में दिखलाई देता है, अब लुप्त हो चुका है। मीनाकारी दो प्रकार की होती है, एक तो वह जिसमें पात्र या अलंकार की सतह के ऊपर रंग भरकर उसे तपाया जाता है जिससे धातु रंग को पकड़ ले और वह न छूटे। दूसरी रीति यह है कि जिस वस्तु पर मीनाकारी करनी हो, उसे साफ और चमकीला करके उस पर डिज़ायन या तरह खोद दी जावे और खुदे हुए अंश में रंग भर जावे। इन्हें कच्ची और पक्की मीनाकारी कहते हैं। सोने के गहनों, चाँदी के पात्रों व अन्य मूल्यवान वस्तुओं पर पक्की मीनाकारी का काम होता है और कच्ची मीनाकारी पीतल के थालों, बर्तनों व अन्य वस्तुओं पर की जाती है। इस मीनाकारी की तश्तरियों, डिब्बियों और फूलदानों आदि की बड़ी मांग रहती है। जयपुर कच्ची मीनाकारी का सबसे बड़ा केन्द्र है और वहाँ इस गृह-शिल्प में अनेकों व्यक्ति लगे हुए हैं।

पक्की मीनाकारी में रत्नों का जड़ाव भी होता है। बहुधा यह मीनाकारी सोने के आभूषणों पर ही की जाती है। यह व्यवसाय जौहरियों के हाथों में है। वे सुनारों, खुदाई करने वालों व मीनाकारों के सहयोग से मीनाकारी की वस्तु अथवा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभूषण तैयार करते हैं। सुनार गहना तयार करता है। वह उसे रगड़कर चिकना करता है ताकि चित्रकार अथवा चितेरा उस पर डिज़ायन अथवा तरह बना सके। जौहरियों का व्यवसाय बहुधा पैत्रिक होता है और उनके पास नई-पुरानी डिजायनों का संग्रह रहता है। जयपुर में ऐसे कई जौहरी हैं जिनके संग्रह में मुग़ल काल तक की मीनाकारी के डिज़ायन सुरक्षित हैं। ग्राहक अपनी मर्ज़ी के मुताबिक डिज़ायन चुन लेता है और चितेरा उस पर तरह कोरता है। चितेरे के पास से आभूषण अथवा वस्तु खुदाई करने वाले के पास भेजी जाती है जो एक पतली नोंक के लोहे के औज़ार "टांकले" से कुछ गहराई देकर डिज़ायन खोदता है। जहाँ रत्नों का जड़ाव करना होता है, वहाँ उसी नाप की जगह छोड़ दी जाती जाती है। मीनाकार के पास रंगों का संग्रह रहता है। यह रंग देशी रहते हैं और खनिज पदार्थों से तैयार किये जाते हैं। कुछ समय से विदेशी रंग भी आने लगे हैं।

मीनाकार सबसे पहले आभूषण अथवा पात्र को आग में तपाता है और रंग भरने का कार्य प्रारम्भ करता है। कुछ रंग कड़े होते हैं और कुछ मुलायम। कड़े रंगों से उन रंगों का अभिप्राय है जो देर में पिघलते हैं। मीनाकार पात्र पर सबसे पहले कड़े रंग की पेन्सिल फेरता है। रंग धीरे-धीरे पिघल कर खुदाई किए हुए रिक्त स्थान को भर देता है। फिर वह क्रमशः कम कड़े रंगों को भरता जाता है। इस प्रकार जब मीनाकारी का काम खत्म हो जाता है तब वह पात्र या अलंकार को ऊपर से खुरच कर साफ कर देता है ताकि बाहर रंग लगा न रह जावे। लाल रंग का प्रयोग सबसे अधिक किया जाता है क्योंकि सुन्दर व मनभावने होने के साथ यह सबसे मुलायम रंग भी समझा जाता है। सफेद रंग सबसे कड़ा माना जाता है और पिघलने में अधिक समय भी लेता है, इसलिए इसका प्रयोग यथा-सम्भव कम ही किया जाता है। इस क्रम के अनुसार सफेद, नीले, हरे, काले और लाल रंग को लिया जाता है। मीनाकारी के लिए सर्वश्रेष्ठ धातु सोना समझी जाती है। इसके दो कारण हैं, पहला यह कि तपाई में यह सबसे मुलायम होती है, दूसरे इसमें सभी प्रकार के रंग भरे जा सकते हैं। मीनाकारी के बाद अलंकार या वस्तु को हल्की आग दी जाती है और फिर उसे तेजाब से साफ कर लिया जाता है।

जयपुर हीरों की कटाई, रत्नों के जड़ाव व मीनाकारी के लिए प्रख्यात् है। उदयपुर के नाथद्वारा नामक स्थान में भी मीनाकारी का काम होता है और वहाँ से प्रति वर्ष लाखों रुपयों का सामान विक्रयार्थ बाहर जाता है।

६. सींग की कारीगरी

असीरिया, बेबलोनिया और सिन्धु-घाटी की सभ्यतायें इस बात की साक्षी देती हैं कि मानव प्राक् ऐतिहासिक समय से विविध पशुओं का भिन्न-भिन्न तरीकों से उपयोग करता रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय आर्यों के प्रिय पशु वृषभ और अश्व थे। उन्होंने वृषभ के द्वारा भूमि को जोत-बो कर शस्य-श्यामला बनाया और अश्व पर बैठकर अनार्यां पर विजय प्राप्त की। पशु मानव-जीवन के एक सहारे बन गये। उनके दूध, घृत, नवनीत आदि ही नहीं अपितु उनकी खाल, मांस और अस्थियों तक का उसने उपयोग किया। भारत में सबसे प्रधान पशु गौ माता समझी गई। पवित्र और पूजनीय मानकर उसकी हत्या को पाप माना गया; सबसे भयंकर अपराध। वृषभ देवादिदेव शिव का वाहन, नन्दी बना।

भारत के उड़ीसा विहार, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, आंध्र और मैसूर आदि प्रान्तों में सींग के काम की बड़ी कला-पूर्ण वस्तुयें तैयार की जाती है। कटक, मुंगेर, हुगली, श्रीरामपुर (बंगाल), जयपुर, विशाखापट्टनम्, और त्रिवेन्द्रम् आदि इस कला के प्रधान केन्द्र हैं। वहाँ के शिल्पी, वंश-परम्परा से ऐसी वस्तुयें बना रहे हैं जिन्हें देखकर किसी भी दर्शक का मन मुग्ध हो उठता है।

सींग के मुख्य रूप से दो प्रकार के उपयोग हैं, एक ड्राइंग-रूम की शोभा की वृद्धि और दूसरा उसे गलाकर उससे भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुयें तैयार करना। हिरन और बारहसिंघों के सींगों को गलाने के काम में नहीं लाया जाता वरन् उन्हें साफ करके, मसाले से पकाकर व पालिश करके ड्राइंग रूम में शोभा के लिये टांग दिया जाता है—इधर कुछ दिनों से हिरन के सींगों के पायों की छोटी-छोटी मेज़ें भी बनने लगी हैं जिनके ऊपर मीनाकारी के काम की पीतल की गोल तश्तरी रक्खी जाती है। हिरन के सींगों की नोकों पर पीतल मढ़ दी जाती है। बारहसिंघे के सींग को बैठक में लगाकर उसकी शोभा बढ़ाई जाती है, साथ ही उस पर टोपी, छड़ी, छाता या इसी प्रकार की अन्य वस्तु टांगी जा सकती है।

सींग की कारीगरी में उसको पकाने के लिए कारीगर एक विशेष क्रिया करते हैं। वे मृत भैंस अथवा जंगली भैंसें के सींगों को पहले कुछ दिन तक नारियल के तेल से भीगे कपड़े में लपेट कर रखते हैं। फिर वे उसे आग से तपाते हैं। आग की गर्मी लगने से सींग एक-दो घन्टे में ही मोम सा मुलायम पड़ जाता है। कारीगरों के पास विविध प्रकार की वस्तुओं के छोटे-बड़े साँचे रहते हैं। यह साँचे काठ के होते हैं। मुलायम सींग को कारीगर इस साँचे में डालकर इच्छित वस्तु तैयार करते हैं। वे बड़ी या विशेष कारीगरी की चीज के अलग-अलग टुकड़े तैयार कर लेते हैं और फिर उन्हें जोड़कर समूची वस्तु तैयार कर देते हैं। सींग के झूले, वृक्ष और पक्षी, शिकारी और शिकार के दृश्य इसी प्रकार तैयार किये जाते हैं। पक्षियों के परों को अलग साँचे में ढाल कर बाद में कटावों में फंसाया जाता है। कारीगर कुछ मामूली से औज़ार जैसे रेती, छोटी आरियाँ और बर्मे आदि का उपयोग करते हैं। जिस समय सींग अधिक कड़ापन नहीं लेता अथवा यों कहिए कि पूरी तरह से नहीं सूखता उसी समय शिल्पी उसमें कटाव देता है। सींग के काम में केवल हल्की कटाई या खुदाई होती है, पच्चीकारी का काम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं होता। जब वस्तु तैयार हो जाती है तब कारीगर उसे छोटी रेती से चिकना करता है। सारसों की पतली चोंचें तैयार करता है। सबसे अन्त में वह उस पर पॉलिश चढ़ाकर 'फ़िनिश' देता है। तैयार वस्तु चमकने लगती है और अधिक सुन्दर लगती है।

जैसा कि हम कह चुके हैं, सींग के कारीगर, जिन्हें 'कंघीसाज़' कहा जाता है भैंस या जंगली भैंसे के सींग को इस काम के लिए चुनते हैं। भैंस की अपेक्षा जंगली भैंसे या सांड को जिसे अंग्रेज़ी में 'बिसोन' कहा जाता है सींग के लिए अधिक पसन्द किया जाता है। उसकी बनी हुई चीज़ों में अधिक सफाई आती है। सावन्तबाड़ी और रत्नागिरि में सारा काम 'बिसोन' के सींग का होता है। इन स्थानों पर गत् सदी में बड़ी उत्कृष्ट कोटि की वस्तुएं तैयार होती थीं। सन् १६०३ ई० की दिल्ली की कारु-शिल्प की प्रदर्शनी में एक रोशनदान आया था। उसकी कलामयता पर विदेशी समीक्षक आश्चर्य-चकित तथा मुग्ध हुए थे। निर्णायक समिति ने उसके लिए शिल्पी विट्ठल गंगाराम को प्रथम पुरस्कार प्रदान किया था और उस सस्ते समय में वह ६५० रु० का बिका था। इससे सींग की वस्तुओं के सम्बन्ध में एक कल्पना की जा सकती है।

जन-रुचि बदल रही है और उसी के अनुसार कारीगरों को भी वस्तुएं बनानी पड़ती हैं। इन दिनों सिगरेट केश, ऐश ट्रे, फूलदान, शृंगार की मंजूषाएं आदि विविध प्रकार की वस्तुएं बन रही हैं। उनकी देश तथा विदेशों में उत्तरोत्तर खपत बढ़ती जा रही है। राज्य-सरकारों की सामग्री क्रम-शाखाएं और अखिल भारतीय हैण्डीक्राफट बोर्ड इस लघु अथवा कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन दे रहे हैं।

कटक सींग के कलात्मक काम के लिए बहुत प्रसिद्ध है। वहाँ कंघे, होल्डर, मछलियाँ, सारस, वृक्ष, विविध प्रकार के पक्षी तथा फन उठाकर बैठे हुए सर्प आदि अनेक वस्तुएं तैयार की जाती हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह शिल्पी कंघों की ही लगभग तीस अलग अलग प्रकार की डिज़ाइनें निकाल चुके हैं। बंगाल के कंघीसाज पहले हुक्कों की नलियाँ, इत्र की शीशी, प्याले, सुंघनी बनाते थे। छुरी, चाकू और छातों के मुट्ठे भी सींग के बनते थे किन्तु अब वे समय के अनुसार फैशनेबिल चीज़ें बनाने लगे हैं। सींग की बटनें सभी स्थानों पर बनती हैं और व्यावसायिक दृष्टि से बहुत से कारीगर केवल बटनें ही बनाते हैं। उनमें श्रम कम पड़ता है और मांग निश्चित रहती है।

दक्षिण भारत के सींग के कारीगर शिव के वाहन नन्दी की आकृति बनाते हैं और उसके ऊपर सर्प बिठलाते हैं। पिछली शताब्दी में भी इस प्रकार के नन्दी बना करते थे। नन्दी के ऊपर एक गोल थाली या तश्तरी रहती है जिसका व्यास सात इंच का रहता है। यह तश्तरी भी सींग की रहती है और इतनी पतली रहती है कि आरपार झलकती है। कारीगर उसके किनारे मुड़े रखता है और उस तश्तरी पर बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दर कटाव का काम किया करता है। तश्तरी पर एक सर्प (फन उठाए बैठा) दिखलाया जाता है। सर्प की आँखें, मुख और मुख के दांत आदि बड़ी सफाई से बनाये जाते हैं।

गाय अथवा बैल का सींग पहले इस कार्य में बरता नहीं जाता था। वह पवित्र माना जाता था किन्तु अब उसकी भी बटनें बनने लगी हैं। गैंडे का सींग बहुत मूल्यवान समझा जाता है। नेपाल के निवासी गैंडे के सींग के प्याले को बहुत पवित्र समझते हैं और उसे अपने उपासना के उपकरणों में स्थान देते हैं।

कछुये की पीठ से भी बटन, कंघे, कागज काटने वाला चाकू, और इसी प्रकार की छोटी-मोटी वस्तुएं बनाई जाती हैं। यह कुटीर-उद्योग अभी व्यवसाय के रूप में पनपा नहीं है। विजगापट्टम और गुजरात के कुछ स्थानों में कछुये की खाल छोटी पिटारियों के ऊपर जड़ी जाती है। यह कार्य काफ़ी मुश्किल समझा जाता है।

प्राचीन भारत में कछुये की खपड़ियाँ जावा, बोर्नियो आदि द्वीपों से आती थीं। जावा से गन्ना, हाथीदांत, मोती, कपूर, सौंफ, लौंग व इलायची के साथ[1] और बोर्नियो से कपूर, लाका की लकड़ी के साथ कछुये की खपड़ियाँ आया करती थी[2]। यहाँ उनको किस काम में लाया जाता था, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता फिर भी अनुमान है कि उनको शिल्प के उपयोग में ही लिया जाता होगा।

उन दिनों शंखों का भी व्यापार होता था। गुप्तकाल में भारत और ईरान के व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ रहे थे। ईरान भारत को सोना, चांदी, मोती और मूंगे भेजता था और भारत से ईरान को शंख, चन्दन, अगर और विविध प्रकार के रत्न जाया करते थे।[3] प्राचीन भारत में प्रत्येक योद्धा रणघोष के लिए अपने पास शंख रखता था, जैसा कि भगवत् गीता से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त उपासना के सयय भी शंख का उपयोग किया जाता था। शंख हिन्दुओं और बौद्ध दोनों में पवित्र वस्तु माना जाता था। शिल्पियों में अन्य कारीगरों के साथ शंखकार का भी उल्लेख मिलता है। वह शंख की विविध प्रकार की वस्तुयें बनाया करता था। विवाहित स्त्रियाँ छोटे शंखों से तैयार किये हुए कंकण पहनती थीं। वे उन्हें विवाह के अवसर पर मांगलिक चिन्ह समझकर दी जाती थीं।[4] प्रथम शताब्दी के लगभग दक्षिण भारत में रोमवासियों की बस्तियाँ बस गई थीं। उनमें कुछ कारीगर भी थे। वे अन्य शिल्प के अतिरिक्त शंख पर सुन्दर व कलापूर्ण आकृतियां खोदने का काम भी करते थे। वे उसमें इतना गहरा कटाव देते थे कि आकृति उभर आती थी और शरीर के अवयव

---

१. सार्थवाह, डा० मोतीचन्द, पृष्ठ २११

२. वही पृष्ठ २१०.

३. एही पृष्ठ १७३.

४. इंडियन आर्ट एट देहली, पृष्ठ १७८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट हो उठते थे । वृहत् कल्प सूत्र भाष्य से पता चलता है कि देश में व्यापारी लोग कस्तूरी, अगर और इंगुर आदि के साथ शंख भी लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया करते थे। शंखकार उनकी विविध प्रकार की मालायें, कंकरण आदि बनाते थे और शंखों को कटाव करके अधिक सुन्दर बना देते थे। "मणिकार महत्तर को जवाहिरातों का बड़ा ज्ञान होता था और वह मोती, वैडूर्य, शंख, मूंगा, स्फटिक, लोहितांक, यशव आदि का पारखी होता था। शंख वलयकार महत्तर, शंख और हाथीदांत की कारीगरी में उस्ताद होता था। शंख और हाथीदांत से वह खूटियाँ, अंजन शलाका, पेटियाँ, भृङ्गार, कड़े, चूड़ियाँ और दूसरे गहने बनाता।[1] महावस्तु में शंख का काम करने वाले शिल्पी को 'शांखिक' कहा गया हैं।[2]

आजकल शंख की बड़ी कलापूर्ण और सुन्दर वस्तुयें बनने लगी हैं। ऐश ट्रे, प्यालियाँ, बिजली के लैम्प आदि देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

पशुओं की अस्थियों का भारत में अधिक उपयोग नहीं होता। पच्चीकारी के काम में इसे हाथीदांत के स्थान पर व्यवहार में लाया जाता है। पेशावर में ऊंट की हड्डी की सुरमादानियां बना करती थीं। भारत में अस्थि को पवित्र नहीं मानते और उसका स्पर्श भी बचाया जाता है। सम्भवतः इसी कारण से अस्थि को कुटीर-उद्योगों में स्थान नहीं मिला है। तिब्बत में मनुष्य की अस्थियों से बड़े कलापूर्ण आभूषण बना करते हैं जिन पर भगवान् बुद्ध और तारा देवो आदि की मूर्तियां बनती हैं। भारत में मानव-अस्थि तो अग्नि-संस्कार में समाप्त हो जाती है और पशुओं की अस्थि का उपयोग खाद वनाने में ही होता है।

७. नारियल की कलात्मक वस्तुयें

जिन वस्तुओं की उपयोगिता पर बहुधा हमारा ध्यान नहीं जा पाता, वे दैनिक जीवन में हमारे बड़े काम की होती हैं। नारियल भी ऐसी ही वस्तु है। उसकी उपयोगिता का सही अन्दाज़ दक्षिण भारत में पहुंच कर हो पाता है। जल, भोजन, तेल सभी का काम नारियल से निकल जाता है। दक्षिण में नारियल का पेड़ बहुतायत से होता है। वहाँ के निवासी नारियल की पकी हुई गिरी से तेल बनाते हैं। वे उसी तेल में अपना भोजन भी बनाते हैं। सामान्य गृहस्थ घी के स्थान पर नारियल का ही अधिक उपयोग करता है। साबुन बनाने में तो सभी जगह नारियल के तेल को काम में लाया जाता है।

प्रकृति ने नारियल के फल की रक्षा के लिये उसके चारों ओर जटा और कड़ी खोपड़ो रक्खी है अन्यथा ऊँचाई से गिर कर फल टूट कर नष्ट हो जाता और हम उस स्वादिष्ट फल से वंचित ही रह जाते।

---

१. सार्थवाह, पृष्ठ १५२.

२. महावस्तु, भाग ३, पृष्ठ ११३, सार्थवाह, पृष्ठ १५३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारियल की जटा से विविध वस्तुयें बनती हैं। नारियल से मजबूत किसी दूसरी चीज़ की रस्सी नहीं बनती। वह बहुत टिकाऊ होती है। इसी जटा से पाँव पोश और कालीन भी बनते हैं। फिर उन पर रंग-बिरंगी छपाई कर दी जाती है। कुछ वर्षों से नारियल की जटा के फर्श अथवा मैटिंग की बहुत मांग बढ़ गई है। भारत की कई प्रमुख्य व्यापारी संस्थाओं ने नारियल की रंगीन चटाई बनाने का काम शुरू कर दिया है।

नारियल की जटा का झाड़ू बनाने और गद्दियों के भीतर भरने में भी उपयोग होता है किन्तु जटा और गरी के अतिरिक्त नारियल को खोपड़ी का भी कोई उपयोग होता है, यह बात कम ही लोगों को ज्ञात होगी।

दक्षिण में नारियल के पत्ते झोंपड़ियों के छप्पर बनाने के काम में आते हैं। तने की बल्लियाँ बना ली जाती हैं। जटा और गिरी तो मुख्य काम की चीजें हैं ही। नारियल के वृक्ष का कोई भाग ऐसा नहीं है जो किसी न किसी उपयोग में न आता हो। इसकी ऊपर की कड़ी खोपड़ी को बहुधा किसी खास इस्तैमाल में नहीं लाया जाता था किन्तु अब उसकी बड़ी सुन्दर चीजें बनाई जाती हैं। नारियल के खोपड़ी की चाय की प्यालियां, ऐश-ट्रे, कलमदान और लैम्पों के शेड आदि बड़े खूबसूरत बनते हैं, यह बात उन्हें देखे बिना समझ में नहीं आ सकती। तमिल नाद में नारियल की खोपड़ी से कलात्मक वस्तुयें बनाने का उद्योग धीरे-धीरे बहुत लोकप्रिय होता जा रहा है।

शिल्पी पहले नारियल के फल को पूरी तरह से साफ कर लेता है और उसकी जटा को अलग कर देता है फिर उसके फल को एक छोटी आरी से दो बराबर हिस्सों में काट देता है और उस पके हुये फल की गिरी को बाहर निकाल लेता है। कारीगर फल को काटने से पहले खराद पर भी चढ़ाता है जिससे उसकी ऊपरी सतह बिल्कुल चिकनी हो जाती है। कारीगर इस बात का विशेष ध्यान रखता है कि खोपड़ी की सतह पर कोई दरार न पड़ने पावे।

गिरी को निकाल कर शिल्पी नारियल की खोपड़ी के ऊपर रांगा चढ़ा देता है।

"नारियल की खोपड़ी की बाहरी सतह पर रांगा चढ़ाकर उसे सूखने के लिये धूप में रख दिया जाता है। रांगा चढ़ी हुई सतह पर कलाकार काले सुरमे की एक तेज़ पेन्सिल से डिजायन बनाता है। अगर डिज़ायन बहुत ज्यादा कलापूर्ण हो या उसमें बारीकियाँ अधिक हों तो सफेद कागज पर डिजायन बनाकर उसे बाहरी सतह से चिपका दिया जाता है। फिर कलाकार अपनी छैनी से उसमें खुदाई शुरू करता है और इस प्रकार बड़ी होशियारी से काम करता हुआ वह उस डिज़ायन को नारियल की खोपड़ी की बाहरी सतह पर उतार देता है।"[१]

---

१. योजना (पाक्षिक) ६ दिसम्बर १९५९.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी-कभी नारियल और लकड़ी दोनों का काम साथ रहता है। पायों के स्थान पर तीन अलंकृत हाथी बना कर उनके ऊपर नारियल का समूचा गोला रक्खा रहता है। इस प्रकार के गोलों को देखकर दर्शक आश्चर्य में डूब जाता है क्योंकि फल कहीं से कटा हुआ नहीं जान पड़ता। खोपड़ी में कहीं कोई दरार भी नहीं दिखलाई देती पर उसके भीतर गिरी नहीं रहती और फल, फूल से भी अधिक हल्का लगता है। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय की नारियल की कलात्मक वस्तुओं में दो साबित नारियल एक दूसरे से बंधे हुए हैं। उनके भीतर गिरी नहीं है और वे बहुत हल्के हैं। उनकी गिरी कैसे निकाली गई यह पता नहीं चलता। इस संग्रह में ही एक आम के आकार की डिब्बी है, जिसमें भीतर जैन चित्रकला का एक सुन्दर नमूना है। इस डिब्बी को देखकर हमें इस निर्णय पर पहुंचना पड़ता है कि यह शिल्प नया नहीं है, वरन् इसकी कुछ पूर्व-परम्परा भी है, चाहे वह अधिक पुरानी न हो।

इस कुटीर उद्योग के सम्बन्ध में सन् १८८८ ई० में श्री टी० एन० मुकर्जी ने लिखा था :

"At Trivandrum in Travancore very spirited and well excuted designs are carved on diminutive cocoa-nut shells. These may consist of entire cocoa-nut shells with lids, cocoa-nut shells inlaid with silver, tea-pots with trays, sugar-basins, cups and saucers, figures of deities and human beings, and other articles made of those shells, carved and often inlaid."

नारियल के शिल्प के केन्द्र कनारा और सामन्तवाड़ी भी माने जाते हैं किन्तु वहाँ इने-गिने शिल्पी ही काम करते हैं।

सन् १९०३ ई० की दिल्ली कला-प्रदर्शनी में कन्ननोर, ट्रावनकोर और मैसूर से नारियल की कला के कुछ नमूने आये थे जिनमें से बहुत से पात्रों पर चाँदी का पत्र भी चढ़ा हुआ था। कन्ननोर सेन्ट्रल जेल में बने हुए एक दुहरे नारियल का मूल्य उसके काम की बारीकी के कारण सौ रुपये निश्चित किया गया था।

नारियल भारत का एक मांगलिक फल है, जो प्रत्येक शुभ अवसर लग्न, यज्ञोपवीत, कथा-वार्त्ता में रक्खा जाता है किन्तु उससे तैयार की जाने वाली वस्तुओं का कुटीर-उद्योग में एक निश्चित स्थान बनता जा रहा है और उपयोगिता की दृष्टि से भी उसका महत्व स्वीकार किया जा रहा है।

८. मृत्तिका-शिल्प

मिट्टी के पात्र दैनिक उपयोग की वस्तु हैं। सभी वर्गों के लोग उनको व्यवहार में लाते हैं—शीतल जल से परिपूर्ण कुम्भ सभी की प्यास बुझाता है इसीलिये कुम्हार अथवा कुम्भकार समाज का एक आवश्यक अंग समझा गया था। व्याह-शादी, जन्म-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मरण, मांगलिक,-अमांगलिक सभी अवसरों पर उसके घड़े, मटके, सकोरे व प्याले-प्यालियों की मांग रहती थी इसलिये शायद ही कोई ऐसा गांव था जिसमें कुम्हारों का एक दो परिवार न बसा हो। उसका चक्का विधाता के चक्र की भांति सदा चलता ही रहता था; नित-नई सृष्टि करता ही रहता था। मृत्तिका, पात्र में अपनी परिणति पाती थी; मंगल-घट का सृजन होता था—राष्ट्र-कवि गुप्त जी ने लिखा है—

तू ही मेरा चांदी-सोना;
आघातों से खिन्न न होना;
रूप बनेगा सुघर-सलोना;
पहले पिण्ड बनाऊं।
मेरी मिट्टी मैं बलि जाऊँ।।

कुम्भ भारत का एक सांस्कृतिक प्रतीक बन गया। वह जीवन के पात्र का प्रतीक बना जिसमें प्राण-रस परिपूरित है। अमरावती के शिल्प में मंगल घट का ऐसा मनोहारी अंकन हुआ है कि उसकी शोभा देखते ही बनती है।

मानव-मन में मृत्तिका-पात्रों की कल्पना कब उगी, यह निश्चित-रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु मोहें जोदड़ो, हड़प्पा और रोपड़ के कलापूर्ण पात्रों को देखने से इस गृह-शिल्प का इतिहास बहुत पुराना जान पड़ता है। मोटे-रूप से मृत्तिका-शिल्प के दो प्रकार माने जाते हैं—मृण्मूर्तियाँ और मृत्तिका-पात्र। अंग्रेजी में इन्हें 'टैरा कोटा' और 'पॉटरी' कहा जाता है। मृण्मूर्तियाँ से पुरुष-नारियों की विविध वेश-भूषा, अलंकार आदि के अध्ययन में पाषाण-शिल्प या कांस्य-मूर्तियों की भाँति ही सहायता मिलती है अतः वे पुरातत्व की निधि समझी जाती हैं। मौर्य, कुषाण और गुप्त आदि कालों की मृण्मूर्तियाँ हमें मथुरा, पटना, कौशाम्बी, राजगृह, भीटा, अहिच्छत्रा व राज-घाट आदि में उपलब्ध हुई हैं। वे राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली तथा देश के अन्य प्रमुख संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। भारत-कला-भवन काशी के सौजन्य से सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय को भी राजघाट की मृण्मूर्तियों के कुछ सुन्दर नमूने मिल गये हैं। मृण्मूर्तियों के सम्बन्ध में हम पृथक् अध्याय में चर्चा कर रहे हैं।

भारत में मृत्तिका-पात्रों का प्रारम्भ अत्यन्त प्राचीन युग में ही हो चुका था। कुम्भ के सम्बन्ध में कई पुराण-कथायें भी प्रचलित हैं। जिस समय देव और दानव अमृत-प्राप्ति के लिये सागर का मंथन कर रहे थे, उस समय अमृत के लिये एक पात्र की आवश्यकता का अनुभव किया गया। विश्वकर्मा ने जो कि देवगण का स्थपति अथवा वास्तु-शास्त्री था, वहां एकत्रित हुए देवगण की कला अथवा उस वस्तु का अंश ले लिया जिससे उनके शरीर निर्मित थे और उसे मिलाकर 'कलश' को बनाया। एक अन्य पुराण-कथा के अनुसार सती के विवाह के समय शिव को एक मृत्तिका-पात्र की आवश्यकता हुई क्योंकि कुम्भ के बिना कोई मांगलिक कार्य पूर्ण ही नहीं हो सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। शिव ने अपने हार में से एक दाना निकाला और उससे एक पुरुष का सृजन किया। इसी प्रकार दूसरे दाने से नारी का सृजन करके उन्होंने उन दोनों को कुम्भ बनाने का आदेश दिया। बंगाल में प्रचलित मान्यता के अनुसार यह दम्पत्ति ही कुम्भकारों अथवा कुम्हारों के पूर्व-पुरुष हैं और इसीलिये बंगाल के कुम्हार अपने को 'रुद्रपाल' कहते हैं। वे इसी नाम के पूर्व-पुरुष की पूजा भी करते हैं। वे उसकी प्रतिमा वर्ष के प्रारम्भ में (चाक के मध्यवर्त्ती भाग में) बनाते हैं और फिर उसको सागर अथवा नदी में विसर्जित कर आते हैं।[1]

इतिहास से ज्ञात होता है कि मृत्तिका के पात्रों की परम्परा सिन्धु-सभ्यता काल में प्रारम्भ हो गई थी वरन् यह कहिये कि उस युग के लोग मृत्तिका-पात्रों के बनाने में बड़े कुशल थे। मोहें जोदड़ो नगर संस्कृति और सभ्यता की पराकाष्ठा को पहुँच गया था, जिसमें अनेक वर्गों और जातियों के लोग रहा करते थे। वहां के कारीगर अथवा कलाकार मुद्राओं, ताम्र-पट्टियों, मिट्टी के खिलौनों, धातु-प्रतिमाओं आदि सभी कारु-शिल्पों में बड़े निपुण थे। मोहें जोदड़ो की खुदाई में आधे इंच तक ऊँचे पात्र उपलब्ध हुए हैं जिससे वहां के मृत्तिका-शिल्पियों के असाधारण कौशल का पता चलता है। डा० मैके का मत है कि नगर के एक भाग में कुम्भकार जाति के लोग रहा करते थे। मोहें जोहड़ो के एक खुदे हुए भाग को उन्होंने कुम्हारों का मुहल्ला निश्चित किया है। मोहें जोदड़ो, हड़प्पा, आम्री तथा सिन्धु घाटी के अनेक स्थानों से मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मृत्तिका-पात्र भी उपलब्ध हुए हैं। सर जॉर्ज व्हॉट ने चमकीले मृत्तिका-पात्रों का प्रारम्भ मुगल-काल से माना है और इस कला का केन्द्र दिल्ली बतलाया है किन्तु अब सिन्धु-सभ्यता के नगरों की खुदाई के पश्चात् उनकी राय निर्मूल सिद्ध हो जाती है। मोहें जोदड़ो में चमकीले, पॉलिशदार बर्तन भी मिले हैं।

सिन्धु घाटी के नगरों से प्राप्त होने वाले मृत्तिका-पात्र मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखलाई देते हैं एक सादे और दूसरे चमकीले—

चमकाये हुए बर्तनों के टुकड़े भी खुदाई में प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के बर्तन बनाने में विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। सभ्यता के इस युग में न तो इलम और न सुमेर के ही निवासियों को बर्तनों पर चमक लाने का ऐसा ढंग ज्ञात था।[2] सिन्धु-प्रान्त में खुदाई में ऐसे पात्र मिले हैं जिन पर हल्की लाल या पीले रंग की पॉलिस दिखलाई देती है। उन पर काले या चाकलेट रंग से रेखागणित के वृत्तों और कोणों से विविध प्रकार की 'तरहों' में कारीगरी की गई है। कुछ बर्तन खूब पकाई हुई मिट्टी के बने हैं और उन पर ओप या चमक भी है। इन पर लाल रंग की पॉलिस है जिसके ऊपर काले रंग से अलंकरण किया गया है। इनके ऊपर न केवल बीजों, मनकों,

१. हैण्डीक्राफ्ट्स एण्ड इंडस्ट्रियल आर्ट्‌स आफ इंडिया, पृष्ठ ८०.
२. मोहें जोदड़ो तथा सिन्धु सभ्यता, सतीशचन्द्र काला, पृष्ठ १८१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्तियों और ज्यामिति के वृक्षों तथा कोणों का अलंकरण किया गया है, वरन् विविध प्रकार के दृश्य भी अंकित किये गये हैं। इस प्रकार के पात्र हड़प्पा से अधिक मिले हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक पात्र के खंड पर मनुष्याकृति चित्रित दिखलाई देती है। मोहें जोदड़ो में इस प्रकार की मानवाकृति नहीं मिलती। हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी के पात्रों के टुकड़ों पर पीतल, सिरीष और ताड़ की पत्तियों का चित्रण दिखलाई देता है। किसी-किसी पात्र पर उस युग की प्राचीन लिपि में कुछ लिखा भी हुआ है, जिसे अब तक पढ़ा नहीं जा सका है। मोहें जोदड़ो के निवासी चमकीले, अच्छी तरह पकाये हुए पात्रों को ही अच्छा समझते थे। वर्तन को पहले गेरू से रंग लिया जाता था और फिर उस पर कूंची से चित्रकारी या अलंकरण किया जाता था। सिन्धु घाटी के नगरों में ऐसे पात्र भी मिले हैं, जिनमें गहरी, कटावदार नक्काशी है किन्तु इस प्रकार के पात्र कम ही मिले हैं। आम्री, हड़प्पा, मोहें जोदड़ो और चन्हूदड़ो आदि के मृत्तिका-पात्र यह सिद्ध करते हैं कि प्राक्-ऐतिहासिक काल में भी मृत्तिका-पात्रों की कला उत्कर्ष को पहुंच चुकी थी।

"It is fully recognized now that there is nothing primitive about the arts and crafts of the Harapans. Their earth ware exhibits varied shapes, with sophisticated and developed sensibility and aesthetic appeal entailing an advanced technique. They are famliar with polychrome and their paintings on pottary include firm geometric and naturalistic designs includings figures of animals and birds."[1]

अलंकृत मृत्तिका-पात्रों की यही परम्परा रोपड़ की (खुदाई में उपलब्ध) वस्तुओं में भी दिखलाई देती है। दक्षिणी बलूचिस्तान में नाल से जो प्राक्-ऐतिहासिक काल के मृत्तिका के पात्र मिले हैं उनका रंग पीला है। उन पर नीले, लाल, हरे या पीले रंग चित्रकारी की गई है।

प्राचीन गुहा-मन्दिरों में अजन्ता, बाग और सितन्नवासल आदि में भित्तियों पर बड़े मनोहारी चित्र अङ्कित किये गये हैं। उस युग की संस्कृति तथा कला उनमें बिम्बित होती है। उन मृत्तिका-पात्रों में विविध प्रकार की सुराहियाँ, कलश, तश्तरियाँ और धूप-पात्र आदि दिखलाई देते हैं। पूर्ण कलश का अमरावती, साँची और भरहुत के शिल्प आदि में भी बड़ा मनोरम चित्रण हुआ है। पूर्ण-कलश को मेखला और फूल-मालाओं से सजाया गया है। साँची के उत्तरी तोरण में बायीं ओर के खम्भे में पूर्ण-घट में से पद्मलता निकलती दिखलाई गई है। भरहुत के प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के शिल्प में पूर्ण कलश और कमलों के साथ गज-लक्ष्मी भी समन्वित हुई है। दुर्भाग्य से आज हमें मृत्तिका-शिल्प के मध्यकाल के नमूने उपलब्ध नहीं हैं। पुराने नमूनों में लगभग

१. ललित कला, नं० १-२, डा० वाई. डी. वर्मा, का लेख पृष्ठ १२३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी खुदाइयों में मिले हैं। मृत्तिका-शिल्प के नमूनों के न मिलने का प्रधान कारण यह है कि उन्हें घर कीं स्थायी वस्तु नहीं समझा जाता। बिना चमक के पात्र, जैसे कुल्हण, प्याले, रकाबियां आदि व्यवहार करने के तुरन्त बाद ही जूठे समझ कर फेंक दिये जाते हैं। मृत्तिका-शिल्प एक कुटीर-उद्योग के रूप में पनपा। कुम्हार के घड़े विशेष पर्वों पर बदल दिये जाते थे। शायद इसका कारण यह भी है कि पुराने पड़ जाने पर उनमें जल इतना शीतल नहीं हो पाता। मिट्टी की बनी हुई वस्तुओं के नष्ट होते रहने से और नई चीजों की मांग रहने से कुम्हार की आजीविका चलती रहती थी। विगत शताब्दी में मृत्तिका-शिल्प के कई बड़े केन्द्र थे। उन स्थानों की बनी हुई वस्तुयें दूर-दूर तक जाती थीं। सर जार्ज ह्वाट ने उन स्थानों के नाम, जिनमें बहुत अच्छी प्रकार की वस्तुयें बनती थीं, इस प्रकार गिनाये हैं—

हज़ारा, बन्नू, जालन्धर, गुजराँवाला, भावलपुर, जयपुर, जोधपुर, अलवर, सिवनी (मध्य प्रदेश), अहमदाबाद, पाटन (गुजरात), कोल्हापुर, भडोंच, रत्नागिरि, कनारा, अलीगढ़, आजमगढ़, चुनार, जबलपुर, ढाका, खुलना, मदुरा, मालाबार, ट्रावन-कोर, कुर्ग आदि।

इनमें से कुछ स्थानों में अब भी बहुत अच्छे बर्तन बनते हैं और वे दूर-दूर तक भेजे जाते हैं। मिट्टी के बर्तनों का पहले भी दूर-दूर तक व्यापार होता था। वाराणसी का एक कुम्हार अपने खच्चरों पर मिट्टी के घड़े लाद कर सुदूरवर्त्ती नगर तक्षशिला तक बेचने गया था, यह एक जातक-कथा से ज्ञात होता है। निश्चित रूप से वे पात्र सुलंकृत और बड़ी उत्कृष्ट कोटि के होंगे।

सिन्धु प्रान्त का हला नामक स्थान मृत्तिका-शिल्प का एक बड़ा केन्द्र था। वहाँ के बने हुये बर्तन सन् १८०१ ई० की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी में गये थे और वहाँ उनकी बड़ी सराहना भी हुई थी। गुजराँ वाला, अलवर, भावलपुर आदि नगरों में इतने पतले पात्र बनते थे कि देखकर आश्चर्य होता था। इन्हें 'कागजी बर्तन' कहा जाता था। अलीगढ़ भी इस प्रकार के कागजी बर्तनों के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। जिस समय मिट्टी का पात्र चाक पर रहता, उसी समय कुम्हार उसमें तरह-तरह की डिजायनें बना देता था। जिस समय पात्र अधसूखा रहता, उस समय भी वह उसमें नक्काशी करता था।

मिट्टी के काले रंग के पात्रों की मांग भी कम नहीं थी। इस प्रकार की वस्तुयें अब भी काफ़ी बनती हैं। बंगाल में सेवान और खुलना, उत्तर-प्रदेश में अलीगढ़ और आज़मगढ़ में, बम्बई प्रान्त में रत्न-गिरि और मद्रास में मदुरा में काले रंग के बर्तन विशेष-रूप से बनाये जाते थे। पकाने से पहले पात्रों पर पांलिश चढ़ा दी जाती थी, उन्हें रंगा जाता था। पकाते समय उसमें धुंवा भी अधिक देना पड़ता था। रंग में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्राम की छाल, पीली मिट्टी, सज्जी मिट्टी ग्रादि डाली जाती थी। यह विधि विना चमक के वर्तनों को तैयार करने के लिये थी।

जयपुर की चमकीली सुराहियाँ ग्रादि जिन पर नीली ग्रौर हरे रंग से चित्रकारी की जाती थी, पिछली सदी से वहुत प्रसिद्ध रही हैं। इस शिल्प पर दिल्ली की मुगल कला का स्पष्ट प्रभाव था।

कहा जा चुका है कि जयपुर ने मृत्तिका-शिल्प की पूर्व-परम्परा दिल्ली से ग्रहण की। दिल्ली के शिल्पियों में भोला का नाम उल्लेखनीय है। पिछली शताब्दी के ग्रन्तिम चरण में भोला ने ब्रह्मा से ग्राये 'मर्तबानों' को देखकर, उनके जैसे ही 'मर्तवान' तैयार किये जिनमें ग्राचार, मुरब्बे ग्रादि रक्खे जा सकते हों। धीरे-धीरे वह मर्तवान बहुत लोकप्रिय हो गये। सर जार्ज व्वॉट् का मत है कि दिल्ली के कारीगरों का शिल्प पहले भावना ग्रौर 'तरहों' में हिन्दू था—

At first the designs and colouring adopted by the Delhi potter were strongly Hindu in coloration, but later on they became (perhaps in imitation of Multan) much more Muhammdan and then consisted of rich shades of pale blue (occasionally also green) on a granular but pure white surface."

दिल्ली में इन दिनों जो चीजें तैयार की जाती हैं वे यहाँ की मिट्टी की बनी हुई ही रहती हैं। पात्र के तैयार हो जाने पर उस पर खनिज पदार्थों से तैयार किये नीले रंग को चढ़ाते हैं ग्रौर उसे पकाते हैं। वाद में उसे चमकीला कर दिया जाता है। ग्रब नीले रंग की जगह ग्रन्य रंगों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया है। दिल्ली की काले रंग की 'पॉटरी' जिस पर सुनहली या रुपहली वार्निश से चित्रकारी की जाती है, दिनोंदिन लोकप्रिय होती जा रही है। दिल्ली की इस प्रकार की 'पाटरी' बीदर के कलापूर्ण पात्रों जैसी लगने लगती है।

उत्तर प्रदेश में मृत्तिका-शिल्प के प्रमुख केन्द्र चुनार, खुर्जा, बनारस ग्रौर लखनऊ हैं। चुनार के कारीगर पहले सांचों से वस्तु को तैयार करते हैं ग्रौर फिर उसे पकाकर उस पर वार्निश चढ़ा देते हैं। इस वार्निश से जो गहरे कत्थई रंग की रहती है, पात्र पर एक चमक ग्रा जाती है। चुनार की बनी हुई चीजों में फूलदानों को जोड़ कर, उसमें ग्रागे की ग्रोर दावातें ग्रौर कलम को रखने का स्थान भी बनाया जाता है। स्वाधीनता के वाद ग्रशोक स्तम्भ का ऊपर का भाग भी बहुत बनाया जाता है।

खुर्जा ग्रौर रामपुर विगत शताब्दी में ही मृत्तिका-शिल्प के प्रमुख केन्द्र माने जाते थे। खुर्जा के सुन्दर फूलदान, जिन पर फूल-पत्तियों ग्रौर गुलदानों ग्रादि का मनोमोहक चित्रण रहता था, ग्रब दुर्लभ हो चुके हैं। वस्तुतः खुर्जा के शिल्प की ग्रपनी एक विशेषता थी। उसमें ग्राकृति ग्रथवा डिजायन को उभार देकर बनाया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमि का रङ्ग और आकृति का रङ्ग अलग-अलग होने से पात्र में एक खिलावट आ जाती थी। जमीन अक्सर कुछ नारङ्गीपन लिए हुए कत्थई रङ्ग की या पीली रहती थी और उस पर सफेद और नीले रङ्ग की 'तरह' रहती थी। इसके रङ्ग भी खनिज पदार्थों से तैयार किये जाते थे। धीरे-धीरे खुर्जा और रामपुर का स्तर गिरता गया। खुर्जा की पुरानी लोककला अब लुप्त हो चुकी है और उसका स्थान अब वहाँ की एक फैक्टरी ने ले लिया है।

मुल्तान और पेशावर पश्चिमोत्तर भारत के प्रख्यात केन्द्र थे। वे सिन्ध की गौरवशालिनी परम्परा से जिसकी चर्चा इस लेख के प्रारम्भ में ही हम कर चुके हैं प्रभावित थे। मुल्तान के रंग-बिरंगे, विविध प्रकार की चित्रकारी-युक्त टाइल्स दूर-दूर तक जाते थे। मुल्तान के शिल्पी 'कशीगार' थे, जो स्वयं वस्तुयें नहीं बनाते थे, वरन् कुम्हारों की बनाई हुई वस्तुओं पर अलंकरण करते थे। कुम्हार पॉलिश किये हुये पात्र तैयार करके लाते थे। शिल्पी 'कशीगार' उन पर काँच, गोंद और लैड कारबोनेट से तैयार किया हुआ लेप चढ़ाते थे। उनके बाद पात्र पर हल्के और गहरे नीले व हरे रंग से चित्रकारी की जाती थी। बर्तन के सूख जाने पर उसे एक बार फिर काँच और गोंद के घोल में डुबोया जाता था। नीला रंग वैदूर्य नामक नीले रंग के रत्न से प्राप्त किया जाता था और स्थायी रहता था इसी प्रकार हरा रंग भी खनिज पदार्थों से उपलब्ध किया जाता था। यह दोनों नगर अब पाकिस्तान की सीमा में हैं।

बम्बई और उसके निकटवर्त्ती स्थानों में बम्बई, पाटन और खानपुर का नाम लिया जाता है। बम्बई के मृत्तिका-शिल्प के विकास का श्रेय 'बम्बई स्कूल आॅर्ट' को है। इस कला-विद्यालय में 'मृत्तिका-शिल्प' की भी एक कक्षा खोली गई थी। हल्ला नामक स्थान (सिन्ध प्रान्त) के कुशल कारीगर विद्यार्थियों को इस विषय की शिक्षा दिया करते थे। उन दिनों ग्रिफिथ साहब इस विद्यालय के प्रिंसिपल थे। ग्रिफिथ भारतीय कला के विख्यात समीक्षक समझे जाते हैं। उनका 'अजन्ता' नामक ग्रन्थ अपने विषय की प्रथम पुस्तक समझी जाती है। ग्रिफिथ साहब ने अजन्ता के अभिप्रायों को मृत्तिका-शिल्प में उतारने की चेष्टा कराई।

जयपुर को दिल्ली के कारीगरों द्वारा मृत्तिका-शिल्प की एक पूर्व-परम्परा मिली। इस मृत्तिका-शिल्प से 'स्टोन पॉटरी' से अभिप्राय है जो फेलसस्पार, संगमर्मर, काँच, सुहागा आदि वस्तुओं को मिश्रिय करके बनाई जाती थी। सामान्य उपयोग में आने वाले मिट्टी के सादे पात्र, घट, सुराहियाँ व प्याले-प्यालियाँ तो सभी स्थानों में ग्रामीण कुम्हार तैयार करते ही हैं। अलवर और जयपुर की सीमा पर बसे बसुआ ग्राम के कुम्हार उम्दा बर्तन बनाने के लिए प्रसिद्ध थे।

सन् १८६० ई० में जब जयपुर में 'जयपुर स्कूल ऑफ आर्ट' नामक कला-विद्यालय खुला तो अन्य ललित तथा कारुशिल्प के साथ मृत्तिका-शिल्प को भी प्रोत्साहन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिला। इस संस्था में 'स्टोन पॉटरी' ग्रौर 'क्ले पॉटरी' दोनों की विधिवत शिक्षा दी जाने लगी। 'स्टोन पॉटरी' के पात्र ही जयपुर की मृत्तिका-कला का सच्चे ग्रर्थों में प्रतिनिधित्व करते हैं। थॉमस एच० हैण्डले ने लिखा है कि जयपुर की बनी वस्तुग्रों को प्राचीन मिश्र की श्रेष्ठ कला-कृतियों के बीच में निस्संकोच रूप से रखा जा सकता है। जयपुर के पात्रों पर हरे ग्रौर नीले रंगों से फूल ग्रौर पत्तियों की तरहें बनी रहती थीं। यह डिज़ायनें मुग़ल वास्तु-कला से ली गई थीं।

'स्टोन पॉटरी' में खनिज पदार्थ ग्रधिक पड़ते थे। इसके बर्तनों को चाक से नहीं बल्कि साँचों की मदद से तैयार किया जाता था। वे बड़े मज़बूत रहते थे ग्रौर उन पर टाइल्स जैसी चमक रहती थी। 'मैमोरियल ग्रॉफ जयपुर एक्जवीशन' के ग्रनुसार इसमें निम्नलिखित मसाले डाले जाते थे।

फेल्स-स्पॉर	५ सेर
संगमर्मर	चौथाई सेर
मुलतानी मिट्टी	१ सेर
सुहागा	चौथाई सेर
सज्जी मिट्टी	ग्राधा सेर
कतीरा गोंद	ग्राधा सेर
चीनी	चौथाई सेर
काँच	१ सेर

फेल्स-स्पॉर एक प्रकार की सफेद रंग की धातु होती है। वह कारीगरों को जयपुर के पास की पहाड़ियों से उपलब्ध हो जाती है। संगमर्मर जोधपुर के निकटवर्ती स्थान मकराना से निकलता है। मुग़ल शाहन्शाहों ने मकराने के संगमर्मर से ही ताजमहल व ग्रन्य भवनों की रचना कराई। ग्राबू का भव्य कला-मंडप भी मकराने के इस संगमर्मर से ही बना है। सुहागा, सज्जी मिट्टी ग्रादि शेष वस्तुयें विक्रेताग्रों के पास से मिल जाती थीं। कारीगर इन सब वस्तुग्रों को बारीक पीसता ग्रौर गोंदा बना कर साँचे में इच्छित वस्तु को ढाल लेता था। जब चीज़ तैयार हो जाती थी तब उसके ऊपर फेल्स-स्पॉर ग्रौर मैदे के घोल का लेप करके सूखने के लिये रख देता था। बाद में वह उन पात्रों पर, खनिज-पदार्थों से तैयार किये हुए हरे ग्रौर नीले रंग से चित्रकारी करता था। यह खनिज राजस्थान में ही खेतड़ी ग्रौर भागोर में उपलब्ध होते थे। डिज़ायन बनाने के बाद शिल्पी पात्र को काँच के घोल में (जो रसायनिक रीति से तैयार किया जाता था) डुबोता था फिर उस बर्तन को दुबारा धूप में सूखने के लिये रख देता था। पात्र के कुछ सूख जाने पर उसे ग्रावाँ में रखकर पका लिया जाता था। थॉमस एच० हैण्डले ने लिखा है कि इस क्रिया से वर्तन तैयार होने में केवल छः घंटों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का समय लगता था[१]। इस शताब्दी के प्रारम्भ के कुशल कलाकार श्री विश्वेश्वरनाथ ने दूसरा फार्मूला बतलाया है[२]।

बीकानेर भी मृत्तिका-शिल्प का एक केन्द्र है। वहाँ पात्रों के ऊपर पॉलिश चढ़ाते हैं, जिससे कि वे दमकने लगते हैं।

राजस्थान का, विशेष रूप से बीकानेर खण्ड का मिट्टी की वस्तुओं के बनाने का एक बड़ा केन्द्र नौहर है। ऑल इण्डिया हैण्डीक्राफ्ट्स बोर्ड द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'हैण्डीक्राफ्ट्स' ऑफ इण्डिया' में नौहर राजस्थान के मृत्तिका-शिल्प का सबसे प्रमुख केन्द्र माना गया है। नौहर के मिट्टी के पात्र लाल नहीं बल्कि सफेदी लिये हुए रहते हैं। उनके ऊपर किसी प्रकार की पॉलिश या वार्निश नहीं रहती। चाय के प्याले, धूपदानी, छोटी हाँडियाँ और तश्तरियाँ आदि वस्तुयें 'नौहर भादरा' के कुम्भकार तैयार करते हैं। उनकी चीजों में सफाई रहती है। साथ ही वे बड़ी हल्की भी रहती हैं। निकटवर्ती संग्रहालय होने के कारण सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में नौहर के मृत्तिका-शिल्प का प्रतिनिधि संकलन है।

ग्रिफिथ साहब ने 'बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट' में मृत्तिका-शिल्प को स्थान दिया। उसके शिक्षक सिंध के थे, जोकि मिट्टी के सुन्दर पात्रों तथा टाइल्स के लिये कई सदियों से प्रसिद्ध था। सिंध के पात्रों में रंगों के हल्के व गहरे 'शेड्स' दिये जाते थे और फूल-पत्तियों के बड़े सुन्दर कटाव रहते थे। रंग-बिरंगे भाँति-भाँति के नमूनों से सिंध के टाइल्स अलंकृत रहते थे और वे मस्जिदों तथा राजभवनों के वास्तु में उपयोग में लाये जाते थे। बम्बई में इस कला विद्यालय की स्थापना से पहले चमकदार, मिट्टी की वस्तुयें नहीं बनती थीं।

बम्बई में बिना चमक के, लाल और भूरे रंग के पात्र भी बनते हैं। इनके कई प्रकार हैं। पात्र को तैयार करके शिल्पी उसके ऊपर फूल-पत्तियाँ तथा मयूर आदि पंछी अंकित करता है, जिससे पात्र बड़े सुन्दर लगते हैं। रेखांकन सरल और स्पष्ट होता है किन्तु वह मन को छूता है। सम्भ्रान्त वर्ग के नागरिकों के ड्राइंग रूम इन पात्रों के सुशोभित रहते हैं। बम्बई के शिल्पी जिस मिट्टी के पात्र तैयार करते हैं,वह कुछ सफ़ेदी लिये रहती है किन्तु वे उस पर हल्के लाल रंग को चढ़ाते हैं और फिर उसके ऊपर गहरे लाल, कत्थई या काले रंग से डिज़ायन बनाते हैं। बम्बई में ऐसे पात्र भी बनते हैं जिनमें डिज़ायन पृष्ठ-भाग से उभरी हुई रहती है और उन रंगों से पात्र बहुत सुन्दर और शोभायुक्त लगने लगता है। उन पर हल्की पॉलिश भी रहती है।

बंगाल की मृत्तिका-कला के मुख्य केन्द्र, कलकत्ता, कृष्णनगर, नवद्वीप, शांतिपुर और सीतारामपुर समझे जाते हैं। कृष्णनगर के कुम्भकार खिलौनों को तैयार

१. मैमोरियल आफ जयपुर एक्ज़ीबीशन, पृष्ठ ५७.
२. हैण्डीक्राफ्ट्स एंड इंडस्ट्रियल आर्ट आफ़ इंडिया, पृष्ठ ८३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में बड़े सिद्धहस्त समझे जाते हैं। वहां के सजीव और मनोमोहक खिलौने देश भर में जाते हैं। बंगाल में मृत्तिका-पात्र पर पहले आकृति तैयार कर ली जाती है और फिर उनको सुखाया या बहुत हल्की आँच में पकाया जाता है। पात्र के सुशोभन और अलंकरण की डिज़ायनें स्पष्ट, बड़ी किन्तु आकर्षक रहती हैं। वे बहुधा लोक-कला के अभिप्रायों से युक्त होती हैं।

६. भारतीय मृण्मूर्तियाँ और खिलौने

शिशु चाहे किसी देश अथवा काल का क्यों न हो, खिलौनों का प्रेमी रहता है। भांति-भांति के पशु और पक्षियों आदि की आकृतियाँ जहाँ एक ओर उसका मनोरंजन करती हैं, वहाँ दूसरी ओर उसकी ज्ञानवृद्धि का साधन भी बनती हैं। दक्षिण अमेरिका की मय संस्कृति, प्राचीन मिश्र की कला आदि में, उत्खनन के फलस्वरूप, अन्य वस्तुओं के साथ खिलौने व मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। भारत की प्राचीन स्मृतियां अनेक प्रकार की हैं। उनमें वास्तु, भास्कर, शिल्प व सिक्कों आदि के साथ मृण्मूर्तियों का भी स्थान है। प्राचीन मृण्मूर्तियाँ व खिलौने पुरातत्व की निधि समझे जाते हैं। मृण्मूर्तियों को अंग्रेजी में 'टेराकोटा' कहा जाता है। पुरातत्व-शास्त्री इन मूर्तियों में प्रदर्शित आभूषण, वेशभूषा आदि का अध्ययन करते हैं, क्योंकि वे तत्कालीन समाज की कला और संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।

इस पुस्तक के अन्य अध्यायों में हम सिन्धु-घाटी सभ्यता की चर्चा कर चुके हैं, जिसका समय इतिहासकारों ने २५०० ईसा-पूर्व से १७०० ईसा-पूर्व तक निश्चित किया है। मोहें जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में मृण्मूर्तियों का विशाल भंडार मिला है। श्री राय कृष्ण दास ने मूर्ति-कला के दो उद्देश्य बतलाये हैं—"एक तो किसी स्मृति को या अतीत को जीवित बनाये रखना, दूसरे अमूर्त को मूर्त-रूप देना, अव्यक्त को व्यक्त करना अर्थात् किसी भाव को आकार प्रदान करना।[1] मृण्मूर्तियों के दो प्रयोजन हैं--उपासना और बालकों का मनोरंजन। मोहें जोदड़ो, हड़प्पा, चन्हूदड़ो व सिन्धु-घाटी के अन्य स्थानों में ऐसी अनेकों मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन्हें 'मातृ देवी' माना जाता है। प्राचीन युग में फारस, मैसोपोटामिया, मिश्र और सीरिया सभी स्थानों में मातृ देवी की उपासना प्रचलित थी। सिंधु-घाटी की यह मृण्मूर्तियाँ नग्न दिखलाई गई हैं किन्तु वे विविध प्रकार के आभूषणों से लदी हुई हैं—

उनके अतिरिक्त पशु-पक्षियों के अनेक खिलौने भी मिले हैं। यह खिलौने अच्छी तरह पकाये हुये हैं और उन पर लाल रंग भी चढ़ाया गया है। कला की दृष्टि से यह नमूने अधिक उत्कृष्ट नहीं ठहरते। कुछ समीक्षक उन्हें स्वयं बालकों के हाथों का बना हुआ मानते हैं। इनमें वस्त्र, आभूषण, और नेत्रादि अलग से बनाकर,

१. भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाद में चिपकाये गये हैं—

"ऐसा प्रतीत होता है कि उस काल में भी कुम्हारों की अलग-अलग मृण्मूर्तियों की दूकानें थीं। स्वयं कुछ कुम्हारों के बच्चे मिट्टी के खिलौने बनाया करते होंगे। अनेक खिलौनों का निर्माण बच्चों के हाथों से हुआ है। प्राचीन यूनान में भी कई खिलौने बच्चों द्वारा बनाये जाते थे। फिर भी हमारे सम्मुख एक विडम्बना उपस्थित होती है। यदि इन मृण्मूर्तियों में अधिकतर बच्चों के खिलौने थे, तो यह प्रश्न होता है कि बच्चे इन कुरूप खिलौनों को कैसे पसन्द करते रहे होंगे ? बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति सुन्दर वस्तुओं की ओर लपकने की होती है। हमारा अनुमान है कि उस काल में मृच्छिल्प अपने शिशु काल में था और इसलिये भद्दे होने पर भी उस काल के बच्चे इन खिलौनों को अपना लेते थे।"

सिन्धु घाटी संस्कृति के नगरों की खुदाई में पशुओं की मृण्मूर्तियाँ बड़े परिमाण में उपलब्ध हुई हैं। उनमें से अधिकांश बच्चों के खिलौने हैं। सबसे अधिक आकृतियाँ बैल की हैं, जिसके सींग छोटे-छोटे दिखलाये गये हैं। उसके अतिरिक्त, भैंस, शेर, कुत्ता, सुअर और बन्दर भी मिले हैं। पक्षियों में हंस, बतकें, मुर्गियाँ और मोर आदि प्राप्त हुये हैं। कुछ ऐसे पशु और पक्षी हैं, जिन्हें पहचाना नहीं जा सका है।

भारतीय मृण्मूर्तियों और मिट्टी के खिलौनों की कहानी यहीं से प्रारम्भ होती है। फिर इतिहास में एक अन्धकार-युग आता है, जिसे चीर कर नहीं देखा जा सकता क्योंकि बीच की खोई हुई शृंखलायें अभी तक मिली नहीं हैं। मौर्य काल से मृण्मूर्तियाँ पुनः प्राप्त होने लगती हैं। पटना, मथुरा, कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, राजघाट (काशी) आदि अनेक स्थानों की खुदाई में मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। अहिच्छत्रा की मृण्मूर्तियाँ गुप्त काल की हैं और उनमें उस कला की सारी लाक्षणिकतायें विद्यमान हैं।

मृत्तिका-शिल्प की दृष्टि से शुंगों का समय अत्यन्त समृद्ध समझा जाता है। इस युग के नमूनों की विषय-वस्तु तत्कालीन लोक-जीवन को स्पर्श करती है। शुंग और मौर्यों से पहले की भी कुछ मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका समय श्री राय कृष्ण दास जी ने ७वीं शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर मौर्य-काल तक का माना है।[१] उन्होंने एक मृण्मूर्ति का चित्र भी प्रकाशित किया है जिसमें एक यक्ष अपनी पत्नी के साथ खड़ा हुआ दिखलाई देता है। यह मृण्मूर्ति पकाई हुई काली मिट्टी की है और जिला गाज़ीपुर के मसौन नामक स्थान में प्राप्त हुई है।" शिल्पी ने पुरुष तथा नारी के अवयव तथा वस्त्रालंकार बड़ी सफाई से बनाये हैं। गहरा कटाव देने के कारण आकृति स्पष्ट व सुन्दर जान पड़ती है।[२] मौर्य काल या उससे पूर्व की मातृदेवी की कुछ मृण्मूर्तियाँ मथुरा में उपलब्ध हुई हैं। मृण्मूर्तियों की दृष्टि से मथुरा का संग्रहालय

१. भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ३५.
२. वही, फलक ११ क.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत समृद्ध है। उसमें कई सहस्र मृण्मय प्रतिकृत्तियाँ हैं। प्रयाग के संग्रहालय में कौशाम्बी से प्राप्त हुई पाँच सहस्र से भी अधिक मृण्मूर्तियाँ हैं। पटना संग्रहालय में मौर्य काल से पहले से लेकर गुप्त काल तक की मृण्मूर्तियाँ हैं जो कि मथुरा, कौशाम्बी भीटा, राजगृह और अन्य स्थानों से प्राप्त हुई हैं। पटना संग्रहालय में पाटलिपुत्र से ही उपलब्ध मौर्य काल की मृण्मयी नागिनी तथा स्त्रियों की मृत्तिका मूर्तियाँ हैं।[1] इन मृण्मूर्तियों में अंगों का सौष्ठव और लुनाई दिखलाई देती है। इनकी भंगिमायें बड़ी आकर्षक बन पड़ी हैं।

शुंग काल की मृण्मूर्तियाँ मथुरा, कौशाम्बी, राजघाट (काशी) तामलुक, भीटा प्रयाग और पटना से प्राप्त हुई हैं। तामलुक प्राचीन ताम्र-लिप्ति है जिसका फाह्यिान तथा श्यूआन् चुआङ् आदि चीनी महापर्यटकों ने अपने भ्रमण-वृत्तान्तों में जिक्र किया है। शुंग-काल की इन मृण्मयी प्रतिकृतियों में नारियाँ विविध प्रकार के रत्न-जड़ित आभूषणों से लदी हुई दिखलाई देती हैं। प्रत्येक काल में प्रस्तर-शिल्प का मृत्तिका-शिल्प पर गहरा प्रभाव पड़ा है। कुम्भकारों ने भास्कर-शिल्पियों की कृत्तियों से अपनी प्रेरणा प्राप्त की है। इस युग की पाषाण-मूर्तियों की भांति ही हम इन मिट्टी के नमूनों को मूर्ति का नाम नहीं दे सकते क्योंकि यह चारों ओर से कोर कर नहीं बनाये गये वरन् एक ओर इतना उभार देकर काटे गये हैं कि आकृतियों में स्पष्टता आ गई है। पीछे का भाग खाली तथा सपाट है। चिपटा डौल शुंग कला की लाक्षणिकता है जिससे वह सहज ही पहचानी जाती है।

शुंग काल की मृण्मूर्तियों में दम्पति, नारियों के ऊर्ध्वांग व खिलौने आदि विविध प्रकार की वस्तुयें दिखलाई देती हैं किन्तु नारी अंकन अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। एक मृण्मूर्ति में एक रमणी अपने शुक को आम खिलाती दिखलाई देती है। एक अन्य मूर्ति को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह दीदार गंज की सुप्रसिद्ध यक्षिणी मूर्ति की प्रतिकृति है। कहीं किसी सौन्दर्यवती के हाथों में लीला-कमल दिखलाई देता है तो किसी के हाथों में दर्पण। व्यंजनधारिणी और चंवरधारिणी दासियों की मृण्मयी प्रतिकृतियाँ भी मिली हैं। कहीं कोई रमणी अंजलि-मुद्रा में हाथ जोड़े हुये दिखलाई देती है। पशु-मूर्तियों में हाथी, सिंह, अश्व और वृषभ आदि आँके गये हैं। इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन (सन् १९३८) में एक कला प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया था। उसमें प्रदर्शित मृत्तिका-मूर्तियों में पशुओं के के बड़े सजीव चित्रण थे। किसी में हाथी और सिंह युद्ध करते हुये दिखलाये गये थे तो कहीं कोई शृंगाल शिकार की खोज में भटकता हुआ दिखाया था। कहीं चार अश्व रथ के जुते हुये उसे खींच रहे थे।[2]

१. गंगा पुरातत्वांक-चित्र १२५. १२८.

२. इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस इलाहाबाद (१९३८) एक्जबीशन सौवेनिर, पृष्ठ १८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारत में खिलौनों का अत्यधिक प्रचलन था। संस्कृत व पाली ग्रंथों में अनेक स्थान पर उल्लेख आये हैं। कालिदास ने लिखा है कि बालिका पार्वती मिट्टी की गेंद बनाकर खेला करती थीं। संस्कृत के प्राचीनतम नाटक मृच्छकटिक में, जिसका समय प्रथम शताब्दी ईसा-पूर्व माना जाता है, महाराज शूद्रक ने मिट्टी की छोटी गाड़ी की बात लिखी है। इस प्रकार की छोटी-छोटी मिट्टी की गाड़ियाँ कौशाम्बी में मिली भी हैं। चम्पा, राजगृह, स्रावस्ती, साकेत और वाराणसी की भांति कौशाम्बी भी बौद्ध युग का एक महा नगर था। यह उज्जैन और राजगृह के मार्ग पर था। प्रयाग विश्व विद्यालय और म्युनिस्पल संग्रहालय इलाहाबाद में कौशाम्बी (कोसम, जिला इलाहाबाद) से उपलब्ध असंख्य ठीकरे हैं जिन पर मूर्तियाँ उभरी हुई हैं। मझिझम निकाय के उपलि सुत्त में महल्लक नामक वृद्ध ब्राह्मण अपनी नव-वयस्का पत्नी को रिझाने के लिये मर्कट-शावक (बानर का बच्चा) खिलौना खरीद कर लाया था क्योंकि वह आसन्न-प्रवसा थी। इस उल्लेख से यह भी प्रकट है कि उन दिनों खिलौनों को रंगा जाता था और उनपर पॉलिश भी की जाती थी।[1]

प्राचीन वाङ्मय में उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कथा अत्यंत प्रसिद्ध रही है। कला भवन में पकाई मिट्टी का एक टिकरा है जिसपर उस समय का दृश्य अंकित है जब कि वत्स जनपद का राजा उदयन, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी, अवंति-राज चण्ड महासेन की पुत्री वासवदत्ता को अपनी हथिनी पर ला रहा था। हथिनी पर तरुण उदयन बैठा है और उसके हाथ में सुर मंडल नामक वाद्य है, जिसे बजाकर वह हाथियों को मोहता था। उसके साथ बैठी वासवदत्ता तनिक झुकी हुई अंकुश से से भद्रावती हथिनी को चला रही हैं। राय कृष्ण दास ने इस टिकरे के सम्बन्ध में लिखा है, 'कला की दृष्टि से भी यह एक सुन्दर चीज़ है। इसका डौल चिपटा होते हुये भी कायदे से है। इसकी प्रत्येक रेखा सुनिश्चित है; उसमें बारीकी है, साथ ही दम-खम भी।[2]

हथिनी के पीछे एक व्यक्ति सिक्के बिखरा रहा है और दो आदमी उन्हें बटोर रहे हैं। टिकरे का विषय ऐतिहासिक होने के कारण उसका अत्यधिक महत्व है। सर जॉन मार्शल को भीटे की खुदाई में ऐसा टिकरा मिला था, जिस पर शकुंतला दिखलाई गई थीं। पहले मृण्मूर्तियाँ हाथ से बनाई जाती थीं और साँचे का प्रचलन न था। मौर्य काल तक की मृण्मूर्तियाँ हाथ की बनी हुई हैं। इस प्रकार की अनेक मृण-मूर्तियाँ न केवल पाटलिपुत्र अपितु सुदूरवर्ती उज्जयिनी और विदिशा से भी प्राप्त हुई हैं।[3]

---

१. बुद्धचर्या—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ ४५३.

२. भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ६५.

३. यह भारत का इतिहास, हरिहर निवास द्विवेदी, पृष्ठ ३३१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण भारत में यद्यपि उत्तर प्रदेश के कौशाम्बी, मथुरा, सारनाथ और भीटा की भाँति मृण्मूर्तियों का विशाल भण्डार नहीं मिला किन्तु जो मृण्मूर्तियाँ व मृत्तिका-शिल्प की अन्य वस्तुयें पाण्डिचेरी के निकटवर्त्ती स्थान आर्किमेडु, चन्द्रावली, ब्रह्मगिरि (मैसूर) और कोण्डापुर में उपलब्ध हुई हैं, वे इस कला का पूर्ण-रूपेण प्रतिनिधित्व करती हैं। इन सब में कोण्डापुर की मृण्मूर्तियाँ अधिक सुन्दर हैं। वहाँ प्राप्त हुये बोधि-सत्व और यक्ष-मस्तक मन को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हैं। उनकी पग-ड़ियों पर रत्न जड़े हुये हैं। कोण्डापुर से प्राप्त हुई एक यक्ष मृण्मूर्ति में जटा-मुकुट व केश-विन्यास दर्शनीय है। कोण्डापुर में नारी-मस्तक और बैल व घोड़ा आदि खिलौने भी उपलब्ध हुये हैं। पशुओं को गहनों से सजाया गया है। इसी प्रकार के कुछ नमूने आर्किमेडु और कोण्डापुर में भी प्राप्त हुये हैं। यह मृण्मूर्तियाँ सातवाहन काल की हैं।[1]

मृण्मूर्तियों का अध्ययन अत्यन्त मनोरंजक है। कला-समीक्षकों का ध्यान पाषाण-शिल्प की ओर अधिक होना स्वाभाविक था इसीलिये मृत्तिका-शिल्प पर सर्वांग-पूर्ण ग्रन्थ अब तक नहीं लिखा जा सका। यह कार्य सरल नहीं है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने लिखा है—

"मिट्टी की भाँति-भाँति की मूर्तियाँ बनाने की कला भारतवर्ष में बहुत पुरानी है। मृण्मूर्तियों के काल-निर्णय का कार्य सरल नहीं है। यह मूलतः लोक-कला है, और जिस रूप में मोहेंजो डेरो तथा कन्नौज आदि स्थानों के प्राग्वैदिक स्तरों से प्राप्त हुई है, उसी रूप में वह आज मिल जाती है। अन्य लोक-कलाओं की भाँति वह शाश्वत् और काल-सीमा के बन्धनों से परे है। उत्खनन के स्तर और उसके साथ प्राप्त अन्य सामग्री से ही उनके काल का निर्णय हो सकता है।"

सभी युगों में मृण्मूर्तियाँ बनती रहीं हैं किन्तु गुप्त काल में यह कला मानों अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गई है। अहिच्छत्रा, राजघाट, सारनाथ व पहाड़पुर आदि की खुदाई में अनेकों मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इस युग के मृत्तिका-शिल्प में पात्रों और खिलौनों की नई-नई डिज़ायनें देखने में आती हैं। गुप्त काल के टिकरे मिले हैं जो पट पर हैं। उन्हें हल्के लाल रंग से रंग दिया जाता था। ऐसी मृत्तिका-मूर्तियां भी बहुतायत से मिली हैं, जो ठोस हैं और जिन्हें भरावदार सांचों द्वारा तैयार किया गया है। राजघाट (काशी) की खुदाई में जो मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई उनमें स्त्रियों के केश-विन्यास और आभूषण आदि के विविध प्रकार आश्चर्य में डाल देते हैं। सौंदर्य-युक्त मुख; तीखे नाक-नक्शे, बड़ी-बड़ी आँखें; गुप्त-कालीन मृण्मय मूर्तियाँ अपने समकालीन पाषाण-शिल्प की भाँति ही अलग दिखलाई देती हैं। गुप्त काल से पहले की कृत्तियों में इतना लावन्य नहीं है। गोद में शिशु लिये हुये माता, सिर पर मटकी

१. हैदराबाद, आर्ट, आर्क्योलोजी एण्ड हैण्डीक्राफ्ट्स, फलक ८-९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधे स्त्री, शुक-क्रीड़ा, गान-वाद्य, प्रेमरत दम्पति आदि विषय-वस्तुओं का प्रदर्शन इन टिकरों और मृण्मूर्तियों में दिखलाई देता है। सौन्दर्य-निरूपण के साथ जीवन के विविध पहलुओं को उनमें उतार दिया गया है। राजघाट की खुदाई में कुछ खिलौने भी निकले हैं। हाथी, शेर, कुत्ता आदि पशु भी इन खिलौनों में दिखलाई देते हैं। कुछ खिलौने बड़े मनोरंजक हैं—

राजघाट के एक मृत्तिका-फलक पर सर्कस का मनोरंजक दृश्य दिखलाया गया है। फलक में ऊपर किनारे की ओर दो मुर्गे लड़ते हुए दिखलाये गये हैं। जातक-कथाओं से ज्ञात होता है कि बौद्ध युग में कुक्कुट अथवा अरुण-शिख पाले जाते थे। तक्षशिला के एक आचार्य के पास एक मुर्गा था, जो उसके शिष्यों को बांग देकर बहुत तड़के जगा देता था। उस मुर्गे पर झुंझला कर एक दिन शिष्यों ने उसकी गर्दन मरोड़ दी! कुक्कुट युद्ध, मेढों का युद्ध आदि जनता का मनोरंजन था। अजंता के एक भित्ति-चित्र में कुछ बालक अपने-अपने मेढों को लड़ाते हुये चित्रित किये गये हैं। राजघाट के इस मृत्तिका-फलक में मुर्गों के नीचे दो बैल लड़ रहे हैं और दूसरे कोने में दो मल्ल मुष्टिका-युद्ध कर रहे हैं। नीचे एक गाड़ी दिखलाई गई है जिसमें चार हाथी जुते हुये हैं। महावत के स्थान पर एक हाथी ही है जो चार हाथियों के मुख की लगाम अपने मुँह में थामे हुए है। उसकी सूंड़ में अंकुश भी है। राजघाट में बैल, गाड़ियों, घोड़ों, व अन्य पशुओं के मिट्टी के खिलौने भी पर्याप्त संख्या में मिले हैं जो कि बालकों की क्रीड़ा के लिये बनाये गये हैं।

सारनाथ के मृत्तिका-शिल्प पर उसके मूर्ति-शिल्प की भाँति ही भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रसंग अंकित किये गये हैं। यह अधिकांश मृत्पट्टिकायें (terracotta plaques) हैं जो टूट चुके हैं, कुछ अभी तक साबित हैं। इनमें भगवान् बुद्ध पर मार का आक्रमण, श्रावस्ती नगरी का चमत्कार दिखलाया गया है। श्रावस्ती के चमत्कार में भगवान् बुद्ध का विश्व-रूप दिखलाया गया है। वे छः शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं और एक ओर राजा बैठा है। सारनाथ की मृण्मूर्तियों में बुद्ध की भूमि-स्पर्श, अभय, वरद आदि मुद्रायें दिखलाई देती हैं।

गुप्त काल की सबसे सुन्दर मृण्मूर्तियां अहिच्छत्रा में बनीं। सम्भवतः इन्हीं को देख कर राय कृष्ण दास जैसे कला-समीक्षक को यह लिखना पड़ा कि "गुप्तकाल में बड़ी-बड़ी मृण्मूर्तियाँ और पकाई मिट्टी के फलक भी बनते थे, जिनका सौन्दर्य और सजीवता पत्थर या धातु की मूर्तियों से भी इक्कीस है।" अहिच्छत्रा के गुप्त-कालीन मंदिर में पुराण-कथाओं को बड़ी सजीवता के साथ मृत्पट्टिकाओं में शिल्पांकित किया गया है। समूचे मन्दिर को मृत्पट्टिकाओं से सजाया गया था। यह मृच्चित्र बड़े सुन्दर तथा मूर्ति-विधान की दृष्टि से उतने ही महत्वपूर्ण भी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहिच्छत्रा की परम्परा ही पहाड़पुर के स्तूप और मन्दिर में भी उतरती दिखलाई देती है। बंगाल के राजशाही जिले के इस कला-मंडप की खुदाई के फल-स्वरूप अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध हुई है। पहाड़पुर में हिन्दू और बौद्ध-धर्म का शिल्प समान-रूप से मिलता है। हिन्दू मूर्तियों में से अधिकाँश वैष्णव और शैव सम्प्रदायों की हैं। कृष्ण की बाल-लीला की पाषाण-प्रतिमायें, राधा और कृष्ण का युग्म, यमुना और बलराम की मूर्तियाँ आदि बड़ी मनोरम हैं और उनमें गुप्त कला की समस्त लाक्षणिकताओं का समन्वय दिखलाई देता है। इन्द्र, यम और अग्नि आदि की मूर्तियां हिन्दू मूर्ति-विधान को एक देन है। बौद्ध प्रतिमाओं में वोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रस्तर-प्रतिमा उल्लेखनीय है। पहाड़पुर के इस कला-मन्दिर में प्रस्तर-प्रतिमाओं की संख्या तो कुल मिलाकर ६३ ही है किन्तु मृच्चित्रों की संख्या कई सौ है। पहाड़पुर का मन्दिर तथा स्तूप ईंटों का बना हुआ था। उसमें शोभामयी पाषाण प्रतिमाओं के नीचे, दीवार में आयताकार दग्ध मृण्मय पट्ट जड़े हुये थे। मिट्टी के चित्रों के इतने अधिक प्रकार कहीं उपलब्ध नहीं हुये। इन पट्टों में पशु-पक्षियों, नर-नारियों और देवी-देवताओं के मनोहारी चित्र हैं। इस मृत्तिका शिल्प में पंचतंत्र की कथायें भी शिल्पांकित हुई हैं।

"पहाड़पुर की मृच्चित्र पट्टिकाओं में प्राणियों की कितनी ही मूर्तियों में बहुत अच्छी कारीगरी की गई हैं। एक भैंसे का चित्र, चरते हुए हिरण का चित्र, परस्पर लिपटे तीन वानरों का चित्र, हाथियों के अनेक लीलाओं वाले चित्र, हंस, मयूर, कोकिल शुक, आदि पक्षियों की विविध गति दिखलाने वाले चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। मनुष्यों में ढाल और खंग लिये हुये योद्धा, रथ तथा घोड़े पर सवार सैनिक, हर प्रकार का शरीर-विन्यास करने वाले नट, ढोल, करताल, शहनाई तथा वाद्य बजाने वाले वादक, ध्यान में निमग्न कंकाल-शेष योगिजन, गवाक्ष से देखती ललनायें इत्यादि विविध प्रकार के चित्र हैं।"[१]

सारनाथ के अतिरिक्त नालन्दा में भी नवीं-दशवीं शताब्दी के कुछ मृत्तिका-फलक मिले हैं। नालंदा के पुरातत्व संग्रहालय के मृत्तिका-फलकों में बुद्ध और बोधि-सत्व आदि का अंकन है। एक फलक में बुद्ध और वज्रपाणि बैठे हैं, एक में तारादेवी हैं। कुछ फलकों में स्तूप आदि दिखलाये गये हैं। नालन्दा में पकाई मुहरों की अच्छी छापें भी मिली हैं। इनमें से एक मुहर में हरिण और धर्म-चक्र का प्रतीक बना है तथा 'श्री नालन्दा महाविहारीय भिक्षु संघस्य', शब्द अंकित हैं। बंगाल के 'वीरभूमि टैराकोटाज़' पर अभी एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। मिट्टी के खिलौनों के जो भी नमूने प्राप्त हुये हैं, वे विभिन्न स्थानों के उत्खनन में ही प्राप्त हुये हैं। भीटा का समूचा मन्दिर ही, मृत्तिका-फलकों से सजा हुआ था—

१. गंगा पुरातत्वांक, पहाड़पुर के विचित्र मन्दिर की खुदाई, पृष्ठ १३३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"The temple at Bhitagaon which was entirely decorated with terracotta figures should have been one of the richest, of which most figures practically disappeared except for a few specimens."

मिट्टी की कला एक लोक-कला है जिसकी परम्परा शताब्दियों से चलती आ रही है। मिट्टी एक ऐसी चीज़ है जिसके बने हुये अल्पमोली खिलौने सभी वर्गों के लोग क्रय करते हैं। दीपावली के दिन गणेश-लक्ष्मी का पूजन होता है। उनकी मूर्तियाँ भी मिट्टी की बनी हुई रहती हैं। महाराष्ट्र में प्रति वर्ष गणेशोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। लेखक ने पूना, नागपुर और कोल्हापुर में गणेश की विशालकाय किन्तु सर्वांग-सुन्दर मृण्मूर्तियाँ देखी हैं जिनके बनाने में शिल्पी महीनों तक सतत् श्रम करते हैं और जिनका मूल्य हजारों में कूता जाता है। किन्तु गणेश पूजा के पश्चात् ही उन प्रतिमाओं का नदी, सरोवर आदि में विसर्जन कर दिया जाता है। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, इसका उद्देश्य यह है कि मूर्तिकारों को बराबर काम मिलता रहे और उन्हें बेकारी की व्याधि न सतावे—

बंगाल में दुर्गा पूजा मनाई जाती है। इसी प्रकार सरस्वती पूजा भी होती है। जहाँ भी बंगालियों के थोड़े-बहुत परिवार हैं वहाँ यह दोनों उत्सव बड़े उल्लास और उत्साह के साथ मनाये जाते हैं। इन देवताओं के साथ अन्य देवगणों की भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनती हैं। "मूर्तियाँ बहुत सुन्दर होती है और कला की दृष्टि से कहें तो अच्छे से अच्छे भास्कर्य से मुकाबला कर सकती हैं। मूर्तियों के साथ भित्ति-चित्रण का एक रूप देखने में आता है; जिन लोगों ने मिट्टी की बनी हुई दुर्गा-मूर्तियाँ देखी हैं, उन लोगों ने यह देखा होगा कि मूर्तियों के ठीक पीछे बल्कि मूर्ति के हिस्से के रूप में एक लम्बी-चौड़ी भूमि बनी रहती है। यह पृष्ठ-भूमि समतल होने के कारण इस पर चित्रकारी की गुंजाइश रहती है। इस प्रकार जो चित्र बनाये जाते हैं, उनको 'चालचित्र' कहते हैं। चाल-चित्रों के विषय के रूप में पौराणिक कहानियाँ और देवी-देवताओं की मूर्तियाँ रहती हैं। उनके चित्रण में बड़ी निपुणता दृष्टिगोचर होती है।"

आजकल सभी छोटे-बड़े नगरों में खिलौनों की दूकानों में रबर, टीन अथवा लोहे के चाबीदार खिलौनों की भरमार दिखाई देती है। इधर कुछ दिनों से नाइलोन के खिलौने भी आने लगे हैं। पहले जापान और ब्रिटेन से चाबीदार खिलौने आया करते थे। अब इस देश में भी तरह-तरह के चाबीदार खिलौने बनने लगे हैं। दौड़ने वाली मोटरें, झूले, नाचते हुए साहब-मेम या घुटनों के बल चलने वाला शिशु आदि, अपने देश की फैक्टरियों में ही बनने लगे हैं। इस प्रकार की वस्तुओं से बालक का घड़ी भर का मनोरंजन भले ही हो जावे किन्तु न उनसे बालक की सौन्दर्य-वृत्ति में विकास होता है और न उसका ज्ञान-वर्द्धन ही होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिशु स्वाभाविक-रूप से जिज्ञासायें करता है। मैं जब कोई पुस्तक लेकर पढ़ने बैठता हूं तो मेरी दो वर्ष की बालिका पुस्तक के चित्रों को देखकर पूछती जाती है, "यह क्या है ? यह क्या है ?" अपने अध्ययन में विघ्न पड़ते हुये देखकर मैं झुंझला उठता हूं तभी ध्यान आता है कि बालिका का अध्ययन चल रहा है। विश्व की विविध वस्तुओं के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष-रूप में उसका परिचय होता जा रहा है। बालक सुनी हुई या पढ़ी हुई वस्तु की अपेक्षा देखी हुई वस्तु को अधिक आसानी से याद कर लेता है। खिलौने का उद्देश्य यह है कि बालक के ज्ञान और परिचय का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता जावे। जिस सिंह, गैंडे या कँगारू को बच्चे ने कभी नहीं देखा और जिसकी परिकल्पना वह केवल पुस्तक का पाठ पढ़ने मात्र से नहीं कर सकता वही जब उसके सामने खिलौने के रूप में जाता है तो सहज-रूप में बोधगम्य हो जाता है। लखनऊ में कुम्हार लोग मिट्टी के ऐसे सुन्दर फल और सब्जियाँ बनाते हैं कि उनके सादृश्य पर आश्चर्य होता है। उनके आकार-प्रकार और रंगों को मूल आकार व प्राकृतिक रंग से इतना मिला दिया जाता है कि बच्चा लपककर उसे उठा लेता है और पूछने लगता है कि, 'यह क्या है ?' यह जिज्ञासा ही उसके ज्ञान की जननी है। लखनऊ में विभिन्न पेशों के लोगों के छोटे-छोटे खिलौनों के सेट आदि बना करते हैं। मुझे अपने बचपन की याद है, मेरे लिये एक खिलौनों की पिटारी आई थी। उन छोटे-छोटे खिलौनों को जमाकर लगा देने से लखनऊ के नबाब का दरबार बन जाता था जिसमें नबाब मसनद लगाये बैठे दिखलाई देते, सामने दरबारी लोग रहते। दरबान या सिपाही दण्ड लिये खड़े रहते। एक ओर नृत्य और संगीत का आयोजन चलता रहता।

संगारिया में बाल संग्रहालय का एक कक्ष तैयार करते हुये मेरे एक मित्र ने, जो शिक्षा-शास्त्री हैं, खिलौनों से ही गाँव का दृश्य, रेलवे स्टेशन का दृश्य और मेले का दृश्य तैयार किया था और बच्चों ने उसे बेहद पसंद किया था।

डा० सत्य प्रकाश जी ने लिखा है :

"प्राय: देखा गया है कि बच्चे बूढ़ों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होते हैं। वे एक बार जो भी वस्तु देख लेते हैं उसे समझ-बूझ कर याद कर लेते हैं। यों भी देखा गया है कि कान की अपेक्षा आँख शिक्षा ग्रहण करने का अधिक सच्चा माध्यम है। शिक्षा-विशारदों का परीक्षण भी इस परिणाम पर पहुंचा है कि पढ़ी हुई या सुनी हुई बात की अपेक्षा देखी चीज़ ही बच्चों को अधिक आसानी से समझ में आ जाती है और देर तक याद रहती है। यही कारण है कि इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान की शिक्षा में दृश्य-सामग्री का प्रयोग सब कुशल अध्यापक करते हैं और इनके बिना इन विषयों का ज्ञान-दान अधूरा समझा जाता है। बाल संग्रहालय का भवन तो आकर्षक होना ही चाहिए साथ ही साथ उसमें सामग्री तथा सामग्री के प्रदर्शन के सभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यवधान भी बहुत आकर्षक होना चाहिए। इस संग्रहालय में सभी विषयों की जानकारी के लिये जो चीजें जुटाई जावें, वे सब बच्चों का मनोरंजन करने वाली होने के साथ-साथ ज्ञानोत्पादक भी होनी चाहिए।...इस देश में स्कूल न जाने वाले छोटे बच्चों के लिये संग्रहालय खोलने की नितान्त आवश्यकता है। इन संग्रहालयों में देश-विदेश के गुड्डे-गुड़ियों तथा नाना प्रकार के खिलौने होने चाहिए। खिलौनों द्वारा नित्य-प्रति काम में आने वाली वस्तुओं का प्रदर्शन होना चाहिए। साथ ही साथ भारत और उसके बाहर के महापुरुषों आदि के चित्र होने चाहिए तथा दैनिक जीवन में काम में आने वाली वस्तुओं के प्रदर्शन द्वारा ज्ञान-दान देने की सुविधायें होनी चाहिए।"

सौभाग्यवश देश में बाल-संग्रहालयों की उपयोगिता का अनुभव किया जा रहा है। भारत का प्रथम बाल संग्रहालय अमरेली (गुजरात) का है जो श्री प्रताप राय गिरधारी लाल मेहता के सद् प्रयासों द्वारा स्थापित हुआ था। उसके पश्चात् सांगानेर का बाल-संग्रहालय खोला गया जो देश में अपने ढंग का अनूठा संग्रह है। विज्ञान, देश और विदेश की विभूतियाँ, भारत के कला-तीर्थ व लोक-नृत्य आदि सभी विषयों को इसके कक्षों में स्थान मिला है। इसके एक पृथक् कक्ष में प्लैनेटेरियम नामक यंत्र रक्खा है। इस यंत्र को चालू करने पर बालक के आगे तारों से भरा नीला आकाश, पर्दे पर चल-चित्र की भांति आ जाता है। शिशु को खगोल विद्या का ज्ञान कराने के लिये इस यंत्र का आविष्कार किया गया है। श्री मेहता के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही आज राजस्थान सरकार ने अपने प्रान्त में छोटे-वड़े, पचास से भी अधिक संग्रहालयों की स्थापना की है।

लखनऊ में पं० मोतीलाल नेहरू स्मारक समिति के तत्वावधान तथा श्री चन्द्रभानु गुप्त के संरक्षण में एक अत्यन्त सुन्दर व सफल बाल-संग्रहालय चल रहा है। इसके स्वास्थ्य-कक्ष में विभिन्न रोगों और उनके बचाव आदि को चार्टों तथा अन्य वस्तुओं द्वारा समझाया गया है। खिलौनों के कमरे में देश और विदेश से चुने हुये खिलौने रक्खे हैं।

श्री स्वामी केशवानन्द ने भी भारत के विभिन्न प्रान्तों के खिलौनों का संकलन किया था। बनारस, लखनऊ, कृष्णनगर, कोण्डापल्ली व अन्य स्थानों के मिट्टी, कपड़ा, खाल, काष्ठ, पेपियरमेशी व धातु आदि के विविध सुन्दर खिलौने इस संग्रह में थे। स्वामी जी महाराज कुछ खिलौने चीन, ब्रह्मा, श्री लंका तथा अन्य देशों से लाये थे। संग्रहालय के कक्षों के पुनर्गठन के पूर्व यह सामग्री सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय के कक्षों में भी रखी थीं; धातु की वस्तुयें, धातु कक्ष में; काष्ठ की काष्ठ-कला विभाग में आदि—किन्तु उसी सामग्री से लगभग दो वर्ष पूर्व मैंने बाल-संग्रहालय का उद्घाटन सुश्री इन्दुबाला सुखाड़िया अध्यक्षा समाज कल्याण विभाग राजस्थान के कर-कमलों द्वारा कराया था। भारत में बाल-संग्रहालय के आन्दोलन के अग्रणी श्री प्रताप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राय गिरधारी लाल मेहता से इसमें परामर्श मिला और उन्हीं के द्वारा स्वामी जी महाराज ने बाल-संग्रहालय का कई सहस्र का अन्य उपयोगी सामान खरीदा। अब एक नये भवन में बाल-संग्रहालय की स्थापना हो गई है। उसे पं० जवाहरलाल नेहरू, आचार्य श्री विनोवा भावे, श्रीमती इंदिरा गांधी तथा श्रीमन्नारायण आदि नेताओं ने देखा है और उस संग्रहालय की भूरि-भूरि सराहना की है।

भारतीय खिलौनों को वर्गीकरण की दृष्टि से कई प्रकारों में बांटा जा सकता है। कुछ खिलौनों में विविध प्रान्तों के लोग दिखाये जाते हैं, जैसे बंगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठा आदि। उनकी वेशभूषा, उनके प्रान्त की परिचायक होती है। कुछ खिलौनों में विभिन्न पेशों के लोग दिखलाये जाते हैं। इस प्रकार के छोटे खिलौने लखनऊ में बनते हैं और बड़े कृष्णनगर, नागपुर तथा इन्दौर आदि में। इस प्रकार की मानवाकार मृण्मूर्तियों के कई चित्र श्री रुस्तम जे. मेहता ने अपने ग्रन्थ 'हैण्डीक्राफ्टस् एन्ड इंडस्ट्रियल आर्ट ऑफ इंडिया' में प्रकाशित किये हैं। श्री स्वामी केशवानन्द जी इन्दौर के किसी कारीगर की बनी हुई कथावाचक की एक सुन्दर और प्राणवान मानव-आकार की मृण्मूर्ति लाये थे। यह मूर्ति अब भी सुरक्षित है। वे इसी प्रकार की वीणा पाणि सरस्वती की भी एक अन्य सजीव मृण्मूर्ति लाये थे।

खिलौनों का दूसरा प्रकार देवी-देवताओं की मिट्टी की मूर्तियाँ हैं जिन्हें कुशल और अकुशल सभी कुम्हार बनाते हैं। इनमें लक्ष्मी और गणेश मुख्य हैं जिनकी मिट्टी की मूर्तियों की दीपावली के विशेष-पर्व पर पूजा की जाती है। बंगाल की दुर्गा और महाराष्ट्र की गणेश-मूर्तियों की चर्चा हम कर चुके हैं। कृष्ण, गोपियाँ, शिव व अन्य देवताओं की मूर्तियाँ भी यह कुम्भकार बड़े चाव से बनाते हैं और फिर उन्हें भांति-भांति के रंगों से रंगते हैं।

कुछ खिलौने ऐसे भी बनाये जाते हैं जिन्हें देख कर बच्चा हंसता-हंसता लोट-पोट हो जाता है, जैसे मोटे पेटवाले सेठ-सेठानी, लम्बी चुटिया वाले, माथे पर चन्दन की खौर लगाये, कृष्ण-वर्ण ब्राह्मण देवता आदि। कुछ खिलौनों में समूचे दृश्य ही मिट्टी में ढाल दिये जाते हैं, जैसे विवाह के दृश्य में वर-वधू तथा सखियाँ, मणिपुरी नर्तन में गोपिकायें तथा नृत्यरत श्रीकृष्ण, अपनी मंडली के साथ नाचते-गाते हुये चैतन्य महाप्रभु।

देश के कुछ प्रख्यात शिल्पियों ने मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस के मॉडल भी बनाने प्रारम्भ कर दिये हैं। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री सुधीर खास्तगीर ने मृत्तिका के माध्यम से कुछ प्रयोग किये हैं। श्री खास्तगीर द्वारा बनी गांधी जी की मूर्ति ग्रामोत्थान विद्यापीठ के पुस्तकालय में शोभित है। श्री श्रीधर महापात्र ने मिट्टी की बड़ी सुन्दर व सफल कला-कृतियाँ बनाई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देश के अनेक स्थानों में आज मिट्टी के खिलौने बनते हैं। उनके अतिरिक्त काष्ठ, पेपियरमेशी, धातु, चन्दन, काष्ठ व हाथीदांत के भी खिलौने बनते रहते हैं।

मिट्टी के कलापूर्ण खिलौनों के लिये पिछली शताब्दी से लखनऊ प्रख्यात रहा है। वहां दो अंगुल के छोटे खिलौनों से लेकर आदमक़द खिलौने तक बना करते हैं। लेखक को भली भांति स्मरण है कि उसके बचपन में मैनपुरी के राजा के यहां प्रति वर्ष श्रावण मास में लखनऊ के कोई उस्ताद आया करते थे। वे झाँकियाँ तैयार करते थे और प्रतिदिन एक नई आदमक़द मिट्टी की प्रतिमा तैयार करते थे। उसी दिन वह सूखती थी और उस पर रंग भी चढ़ाये जाते थे। उन मूर्तियों की सुन्दरता और सजीवता को देखने के लिये नित्य हज़ारों स्त्री-पुरुषों की भीड़ें आया करती थीं। लखनऊ का मृत्तिका-शिल्पी अब भी नवाब, दास-दासियां आदि बनाता है और वे अपने रंगों के कारण बड़े सजीव प्रतीत होते हैं। खिलौने पर सबसे पहले खड़िया से सफ़ेद रंग चढ़ाया जाता है और फिर केश, नेत्र, मांस-पेशियाँ आदि विविध रंगों से दिखलाई जाती हैं। जो कारीगर अपने फन में जितना उस्ताद होगा उसे अपनी कृति में स्वाभाविकता लाने की उतनी ही चिन्ता रहेगी। लखनऊ के मिट्टी के फल, सेव, अनार, अंगूर, बेर और केले आदि इतने सच्चे मालूम होते हैं कि बच्चे उन्हें ललक कर उठा लेते हैं। चिड़ियों, फलों और विभिन्न पेशे के लोगों के २४ खिलौनों के सेट की न केवल देश में मांग रहती है, वरन् उन्हें विदेश में भी भेजा जाता है। लखनऊ के शिल्पियों के कई घराने वंश-परम्परा से यह काम कर रहे हैं।

"भारतवर्ष में लखनऊ की मिट्टी की कला सर्वश्रेष्ठ रही है। नवाब वाजिद-अली शाह के समय स्वर्गीय श्री गज्जनलाल जी इस कला के विख्यात् कलाकार थे। उनके पुत्र श्री गुलाबदास, निज़ाम हैदराबाद के यहाँ से पेन्शन पाते थे। सर्वश्री छेदीलाल, हीरालाल, गंगाराम और भगवान दास जी लखनऊ के प्रसिद्ध कलाकारों में गिने जाते थे। लखनऊ में स्वर्गीय श्री मथुराप्रसाद जी ऐसे कलाकार हो गये हैं जो माडलों में नाजुकपन लाने में अद्वितीय थे। वे लंदन भी हो आये थे ? लखनऊ आर्ट स्कूल के मास्टर जानकीप्रसाद जी इस समय देश के एक नामी मिट्टी के खिलौने के कलाकार हैं।"

बंगाल में कलकत्ता, नूतनग्राम, शांतिनिकेतन, राज नगर और जय नगर आदि मृत्तिका शिल्प के मुख्य केन्द्र हैं जिनमें कृष्ण नगर का नाम अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है। कृष्ण नगर में मृत्तिका-शिल्पियों के परिवार हैं जो वंश-परम्परा से इस कला द्वारा जीविका उपार्जन कर रहे हैं। कृष्णनगर के एक शिल्पी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि एक बार बंगाल के गवर्नर का उस ओर दौरा लगा। जब वे उत्सुकता-वश कृष्ण नगर में बंगाल की इस लोक-कला को देखने गये तो उस शिल्पी ने देखते-देखते ही उनकी मृण्मूर्ति तैयार कर दी। गवर्नर उसके हस्तलाघव और कार्य-कुशलता को देखकर आश्चर्य से चकित रह गये और उन्होंने उसे पुरस्कृत किया। बंगाल की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत्तिका-शिल्प की लोक कला की अपनी प्राचीन परम्परा है, जिसका परिष्कृत रूप ही कृष्ण नगर की कला है। बंगाल में कपड़े, बेंत, पत्तियां, काष्ठ और मिट्टी से गुड़ियाँ बना करती थीं। अब केवल काष्ठ और मिट्टी का ही माध्यन शेष है। माता और पुत्र, कुमारियाँ, साधु लोग और अन्य भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने, बंगाल की रमणियाँ अपने बच्चों के खेलने के लिये घर पर ही बना लेती थीं। बहुधा यह खिलौने धूप में सुखाकर रंग लिये जाते थे। श्री अजितकुमार मुकर्जी ने इस लोक कला के सम्वन्ध में लिखा है :

"Endowed with traditional lore, the women of Bengal easily shape such dolls and toys by pinching with their hands the pure clay free from any other foreign element. To mark the eyes, the ornaments or the pointed breasts of the hand made figures, pellets are stuck into the body. Sometimes the apple of the eye or the ornaments of the limbs are shown either by perforation or by grooves."

कृष्ण नगर के शिल्पी एक आकृति ही नहीं वरन् समूचे दृश्यों को तैयार करते हैं। उनमें विविध प्रकार की कई सजीव आकृतियाँ दिखलाई जाती हैं। नृत्य में विभोर गौरांग महाप्रभु और उसके साध संकीर्तन करने वालों की टोलियाँ; गोपियों से घिरे कृष्ण; ढोल और वन्शी बजाते हुये संथाल युवक और थिरकती हुई आदिवासी तरुणियाँ; कृष्ण नगर के शिल्पियों के प्रिय विषय हैं। वे शिव और लक्ष्मी व सरस्वती की विशाल और मनोहारिणी मूर्तियां भी बनाते हैं।

"The potters of Krishan Nagar produce admirably modelled figures and toys, perfect in detail, and brilliant in colouring, the most popular representations being Lakshmi, the goddess of wealth, Ganesh with his elephant head, Saraswati with her veena, fishermen, peasents, farmers, shepherds, all in their typical costumes, however little that may be"

कृष्ण नगर ही क्या सभी स्थानों के शिल्पी एक ही प्रकार की वस्तु के बहुत से नमूने तैयार करने के लिए 'प्लास्टर आफ पेरिस' के साँचे तैयार करके रख लेते हैं। तैयार कला-कृति पर पहले खड़िया चढ़ा ली जाती है फिर उस पर नीला, हरा, लाल या वस्तु के सादृश्य के अनुकूल अन्य रंग चढ़ा लिया जाता है। रंग में गोंद मिला रहता है ताकि अधिक दिनों तक ठहरे। उसके पश्चात् मृत्तिका की उस मूर्ति पर वार्निश भी चढ़ाई जाती है जिससे उसमें एक चमक आ जावे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूना, नागपुर, इन्दौर तथा अन्य स्थानों में तैयार की जाने वाली विशाल-काय गणेश मूर्तियों की चर्चा की जा चुकी है। जिस समय शिल्पियों को अवकाश रहता है, वे अन्य देवी-देवताओं की भी बड़ी सुन्दर व भावमयी मूर्तियां बनाते रहते हैं। नागपुर इस प्रकार के शिल्प का एक बड़ा केन्द्र है और अभी कुछ दिनों पहले ही शासन ने एक बड़ी निधि स्वीकृत करके इस कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन भी दिया है।

१०. भारतीय काष्ठ-कला

भारतवासियों ने अपने उपास्य देवगण में एक शिल्पी देव, विश्वकर्मा की भी परिकल्पना को है। वही देवी-देवताओं के रथों का निर्माण करता है, उनके आभूषण गढ़ता है और वही उनके लिये शिल्प की सारी वस्तुयें तैयार करता है। वह देवगण का बढ़ई माना जाता है। रूपावलीय के शास्त्रकार के मानव-चक्षुओं के सम्मुख विश्व-कर्मा इस प्रकार साकार हुआ है—

"हे विश्वकर्मा ! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम प्रख्यात हो, तुम स्वतन्त्र हो, तुम महान् हो और न्यायपूर्ण हो। तुम्हारे भाल में पाँच तिलक लगे हुए हैं। तुम्हारे दस हाथ हैं। एक हाथ में पुस्तक है, दूसरे में कलम है, तीसरे में तलवार है, चौथे में कुंठारिका है, पांचवे में जुम्बीर है, छठे में प्याला है, सातवें में जलपात्र है और आठवें में माला है। तुम्हारे गले पर नागराज और एक पाश है। तुम्हारे भाल से दृढ़ता टपकती है, तुम्हारी मुद्रा से दया प्रकट होती है। तुम स्वर्णिम यज्ञोपवीत पहने हुए हो"[१]

काष्ठ-कला का शिल्पी विश्वकर्मा के प्रतीक-रूप में औज़ारों और अस्त्रों का अक्षत और चन्दन लेकर पूजा किया करता है।

काष्ठ-कला भारत की अत्यन्त प्राचीन कला है। कुछ विदेशी कला-समीक्षकों की राय है कि काष्ठ का 'फर्नीचर' के रूप में इतना उपयोग नहीं था जितना कि आज-कल हो गया है। घर अथवा बंगले में फर्नीचर का आधिक्य विदेशी शासकों की देन है। यदि उनकी यह राय सच भी समझ ली जावे तो इसका अर्थ यह नहीं कि प्राचीन भारत में गृह-शोभन या उपयोगिता के लिये काठ की सुन्दर व कलात्मक वस्तुयें न बना करती थीं। तत्कालीन साहित्य में विविध प्रकार की चौकियों व शैयाओं का उल्लेख आया है जिनसे प्राचीन भारत के भवन सुसज्जित रहते थे। खेती के औज़ार तथा रथ व गाड़ियों आदि तो काष्ठ-शिल्पी गढ़ते ही थे। उत्तर-मध्य-कालीन कोणार्क के मन्दिर के प्रस्तर-शिल्प में सूर्य के रथ के पहिये उत्कीर्ण किये गये हैं। उनकी खुदाई की बारीकी देखते ही बनती है। उनको किसी रथ के अलंकृत पहिये के आधार पर ही बनाया गया होगा अथवा उस प्रकार के कलापूर्ण रथों के पहिये उन दिनों बनते होंगे।

१. भारतीय संस्कृति और शिल्प-कला, डा० राधाकुमुद मुकर्जी, विश्ववाणी, संस्कृति अंक, पृष्ठ १४१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिमालय और उसके सघन वनों के कारण इस देश में लकड़ी का अभाव कभी नहीं रहा । इन वनों में सैकड़ों किस्म की, अच्छी से अच्छी लकड़ियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। कौन सी लकड़ी खुदाई के लिये उत्तम रहेगी, कौन सी मज़बूती के कारण भवन-निर्माण में अधिक उपयोगी है, इसका निर्णय अपने अनुभव के आधार पर कुशल काष्ठ-शिल्पी ही कर सकता है । एक समीक्षक की राय में हमारे देश में ईंधन की लकड़ियों को छोड़कर सोलह सौ प्रकार की लकड़ियाँ मिलती हैं ।

वाराह मिहिर की वृहत् संहिता में निम्नलिखित प्रकार की लकड़ियों का उल्लेख प्राप्त होता है—

आसन (चिरौंजी) स्पन्द, चन्दन, हरिड, देवदारु, तेदूं अथवा आबनूस, शाल, शीशम, सागौन, पद्मक और अंजन आदि । सुगन्धित वस्तुओं के लिये चन्दन और कर्पूर की लकड़ी को व्यवहार में लाया जाता है । चन्दन पर हम एक पृथक् लेख में चर्चा कर चुके हैं । द्वारों और चौखटों आदि में पहले शीशम की लकड़ी को ही अधिक व्यवहार में लाते थे । खेल के सामान तथा ब्लाँक्स के लिये बक्स-काठ अधिक उपयोगी समझा जाता है । विलायती लकड़ियों में मेहगनी, ओक, पाइन, ऐश, विलो आदि बहुत प्रसिद्ध हैं । इनमें स्पेनिश मेहगनी बहुत सुन्दर लकड़ी समझी जाती है और इसका बना हुआ सामान काफ़ी मूल्यवान भी होता है ।

श्रेष्ठ लकड़ी की पहचान यह है कि वह व्यवहार में तो मज़बूत हो ही, रंग में भी सुन्दर हो । उसमें रेशे अथवा गांठें न हों और कील ठोंकते समय फट न जाय ।

काष्ठ-शिल्पी बहुधा विविध प्रकार की लकड़ियों पर प्रयोग नहीं करते वरन् दो-तीन प्रकार की लकड़ियां चुनकर उन्हीं पर काम करते हैं। उन्हें उन लकड़ियों की मज़बूती का अन्दाज़ हो जाता है और उनका हाथ उस लकड़ी पर उसी प्रकार से अभ्यस्त हो जाता है। कुछ शिल्पी विशेष रंगों के लिये अलग-अलग प्रकार के काष्ठ का उपयोग करते हैं । यों तो सभी प्रकार के काठ पर रंग चढ़ाया जा सकता है किन्तु स्वाभाविक रंग ही अधिक पक्का और शोभायुक्त रहता है। कुछ विशेष रंगों के लिये यह लकड़ियाँ उपयोग में लाई जाती हैं ।

"सफेद रंग के लिये—मेरा, सेवै और बुक । पीले रंग के लिये—हलदू और कट-हल । लाल रक्ताभ रंग के लिए—लाल चन्दन, वर्मा और अंडमान का पाडौक और हिमालय का तुन । काले रंग के लिये—आबनूस (तेंदूं) । पीताभ गुलाबी रंग के लिये—सागौन, चम्पा, जारूल ।

अखरोट रंग के लिये—काश्मीरी अख़रोट । गहरे लाल रंग के लिये—शिशु, सीतसाल (काला रुख)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गहरे बैंगनी रंग के लिये—सीतसाल सफेद और काला मिश्रत तथा पीला और क:ला मिश्रित रंगों के लिये—सिरस और अंडमान का जेब्रा आबनूस ।"[1]

समस्त हस्त-उद्योगों में लकड़ी का उद्योग सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है । बढ़ई गाँव की एक प्राथमिक आवश्यकता है क्योंकि वही खेती के औज़ार, गाड़ियाँ, घरों की चौखटें आदि तैयार करता है । भारत में शायद ही ऐसा कोई बड़ा गांव होगा जिसमें बढ़ई लोगों के थोड़े न बहुत घर न हों । नगरों में काम अधिक होने से उनमें से बहुत से परिवार गांवों को छोड़कर चले गये हैं । कुछ ने शहरों में फर्नीचर के दूकान-दारों के यहाँ काम तलाश कर लिया है ।

अखरोट की लकड़ी का जितना सुन्दर काम काश्मीर में होता है, उतना किसी अन्य स्थान में नहीं होता । श्रीनगर काष्ठ-शिल्पियों का एक बड़ा केन्द्र है । अखरोट की लकड़ी, जो काश्मीर में बहुतायत से पाई जाती है, न अधिक कड़ी होती है और न मुलायम इसलिए उस पर कटाई बहुत सधे हुए हाथों से होती है । कटावदार पर्दे, संदूकची, छोटी मेजें, टेबिल-लैम्प, पुस्तकों के आधार, नाविक के साथ शिकारा, चिनार के सुन्दर पत्ते, सिगरेट-केश आदि हस्त-कला की विशेष वस्तुएं हैं जिनकी भारत के अलावा विदेशों में भी मांग बढ़ी है । काश्मीर वनों और सुन्दर वृक्षों का देश है । यहां की घाटी में अखरोट बहुतायत से उगता है । वनों में पहले अखरोट के इन वृक्षों का पोषण होता है और उनकी सुरक्षा की जाती है । जब वृक्ष का काठ पक जाता है तभी उसे काटा जाता है । काश्मीर में अखरोट की इस लकड़ी पर उभरा हुआ काम भी किया जाता है खुदाई भी । श्रीनगर के हज़ारों मुसलमान कारीगर इस शिल्प द्वारा उदर पालन कर रहे हैं । उनके हाथ के बने चिनार और कमल पैटर्न बड़े शोभायुक्त लगते हैं ।

उत्तर प्रदेश में काष्ठ-कला के मुख्य केन्द्र नगीना (बिजनौर) अलीगढ़, बरेली, बुलन्दशहर, लखनऊ व मैनपुरी आदि नगर रहे हैं । इन स्थानों में शीशम का ही अधिक व्यवहार होता है । नगीना और बरेली का फर्नीचर सारे उत्तर-प्रदेश में जाता है इन स्थानों में बनी हुई वस्तुएं काफी टिकाऊ और मजबूत रहती हैं किन्तु उन्हें दूसरे स्थान पर ले जाना कठिन ही होता है क्योंकि वे काफी भारी होती हैं ।

मैनपुरी तारकसी के काम के लिए प्रसिद्ध है और यह पुरानी लुप्त कला वहाँ फिर से पनपने लगी है । शीशम के तश्तरी, सन्दूकची के ऊपरी भाग अथवा खड़ाऊँ को लेकर उसके ऊपर बारीक खुदाई की जाती थी और उसमें बारीक कीलों के सहारे ही पतला तार भरा जाता था । आकृति में इतनी सूक्ष्मता रहती थी कि देखकर आश्चर्य होता है । नगीना में आबनूस का काम भी बहुत सुन्दर होता था । छोटी-छोटी गोल

१. विशाल भारत, कला अंक, (१९५१) पृष्ठ ७५.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेजों की बारीक खुदाई नगीना की विशेषता थी। बरेली में शीशम के बड़े-बड़े द्वार बना करते थे, जिनमें मूर्तियाँ उभरी रहती थीं।

योरोप के अनेक देशों में कठखुदाई की कला बहुत लोक-प्रिय हुई है। इसे 'वुड-कट' कहते हैं। शिल्पी लकड़ी का एक टुकड़ा लेकर उस पर पेन्सिल से रेखा-चित्र बनाता है और फिर एक तेज़ रुखानी से उस चित्र को रेखाओं को काट-काट कर तैयार करते हैं। यदि उस चित्र पर स्याही फेर दी जावे तो चित्र की रेखाएं स्पष्ट हो उठेंगी तथा बिना कटी हुई पृष्ठ-भूमि काली दिखाई देगी। काले रंग में से सफेद रेखा-चित्र उभर कर सामने आ जावेगा। रेखाओं में जितना प्रवाह और दृढ़ता होगी चित्र उतना ही सफल आवेगा। चित्रकार को रंगों की सहायता प्राप्त रहती है किन्तु कठखुदाई के चित्रकार के पास प्रकाश और रंगों का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए केवल काली व सफेद रेखाएं हो होती हैं। शिल्पी कभी कभी काले रंग में हल्के हल्के विन्दु बना देता है, जिससे प्रकाश का आभास दिखलाई देने लगता है। सूर्य को किरणों, जल को लहरों की चमक आदि दिखलाने के लिए काष्ठ-शिल्पी इसी प्रकार के विन्दु छांटता है।

भारतीय कला के पुनरुद्धार के बाद बंगाल चित्र-शैली के कलाकार आचार्य श्री नन्दलाल और उनके शिष्यों ने काष्ठ पर भी प्रयोग किए। उनमें रामेन्द्रनाथ चक्र-वर्ती को इस प्रकार के चित्र तैयार करने में विशेष ख्याति मिली। 'संथाल-परिवार', 'यमुना तट का आश्रम' आदि उनके कठखुदाई के ही सुन्दर व सफल रेखांकन हैं। इस माध्यम में तूलिका के स्थान पर तेज चाक़ू या रुखाई का व्यवहार करना पड़ता है इस लिए अधिक सावधानी भी बरतनी पड़ती है। यदि कोई रेखा अधिक कट थाय तो उसका प्रवाह और वेग तो नष्ट होता ही है, सारी कृति ही प्रभावहीन और व्यर्थ हो जाती है, इसलिए इसमें सधे हुए अभ्यस्त हाथों की जरूरत रहतो है। गुजरात के चित्र-कार श्री कनु देसाई ने भी कुछ 'वुड कट' तैयार किए हैं।

काष्ठ को मूर्ति के माध्यम रूप में भी अपनाया गया है। काष्ठ की प्रतिमाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ग्रीक इतिहासकार मेगस्थनीज ने लिखा है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र के काष्ठ-प्रासाद के स्तम्भों पर पक्षियों आदि की बड़ी ही मनो-हर मूर्तियाँ बनी हुई थीं। फाहियान, श्यूअम् चुआङ् और इत्संग आदि चीनी महापर्य-टकों ने अपने भ्रमण-वृत्तांतों में बुद्ध, बोधिसत्व और तारा देवी की मानवाकार से भी बड़ी काष्ठ प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। श्यूआन् चुआङ् के वर्णन के अनुसार पहिली बुद्ध-मूर्ति चन्दन काष्ठ की ही बनी थी। चीन में भी काठ की बुद्ध मूर्तियों का अधिक प्रचलन था। न्यूयार्क के एलिस बोनी कलैक्शन में बोधिसत्वों की दो काष्ठ-प्रतिमाएं हैं जिनका समय चन् वंश का काल (सन् ६१८-९०६) निश्चित किया गया है। चीन में अब भी बड़ी काष्ठ-प्रतिमाएं बनती हैं, जिनके ऊपर लाख चढ़ाकर चित्रकारी की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती है। इस प्रकार की दो काष्ठ-मूर्तियां सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं, जिनकी चर्चा हम 'चीन की कला' में कर रहे हैं। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय ही 'माता और पुत्र' की एक काष्ठ-प्रतिमा है, जिसका समय अत्यन्त पुराना माना गया है। यह सौराष्ट्र की एक अत्यन्त सुन्दर काष्ठ-मूर्ति है।

वर्तमान काल में भी काष्ठ की भावमयी मूर्तियां बनने लगी हैं। इसमें मुख, नेत्र और अन्य अवयवों की स्पष्टता और स्वाभाविकता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि भाव-व्यंजना और प्रतीकात्मकता की ओर—

पिछले अध्याय में हम मिट्टी के खिलौनों की चर्चा कर चुके हैं। लकड़ी के खिलौने भी मिट्टी के खिलौनों की भांति ही लोक-प्रिय हैं। इन खिलौनों में मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि रहते हैं किन्तु इनमें वस्तु के सादृश्य की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। हाथी हरा भी हो सकता है, लाल भी। खिलौने के चटक रंग बालक को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और उसकी कल्पना की उड़ान शुरू करते हैं।

बंगाल के लकड़ी के खिलौने लोक-कला के अन्तर्गत ही रक्खे जा सकते हैं। कालीघाट, बर्दवान और टिपेरा आदि में लकड़ी के हाथी, घोड़े और रथ आदि बनते हैं। उनमें नीचे पहिए लगा दिए जाते हैं। वहां लकड़ी की गुड़ियाएं भी बनती हैं जिनका पीछे का एक ओर सपाट रहता है और आगे मोटा सा कटाव करके वस्त्र, तथा मुख आदि अवयव चित्रित कर दिए जाते हैं।

उत्तर प्रदेश में बनारस या वाराणसी लकड़ी के खिलौनों का बड़ा केन्द्र है। लकड़ी के खिलौनों के यह दूकानदार विश्वनाथ मन्दिर की गली में बैठे रहते हैं। रंगीन पंछी, डिब्बियां और डिब्बे आदि की यात्री लोग खरीद करते रहते हैं। वाराणसी धातु के खिलौनों के लिए भी प्रसिद्ध है।

दक्षिण के कोण्डापल्ली के खिलौने अपनी सुन्दरता तथा रंगों के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। यह बहुत हल्के रहते हैं। यहां के काष्ठ-शिल्पी विष्णु के अवतार, मन्दिर, नृत्य-दृश्य, किसान जीवन के अंकन, अम्बारी सहित हाथी बनाते हैं जिनकी भारत ही नहीं अन्य देशों में भी मांग रहती है। विदेशी, कुटीर उद्योग के केन्द्रों से इन्हें बड़े चाव के साथ ले जाते हैं।

काठ की कला के मुख्य प्रकार पच्चीकारी, खुदाई व लुक का काम आदि हैं। काष्ठ कला में पच्चीकारी का एक विशेष मान है, जिसे वही कारीगर कर सकता है जिसने उसमें सतत् अभ्यास द्वारा दक्षता प्राप्त कर ली हो। पच्चीकारी से वस्तु के सौन्दर्य में वृद्धि होती है और उसका मूल्य बढ़ जाता है। कुछ कला-समीक्षक पच्चीकारी की कला को अति प्राचीन मानते हैं और उसकी प्रारम्भिक कड़ियाँ मोहेंजो दड़ो और हड़प्पा की प्राक्-ऐतिहासिक कला में खोजने का प्रयत्न करते हैं। कुछ इसका श्रेय मुगलों को देते हैं जिनके युग में वास्तु-कला में इस शिल्प का प्रवेश हुआ; संगमर्मर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रौर पाषाण में मूल्यवान ग्रौर साधारण रत्न जड़े गए। कुछ विद्वानों की राय है कि काष्ठ पर पच्चीकारी की यह कला फारस के शीराज नगर से भारत में सबसे पहले सिन्ध में ग्राई। इस शिल्प कला के प्रवर्तक पुरुषोत्तम हीरालाल, देवीदास ग्रौर बलीराम माने जाते हैं। यह तीनों कारीगर भाई थे। बाद में इसका प्रचार बम्बई ग्रौर सूरत में हुग्रा। इस कला के निष्णांत शिल्पियों में लालचन्द, मनोहरलाल व रतनचन्द ग्रादि का नाम लिया जाता है।[1] सर जॉन बर्ड वुड ने 'पैटर्न' की दृष्टि से पच्चीकारी के कई प्रकार बतलाए हैं जिनको टिनकोनिया गुल, चक्कर गुल, चौरस गुल ग्रौर एक दाना नाम दिए जाते हैं।[2] यदि इस तकनीकी बारीकी में न भी जाया जाय तो भी पच्चीकारी के मुख्य दो प्रकार माने जा सकते हैं। एक प्रकार में मेज, सन्दूकची या तश्तरी ग्रादि पर ग्रन्य प्रकार के काष्ठ, हाथीदात, ग्रस्थि, शंख या धातु के टुकड़े को पच्चीकारी में जड़ा जाता है। शंख, सीपी, हाथीदात या ग्रन्य वस्तु को, जिसकी पच्चीकारी करनी होती है फूल, पत्ती या ग्रन्य ग्राकृति के रूप में काट लिया जाता है। काष्ठ की वस्तु में तराशी करके उतना स्थान रिक्त रक्खा जाता है। उसमें लाख द्वारा वह टुकड़ा जमा दिया जाता है। दूसरी प्रकार की पच्चीकारी 'तारकशी' कहलाती है। इसमें ग्रत्यन्त सूक्ष्म, बारीक डिजायन को रेखा-चित्र की भांति काष्ठ पर उतार लिया जाता है। यह कार्य सरल नहीं है। इन शिल्पियों की वस्तु की 'तरह' पर ही दृष्टि टिक नहीं पाती ग्रौर न यह समझ में ग्राता है कि इतना बारीक काम कैसे किया गया? डिज़ायन या ग्राकृति पर पतली कीलों के सहारे पीतल का तार जड़ा जाता है। उत्तर प्रदेश का मैनपुरी नगर इस 'तारकसी' का बड़ा केन्द्र था।

पंजाब में जालन्धर ग्रौर होशियारपुर पहले प्रकार की पच्चीकारी के प्रख्यात् केन्द्र रहे हैं।

इन स्थानों के शिल्पी शीशम ग्रौर देवदार ग्रादि पच्चीकारी (inlaying) करते हैं। इस कार्य के लिए सभी स्थानों के शिल्पी (काश्मीर को छोड़कर) शीशम को ग्रधिक पसन्द किया करते हैं। होशियारपुर की बनी हुई शीशम की एक ऐसी ही सुन्दर प्लेट सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय के ग्राधुनिक कला-कक्ष में सुरक्षित है।

भारत में काष्ठ पर सबसे सुन्दर पच्चीकारी मैसूर में की जाती है। मैसूर में ग्राबनूस पर भी हाथीदात की पच्चीकारी होती है। टीपू सुल्तान के मक़बरे के द्वार पर ऐसा ही काम है। श्री रुस्तम जे. मेहता ने लिखा है।

"The designs adopted at Mysore are realy artistic and the Craftsmenship excellent, perhaps superior to that of the ivory workers of Hosiarpur and Jallunder. The Mysore work has a

१. हैएडीक्राफ्ट्स एएड इन्डस्ट्रियल ग्रार्ट ग्राफ इंडिया, पृष्ठ ६४.

२. वही पृष्ठ ६४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

simple chaste dignity, the surface of the article being decorated never overloaded with ornamentation."

मैसूर की हाथीदात की पच्चीकारी की कला कितनी प्राचीन है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मैसूर के नृपतियों ने अन्य चारु-शिल्प और कारु-शिल्प की भांति इसे प्रोत्साहन दिया। सन् १९०२ ई० को दिल्ली की कला-प्रदर्शनी में मैसूर का एक 'कैबिनेट' आया था जिस पर हाथीदात की पच्चीकारी की गई थी और विष्णु आदि देवगण अंकित किए गए थे। उसका मूल्य उस सस्ते समय में भी बारह सौ रुपये कूता गया था। आधुनिक समय में लकड़ी पर हाथीदात के टुकड़े जड़कर विविध आकृतियाँ तथा दृश्य तैयार किए जाते हैं। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में महाराज मैसूर का एक काष्ठ-चित्र पच्चीकारी का एक श्रेष्ठ नमूना समझा जा सकता है जिसमें महाराज के शरीरांग और आभूषणों के स्थान पर हाथीदात जड़ा गया है। हाथीदात पर, (आकृति में स्पष्टता आने के लिए) रंगीन रेखाएं भी खींची गई हैं। संग्रहालय की एक अन्य कला-कृति, बीन की बजाकर सर्प को नचाता हुआ सपेरा भी इसी शिल्प का नमूना है।

उत्तर प्रदेश में बिजनौर के निकट नगीना नामक कस्बा है। नगीना के बढ़इयों को कुछ परिवार, वंश-परम्परा से काष्ठ की दस्तकारी, विशेष-रूप से पच्चीकारी द्वारा अपना जीवन यापन कर रहे थे। वहां आबनूस की लकड़ी पर हाथीदात की पच्चीकारी की जाती थी। रंग के विरोधाभास के कारण काले रंग पर सफेद रंग खिल उठता था। सन् १९०२ ई० की कला-प्रदर्शनी में नगीना का लगभग दो सहस्त्र रुपयों के मूल्य का पर्दा रक्खा गया था।

आबनूस का काम मुंगेर में भी होता था। मुंगेर के आबनूस के बक्से, छोटी मेजें और दैनिक उपयोग की पच्चीकारी की अन्य वस्तुयें दूर-दूर तक भेजी जाती थीं। सर जार्ज व्हॉट ने लिखा है कि इस प्रकार की वस्तुयें औरंगाबाद और रत्न गिरि में भी बना करती थीं।[1] दक्षिण भारत में पच्चीकारी के शिल्पियों के कुछ परिवार विज़गापट्टम में भी रहते थे किन्तु वे चन्दन की छोटी छोटी वस्तुयें बना कर उन पर कछुओं की खपड़ी या सीपी से पच्चीकारी किया करते थे।

शिल्पी पच्चीकारी से पहले एक खाका तैयार करता है, जिसमें वह कटाव अथवा स्थान दिखला लिया जाता है, जिसमें उसे पच्चीकारी करनी होती है। फिर हाथीदांत, सीपी, धातु या अन्य काष्ठ का उसी के बराबर टुकड़ा काटता है। यह कटाव बड़ी कुशलता से किया जाता है क्योंकि ज़रा सा बड़ा या छोटा हो जाने के पश्चात् वस्तु के रिक्त छोड़े हुये स्थान में वह पूरा नहीं बैठता और वस्तु की शोभा नष्ट हो जाने का भय बना रहता है। कटे हुये टुकड़े या डिज़ायन को रिक्त छोड़े हुये

१. इंडियन आर्ट एट दिल्ली, पृष्ठ १४१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान पर लाख या अन्य किसी मसाले से चिपका दिया जाता था। बाद में ऊपर लगी लगी हुई लाख एक तेज चाकू से साफ कर दी जाती थी। फिर वस्तु-विशेष पर 'पॉलिश' कर दी जाती थी जिससे उस पर एक चमक आ जाती थी।

काष्ठ पर धातु, विशेष रूप से पीतल की पच्चीकारी यों तो पंजाब में होशियारपुर और जालन्धर, दोनों स्थानों में होती थी किन्तु चिनौट (पंजाब) का काम सबसे अच्छा होता था। चिनौट का काष्ठ भी कुछ अच्छा होता था।

लेखक का जन्मस्थान मैनपुरी नगर 'तारकशी' के लिए बहुत प्रसिद्ध रहा है। मैनपुरी में काष्ठ-शिल्पी यह काम वंश-परम्परा से कर रहे थे। तारकशी की खड़ाऊँ बहुत दूर दूर जाती थीं। दुर्गा मिस्त्री और मदन मोहन मिस्त्री इसी घराने के कुशल शिल्पी थे। दुर्गा मिस्त्री के हाथ की बनी हुई शीशम की तारकशी की हुई मेजें, मन्दिर का मॉडल, दावात आदि सन् १८९३ ई० की जयपुर प्रदर्शनी में मि० ग्राउस सी० आई० ई० द्वारा भेजी गई थीं। समीक्षकों ने इन वस्तुओं की सराहना भी की थी।[1] दिल्ली की कला प्रदर्शनी में कन्हैयालाल मदन मोहन के हाथ की बनी तारकशी की मेज रक्खी गई थी और वह पुरस्कृत भी हुई थी। ग्राउस महोदय को इस लुप्त होती हुई कला में बड़ी दिलचस्पी थी। उन्होंने अपने समय के प्रसिद्ध पत्र 'इण्डियन आर्ट एण्ड इन्डस्ट्री' में इस विषय पर सचित्र लेख भी प्रकाशित कराया था। प्रोत्साहन के अभाव में यह कला नष्ट होती गई। अब पिछले कुछ वर्षों से इसे फिर जाग्रत करने का प्रयास किया जा रहा है।

काठ पर लाख, रंगीन चपड़े या अन्य वस्तुओं से लेप कर दिया जाता है और फिर उस पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती है। काठ की वस्तु पर लाख की विविध रंगों की तहें चढ़ाकर उनको रुखाई से तराशा जाता है जिससे विभिन्न रंग उभर कर दिखलाई देने लगते हैं। इस काम को 'लुक' कहा जाता है। लुक का काम भारत के लगभग सभी प्रान्तों में किया जाता है। इस शताब्दी के प्रारम्भ से फिरोजाबाद की काँच की चूड़ियों का प्रचार बढ़ गया है अन्यथा इससे पहले सारे भारत में लाख की चूड़ियाँ ही चलती थीं। चपड़ा मध्य प्रदेश और बंगाल में तैयार किया जाता है। लाख के अलावा अन्य वस्तुओं को भी इस काम में लाया जाता है।

"राजपूताने के शाहपुरे नामक क़सबे में शिल्पियों के कई घर हैं। वे ऊँट और गैंडे की खाल की बनी हुई ढ़ालों और तलवार आदि शस्त्रों के म्यानों पर लुक का काम करते हैं। इन लोगों की कारीगरी का ढंग निराला है। रंगीन लाख से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। वे पेड़ों से निकली हुई राल या गोंद के समान अनेक चीजों को

---

१. मेमोरियल्स ऑफ जयपुर एक्ज़ीबिशन, थामस एच० हैन्डले.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिश्रित करके कई प्रकार की वार्निश तैयार करते हैं। इस वार्निश में तरह-तरह के रंग मिलाकर वे रंग-बिरंगे लुक का काम करते हैं। ...मद्रास प्रान्त के गंजाम, कृष्णा और कर्नूल जिलों के कुछ कारीगरों की प्रथा इससे भिन्न है। वे हरिण की खाल के टुकड़ों को पानी में भिगोकर तथा उन्हें उबाल-छान कर एक तरह का सरेस तैयार करते हैं। इस सरेस में एक प्रकार की पिसी हुई राल पानी के साथ मिलाकर एक लेई सी तैयार करते हैं। इस लेई में मिट्टी की हांडी की टुकड़ियों की महीन चूर तथा घीग्वार का रस मिलाकर एक लेप बनाया जाता है। जिस चीज़ पर चित्रकारी करनी होती है, उसे साफ़ करके कूंची के द्वारा इसी लेप से चित्रकारी की जाती है। इसमें चित्र की रेखायें उभरी हुई रहती हैं।"[१]

लुक का काम काष्ठ और पेपियर मेशी दोनों की वस्तुओं पर किया जाता है। इसका उद्देश्य पात्र या वस्तु को अधिकाधिक सुन्दर बनाना है। लुक का काम चीन और जापान में सबसे अच्छा होता है। इन देशों की लुक की कला के कुछ सुन्दर नमूने सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं जिन पर हम अगले अध्यायों में चर्चा कर रहे हैं।

लुक का काम भारत के लगभग सभी प्रान्तों में होता है। उत्तर-प्रदेश में आगरा, बनारस, फ़तहपुर, लखनऊ, मिर्ज़ापुर, सहारनपुर, अमरोहा, राजस्थान में बीकानेर, इन्द्रगढ़, जयपुर, जोधपुर, मारवाड़, कोटा, बूँदी, टोंक, अलवर; मध्यप्रदेश में शिवपुर और रीवाँ, पश्चिमी बंगाल में मुर्शिदाबाद, इलम बाज़ार आदि तथा पंजाब में फिरोज़पुर और होशियारपुर लुक की कला के प्रसिद्ध केन्द्र रहे हैं।

दक्षिण भारत में लुक का काम मैसूर, चेन्ना पट्टनम्, बैंगलोर, मदुराई, हैदराबाद और रायचूर आदि अनेक स्थानों में होता है।

काठ की सुरक्षा और वस्तु की सुन्दरता दोनों ही दृष्टियों से लुक के काम का महत्व है। यों कुछ स्थानों के कारीगर काठ की वस्तु पर किसी भी रंग की 'जमीन' तैयार करके उसके ऊपर फूल-पत्तियों, पक्षियों या अन्य प्रकार का रंग-बिरंगा सुशोभन करते हैं। उसमें भी वे लाख मिश्रित रंगों का ही प्रयोग करते हैं। किन्तु इस प्रकार का काम स्थायी नहीं होता। लुक का कारीगर सबसे पहले वस्तु को खराद पर चढ़ा कर साफ़ कर लेता है और फिर उसके ऊपर तेजी से लाख की रंगीन बत्ती घिसता है। घिसाई से जो गर्मी पैदा होती है, उससे लाख पिघल उठती है और वस्तु के ऊपर उसका रंगीन लेप चढ़ जाता है। फिर तेल लगाकर काठ को मला जाता है। इसी प्रकार शिल्पी एक-एक करके कई रंगों की तह जमाता चला जाता है। शिल्पी को जो तरह

---

१. विशाल भारत, कला अंक, पृष्ठ ६६.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या डिजायन बनानी होती है उसका खाका उसके पास तैयार रहता है। कारीगर खाके के डिजायन के अनुसार, रुखानी से एक के बाद दूसरे स्तर पर रेखायें खोदता चला जाता है, इस प्रकार काठ की वस्तु पर चढ़ाये गये सारे रंग लाह की तहों में से प्रकट हो जाते हैं और पात्र पर खुदाई की हुई बहुरंगी आकृति स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगती है। यह कार्य बहुत कठिन समझा जाता है क्योंकि इसके लिए बहुत सिद्धहस्त शिल्पी की आवश्यकता रहती है। इस कारीगर का हाथ इतना सध जाता है कि वह रंग की जिस तह को कुरेदता है, उसी की रेखायें झलक उठती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कक्ष का कारु-शिल्प : विवरण

ई. १—हाथीदांत का भारतीय शिल्प

इस संग्रहालय में हाथीदांत की नई और पुरानी पचपन कला-कृतियाँ हैं जिसमें मुख्यत: जयपुर और मैसूर की कला का समावेश हुआ है। आधुनिक कारु-शिल्प का वर्गीकरण प्रान्तों के आधार पर किया गया है।

मैसूर के हाथीदांत के पुराने नमूनों में पिछली शताब्दी की, हाथियों की पंक्ति एक विशेष उल्लेखनीय वस्तु है, जिसमें हाथियों के ऊपर महावत अंकुश लिए हुए बैठे हैं। हाथियों को लकड़ी के कटे हुए गट्ठे ले जाते हुए दिखलाया गया है। कारीगरों ने इस शिल्पाकृति में विलक्षण दक्षता प्रदर्शित की है। उसने एक-एक बारीकी को बड़ी सफाई के साथ दिखलाया है। हाथियों के पुल जयपुर और मैसूर दोनों केन्द्रों में बनाये जाते थे। इस कक्ष में इस ढंग की तीन शिल्पाकृतियाँ हैं।

मैसूर की बनी हुई अन्य कृतियों में हाथीदाँत की दो अत्यन्त कलापूर्ण डिब्बियाँ हैं। उनमें से एक में ढक्कन और गोलाई में हाथियों के दृश्य उभार कर तैयार किए गए हैं। हाथी अपनी हथिनियों और बच्चों के साथ बन में विहार करते हुए दिखलाई देते हैं। ऐसी ही एक अन्य गोल डिबिया में बन्दरों के दल बड़ी स्वाभाविक मुद्रा में दिखलाये गये हैं। मैसूर की हाथीदांत की कलात्मक वस्तुओं में बड़े और छोटे मनकों की मालाओं और पतले पतरे से तैयार किये गये सुन्दर हल्के परतों के अतिरिक्त एक छड़ी भी है। हाथीदाँत की इस कलापूर्ण छड़ी की विशेषता उसकी मूंठ है, जिस पर एक रूपसी रमणी को वस्त्र से बंधा दिखलाया गया है।

स्त्री का अंग-प्रत्यंग लावण्ययुक्त है। हाथीदांत की गोल डिब्बी या पतरा तैयार करने में नीचे का हिस्सा काम में लाया जाता है, जोकि मोटा और अपेक्षाकृत महंगा होता है। उसे तराश कर गोलाई लाई जाती है। उसमें फिर आकृतियों को उभारा जाता है। इस प्रकार की श्रम-साध्य सामग्री का महंगा होना स्वाभाविक है।

जयपुर का हाथीदांत का सबसे सुन्दर नमूना अलंकार-मंजूषा है। हाथीदांत की बहुत ही पतली जाली तैयार कर ली जाती है और फिर उन टुकड़ों को रंगकर लकड़ी की सन्दूकची में जड़ दिया जाता है। इस अठपहलू अलंकार-मंजूषा में ढक्कन और सभी ओर इसी प्रकार की जाली लगाई गई है। इसके हाथी दांत के खुरे शेर की आकृति के हैं। बैलों को लेकर खेत की ओर जाता हुआ वृद्ध किसान, त्रिभंग मुद्रा में वंशीवादन करते हुए कृष्ण, अलंकृत पाये, नक्काशीयुक्त पूरा हाथी-दांत, बाजूबन्द और डिब्बियाँ आदि वस्तुएं इस कक्ष की शोभा हैं।

ई. २—बीदर के धातु-पात्र

काली धातु पर चांदी की पच्चीकारी के बीदर पात्रों की प्राचीन परम्परा की चर्चा हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं। संग्रहालय के इस कक्ष में हुक्के, तश्तरियाँ और प्याले आदि तेरह वस्तुएँ हैं जिनको दैनिक उपयोग के लिए तैयार किया गया होगा। पात्रों के ऊपर फूल-पत्तियों की वे तरहें हैं जो मुस्लिम वास्तु में बहुतायत से दिखलाई देती हैं। एक छोटी तश्तरी में बीदर की इतनी बारीक दस्तकारी हैं कि बारीकी पर आश्चर्य होता है। बीदर के यह समस्त धातु-पात्र शोभायुक्त हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ई. ३—चन्दन का काष्ठ-शिल्प

मैसूर, ट्रावनकोर, मदुराई और कनारा आदि स्थानों की चन्दन की खुदाई की वस्तुओं की चर्चा हम सम्बन्धित लेख में कर चुके हैं जिनमें पौराणिक कथाओं को उभार देकर अर्ध-चित्र की भांति तैयार किया जाता है। इस प्रकार की कोई उत्कृष्ट कलाकृति इस संग्रहालय में नहीं है। इस कक्ष में चन्दन की छोटा सन्दूकची, तश्तरी, कृष्ण की चन्दन मूर्ति व पंखे आदि अठारह वस्तुएँ हैं। चन्दन की लकड़ी के आध इन्च से भी छोटे ऊँटों के शरीर के एक-एक अंग को बड़ी सफाई के साथ तराशा गया है। मैसूर के चन्दन के शिल्प की एक विशेषता लकड़ी के ऊपर सधे हुए हाथ का कटाई का काम है जोकि इन सामान्य वस्तुओं में भी दिखलाई देती है।

ई. ४—काश्मीर की पेपियरमेशी

स्वामी केशवानन्द जी ने काश्मीर की पेपियरमेशी के ६८ पुराने और नये नमूने संग्रह किये हैं। काश्मीर की पेपियरमेशी के पुराने नमूने दुर्लभ हैं किन्तु इस संग्रह के कलमदान, फूलदान आदि कुछ नमूने गत शताब्दी के जान पड़ते हैं। कागज की कुट्टी के इस हस्त-शिल्प में फूलदान, तश्तरियाँ, डिब्बियाँ, व कलमदान आदि वस्तुएँ हैं जिनके ऊपर गुलाब, केशर व अन्य फूलों की तरहों से अलंकरण किया है। कुछ वस्तुओं पर सोने और चाँदी का भी काम है। जैसी कि सम्बन्धित लेख में चर्चा की जा चुकी है, काश्मीर में टीन और लकड़ी के ऊपर भी पालिश की जाती हैं जिससे वे वस्तुएँ कागज-कुट्टी की प्रतीत होने लगती हैं। संग्रहालय की इन वस्तुओं में काठ की डिबियाँ व फाइल आदि हैं।

ई. ५—जयपुर की मीनाकारी

जयपुर में सोना, चाँदी, ताँबा और पीतल के पात्रों को शोभायुक्त बनाने के लिये उन पर मीनाकारी का काम किया जाता है। इस संग्रहालय में जयपुर की मीनाकारी की अनेक वस्तुयें हैं जिन पर कच्ची और पक्की मीनाकारी, दोनों प्रकार का काम किया गया है। कच्ची व पक्की मीनाकारी का अन्तर हम सम्बन्धित लेख में स्पष्ट कर चुके हैं। संग्रहालय की मीनाकारी की लगभग सभी वस्तुयें आधुनिक हैं। उनमें तश्तरियों, फूलदानों व डिबियों की संख्या अधिक है। शेष वस्तुओं में मीनाकारी का सुन्दर मयूर, वर, मधू व अन्य कलात्मक शिल्प-कृतियाँ हैं।

ई. ६—सींग की कारीगरी

सींग की वस्तुओं का मुख्य केन्द्र कटक है। कटक की बनी हुई ४५ विविध प्रकार की वस्तुओं से संग्रहालय के इस आधुनिक कला-कक्ष में इस शिल्प का प्रतिनिधित्व हुआ। फन उठाये बैठे हुए बड़े-बड़े सर्प, सींग की तलवारें, चिड़ियाँ और लम्बी गर्दन के सारस अपनी सुन्दर बनावट से दर्शक का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। सींग का झूला, शिकारी और पक्षी, हवाई जहाज आदि वस्तुयें बालक बड़े चाव से देखते हैं।

ई. ७—नारियल की कलात्मक वस्तुयें

नारियल की कला के यह २७ नमूने, मैसूर, बंगाल और तामिलनाड में बने हुए हैं। इस सामग्री में फूलदान, चाय का कप और तश्तरी, दवात और अन्य विविध प्रकार की वस्तुयें हैं। एक शिल्पाकृति में तीन लकड़ी के छोटे-छोटे हाथी एक नारियल को अपनी पीठ पर लिए हैं। इस शो-केस में ही पान के आकार की एक डिब्बी है, जिसमें किसी जैन तीर्थंकर की एक छोटी सी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तस्वीर है। नारियल के खाली फल साबित पड़े हैं किन्तु वे फूल से भी हलके हैं। नारियल की खोपड़ी जैसी व्यर्थ की वस्तु से बड़ी सुन्दर वस्तुयें बनाई गई हैं।

ई. ७—मृत्तिका-शिल्प

कक्ष के मृत्तिका-शिल्प के पुराने नमूनों में जयपुर और बीकानेर के फूलदान व सुराहियाँ हैं। जयपुर के पात्र गत शताब्दी के हैं और उन पर हरे और नीले रंग का फूल-पत्तियों का अलंकरण है। एक मृत्तिका-पात्र के ऊपर देवी तथा शिव के चित्र हैं। बीकानेर के पात्रों के लाल रंग के ऊपर सुनहली पॉलिश चढ़ाई गई है। एक पृथक् शो-केस में खुर्जा व ग्वालियर के चीनी मिट्टी के पात्र हैं। दिल्ली की काली मिट्टी की वस्तुयें अत्यन्त सुन्दर हैं। काले फूलदानों के ऊपर रंग-बिरंगे फूल ऐसे लगते हैं मानों पत्थर पर रत्नों से पच्चीकारी की गई हो।

बम्बई की बनी हुई मिट्टी की वस्तुओं में प्याले, दीपाधार, तश्तरियाँ व अन्य वस्तुयें हैं। उनको लाल रंग से रंग दिया गया है और फिर काले रंग से सुशोभन किया गया है।

राजस्थान के नोहर नामक स्थान के मृत्तिका-शिल्प में तश्तरियाँ प्यालियाँ व अन्य उपयोगी वस्तुयें हैं। इसकी मिट्टी कुछ सफेदी लिये हुये है और उस पर अलंकरण नहीं हैं। चुनार के मिट्टी के सामान में कलमदान और फूलदान अधिक हैं जिनके ऊपर गहरे कत्थई रंग की चिकनी पॉलिश है।

ई. ९—भारतीय मूर्तियां और खिलौने

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में शुंग, कुषाण और गुप्तकालीन मृण्मूर्तियों से लेकर आधुनिक समय में लखनऊ व कृष्ण नगर में तैयार होने वाले खिलौने तक हैं। अब तक यह सब सामग्री इस संग्रहालय में ही थी किन्तु सन् १९५८ ई० में बाल-संग्रहालय का पृथक् रूप से श्री गणेश हो जाने के कारण अधिकांश खिलौने व मिट्टी के फल आदि वहाँ स्थानान्तरित कर दिये गये।

प्राचीन मृण्मूर्तियाँ में जिनकी कुछ संख्या ८४ है, अधिकांश राजघाट की खुदाई की हैं।

राजघाट की इन मृण्मूर्तियों में शुंग और कुषाण-कालीन यक्ष-मस्तक अधिक हैं और गुप्त-कालीन मूर्तियों में खण्डित नारी-मस्तक अधिक हैं। लगभग सभी शिल्पाकृतियाँ टूटी हुई हैं। एक भग्न मृण्मूर्ति में माता अपने शिशु को गोद में लिये हुये है। किसी स्त्री के सिर पर मटकी है। इन समस्त मृण्मूर्तियों में सौन्दर्य और रूप-सज्जा की भावना स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। रमणियों के केशों में लहरिये, छल्लेदार बाल, बालों का फूला हुआ जूड़ा, पट्टेदार केश, बालों का जटा-मुकुट, सीधी माँग, पीछे की ओर किया हुआ जूड़ा, कन्धों पर लहराते केश-पाश आदि दिखलाई देते हैं। उन केशों में मोतियों की लड़ियाँ, मणियां, रत्न, माल्य, बल-पार्श्व आदि आभूषण दिखलाई देते हैं। किसी-किसी स्त्री के सिर पर मुकुट और उष्णीष भी रक्खा है। उनके कानों में मणि-कुण्डल, श्रीखल, कर्णिक और कर्णफूल आदि आभूषण हैं, जिनको प्राचीन भारत की रमणियाँ बड़े चाव से पहना करती थीं। गले में नाभि तक लटकती हुई माला प्रलम्बिका, मुक्ता-हार और मालायें दिखाई पड़ती हैं। गुप्त-कालीन शिल्प की सभी विशेषतायें और लाक्षणिकतायें इन मृण्मूर्तियों में झलकती हैं।

राजघाट की इन मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त १४ मृण्मूर्तियाँ मध्यकालीन जान पड़ती हैं। यह किस स्थान की हैं, यह निश्चय नहीं हो सका है किन्तु वेश-भूषा और सिर के मुकुट आदि पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुस्लिम प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इन मूर्तियों की संख्या चौदह है किन्तु उनमें स्त्रियों के मस्तक-भाग ही अधिक हैं। इनका केश-विन्यास अत्यंत मनोरंजक है। एक स्त्री ने अपने सिर के बालों को शिव के जटा-मुकुट की भांति लपेट लिया है। बालों के ऊपर अर्ध-चन्द्र भी है। कुछ मृण्मूर्तियों में स्त्रियाँ पत्र-मुकुट धारण किये हुए हैं जैसे कि दक्षिणापत्य की नटराज की कांस्य-मूर्तियों में दिखलाई देते हैं। एक स्त्री सिर पर लम्बी टोपी पहने है। वह बिलकुल वैसी ही है जैसी कि आजकल फर्रुखाबाद के साध-सम्प्रदाय के लोग लगाये दिखलाई देते हैं।

मुग़ल या मुस्लिम स्त्रियों के सिर पर जैसा ताज दिखलाई देता है लगभग उसी प्रकार का ताज या मुकुट इन स्त्रियों के सिर पर लगा हुआ है। बेगमों जैसी पत्तेदार नुकीली टोपी भी किसी-किसी स्त्री के सिर पर लगी हुई दिखलाई देती है।

लाल रंग की तीन मृण्मूर्तियां बंगाल की जान पड़ती हैं जिनमें भिन्न-भिन्न मुद्रायें प्रदर्शित की गई हैं। यह समस्त मृण्मूर्तियाँ पृथक् कक्ष न होने के कारण इस समय पाषाण-प्रतिमाओं के साथ ही एक शीशे के शो-केस में रक्खी हुई हैं।

नेपाल भी अपने मृत्तिका-शिल्प के लिए प्रख्यात् रहा है। एक काठ के लम्बे चौखटे में छः मृत्तिका-फलक है जिनमें गणेश, वरुण आदि हिन्दू देवता तथा तारा व बोधिसत्व आदि दिखलाये गये हैं। यह काम साँचे अथवा ठप्पे का नहीं जान पड़ता क्योंकि आकृतियों में इतनी अधिक गहराई दी गई है कि वह साँचे की ढलाई में आ सकना सम्भव नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि इस मृत्तिका शिल्प को पहले पतली नहन्नी, तेज़ चाकू व अन्य हथियारों से तैयार करके बाद में पकाया गया है। इसी प्रकार की नेपाल की एक अन्य मृत्तिका-मूर्ति में भगवान् बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए दिखलाये गये हैं। श्वेत खड़िया मिट्टी से तैयार की हुई एक सुन्दर मूर्ति बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की है। नेपाल में चीनी मिट्टी का भी काम होता है। वहां के दो सुन्दर हाथी जिनके ऊपर फूलों की रंगीन डिजायन की झूलें पड़ी दिखलाई गई हैं, इस शिल्प के श्रेष्ठ नमूने हैं।

मृत्तिका-शिल्प के आधुनिक नमूनों में कथा-वाचक और वीणापाणि सरस्वती की इन्दौर की बनी हुई आदम कद मूर्तियां हैं। रूप, वस्त्र, परिधान व अलंकार सभी दृष्टियों से यह दोनों मूर्तियाँ भारतीय मृत्तिका-शिल्प के सुन्दर तम नमूनों में रक्खी जा सकती हैं। अन्य कृत्तियों में माता और शिशु, बुद्ध, सरस्वती व लक्ष्मी आदि की मूर्तियाँ हैं।

ई. १०—भारतीय काष्ठ-शिल्प

संग्रहालय में काष्ठ-शिल्प के नमूनों में भारतीय, नेपाली, तिब्बती, ब्रह्मदेशीय, श्रीलंका के, चीन के तथा अन्य योरोपीय देशों की सुन्दर कला-कृतियाँ हैं, जिन्हें विभिन्न देशों के शिल्प के साथ संग्रहालय के पृथक् कक्षों में सजाया गया है। कोण्डापल्ली व अन्य स्थानों के खिलौनों तथा लकड़ी के बने हुए फलों व शाकों आदि को बाल-संग्रहालय में भेज दिया गया है।

आधुनिक कला-कक्ष में काश्मीर की लकड़ी की अत्यन्त सुन्दर सामग्री है जिसमें शाहजहाँ का काष्ठ-चित्र, हबशी स्त्रियाँ, खुदाई का काम की हुई तश्तरियां, चिनार के पत्ते, शिकार की आकृतियाँ सन्दूकचियाँ आदि वस्तुयें हैं। काश्मीर की काष्ठ-कला और उसकी विशेषताओं की चर्चा सम्बन्धित लेख में की जा चुकी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंजाब की काष्ठ कला का प्रतिनिधित्व होशियारपुर के लुक के काम की वस्तुयें करती हैं। उनमें फूलदान, कलमदान धूपदान और इसी प्रकार की सुशोभन की अन्य वस्तुयें हैं। काली जमीन पर हरे, नीले, पीले और लाल आदि रंग विभिन्न तहाँ से झांक कर डिज़ायन को सुन्दर बना रहे हैं। होशियारपुर की तश्तरियों और छोटी सन्दूकचियों पर पच्चीकारी का काम भी है।

मैसूर की काष्ठ-कला में चन्दन के अतिरिक्त काठ की वस्तुओं में वे चित्र हैं जिनमें लकड़ी के ऊपर हाथीदांत से पच्चीकारी की गई है। महाराज मैसूर के चित्र में शरीर के मुख, हाथ व अन्य शरीरांग हाथीदांत की पच्चीकारी द्वारा दिखलाये गये हैं। इसी प्रकार की एक आकृति 'संपेरा' भी है।

नेपाल की काष्ठ की कलात्मक वस्तुओं में बौद्ध स्तूप, भगवान् बुद्ध की प्रतिमा, अलंकृत प्याले, पक्षी आदि वस्तुयें हैं।

संग्रहालय में हस्त-शिल्प की इस सामग्री के अतिरिक्त मुरादाबाद के पीतल के बर्तन राजस्थान के धातु-पात्र, आगरे के ताज की बड़ी प्रतिकृति व श्वेत खड़ी की डिबियाँ, कलमदान आदि वस्तुयें हैं। पत्थर की तश्तरियों में रंग-बिरंगे फूलों की पच्चीकारी भी आगरा की ही कला है। कुल २१ नमूने इस कक्ष में रक्खे गये हैं। वनारस की काठ की वस्तुयें व तांबे के छोटे-चित्र भी इसी कक्ष की शोभा हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चतुर्थ कक्ष

शस्त्रागार

इस अणु-युग में मध्य-कालीन अस्त्र-शस्त्र की भले ही कोई उपयोगिता न हो किन्तु इतिहास की दृष्टि से उनका महत्व स्वीकार करना पड़ता है, इसीलिए भारत के अनेक संग्रहालयों में शस्त्रागार का विशेष कक्ष दृष्टिगोचर होता है। विगत् युग की इन स्मृतियों, लम्बे-लम्बे भारी भालों, बोझिल जिरहवख्तरों, खाँडों, दुधारे तेगों और तलवारों से हम अपने पूर्व-पुरुषों के बल और पौरुष का अनुमान लगाते हैं, इसीलिए सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में शस्त्रागार का एक पृथक् कक्ष है जिसमें हिन्दू, सिक्ख और मुस्लिम आयुधों का मूल्यवान संग्रह किया गया है। विविधता की दृष्टि से भी इसका अपना महत्व है।

सिक्ख हथियारों का एक अनूठा संकलन श्री स्वामी केशवानन्द को पेप्सू-सरकार द्वारा मिला है। सिक्ख एक योद्धा जाति है और वीरत्व के लिए देश में प्रख्यात् है। उनके भारी दुधारे तेगों को देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे थ वे बलशाली जो इन शस्त्रों को बिना रोके घँटों ही नहीं दिवसों तक चलाते रहते थे? इस संग्रह में विविध प्रकार की तलवारें, किरचें, खँजर, कटारें, पेशकब्ज, कृपाण, खाँडे, तेगे, गुर्ज, नेजे, वरछे और चक्री आदि अनेक शस्त्र हैं।

स्वामी जी को राजस्थान के शस्त्र अलवर, बीकानेर, व अन्य रियासतों के नृपतियों के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। उनमें सिरोही की सोने य चांदी की मीनाकारी की तलवारें हस्त-कौशल और अलँकरण की दृष्टि से देखने योग्य हैं। मुस्लिम हथियारों में फ़ारस की ढालें, तलवारें और सिरस्त्राण भी हैं जिन पर शिकार के दृश्य बनाये गये हैं और जिन पर अरबी लिपि में लेख भी हैं। कुछ शस्त्र अलभ्य वस्तुओं को व्यापारियों से भी खरीदे गये हैं।

यह समस्त हथियार शीशे की बढ़ी-बड़ी अलमारियों में इस प्रकार प्रकार प्रदर्शित किये गये हैं कि दर्शक की दृष्टि उनकी ओर आकर्षित हो। तलवारों के मखमली कामदार म्यान एक अलग शो-केस में रक्खे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय अस्त्र-शस्त्र

आदि-मानव ने वन्य-पशुओं को मारकर अपनी उदर-पूर्ति करने के लिए ही सम्भवतः नुकीले धातु-खंडों और पाषाण-खंडों का प्रयोग किया होगा। मनुष्य में ज्यों-ज्यों ईर्ष्या, द्वेष, प्राण-नाश की भावना आदि बढ़ती गई, त्यों-त्यों आयुधों का विकास होता चला गया। पहले उसने उन शस्त्रों को चलाना सीखा, जिनसे वह निकट रहकर प्रति-पक्षी पर वार कर सकता था फिर उसने ऐसे अस्त्रों की कल्पना की जिनसे वह शत्रु का दूर से संहार कर सकता था। इस प्रकार आयुधों के दो प्रमुख भेद हैं—शस्त्र और अस्त्र। जो आयुध काटने का काम करते हैं, वे 'शस्त्र' कहलाते हैं।[1] तलवार, कटार, वर्छा, फरसा और दुधारी आदि इसी प्रकार के शस्त्र हैं। धनुष, बाण, तोप, बन्दूक, तमंचे और शक्ति आदि 'अस्त्रों' की श्रेणी में आते हैं। आयुध किसी युग में पुरुषार्थ के चिन्ह थे। प्रत्येक तरुण के लिये उनका व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक था इसलिये गांव के युवक अपने ग्राम-वृद्धों से लाठी, तलवार, बर्छी, धनुष-बाण व अन्य आयुध चलाना सीख लेता था ताकि शत्रु के आक्रमण या विपत्ति के अन्य समय पर अपने गांव की रक्षा कर सके। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि प्रत्येक ग्रामवासी को अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ होना चाहिए।[2] कुछ गांवों के निवासी इस शिक्षा में इतने पारंगत हो जाते थे कि राज्य की ओर से उन गावों को कर-मुक्त कर दिया जाता था। सेना की भर्त्ती के समय उन गांवों को प्राथमिकता दी जाती थी।

राजस्थान में सैनिक की शिक्षा की समाप्ति के समय एक विशेष संस्कार सम्पन्न किया जाता था, जिसे खड्ग-बँधाई या छुरिका-बंध कहते थे। उस समय तरुण योद्धा को एक खड्ग प्रदान किया जाता था, जिसके मान की वह जीवन-भर रक्षा करता था। इसका उल्लेख वीरमित्रोदय संस्कार प्रकाश नामक ग्रन्थ में मिलता है। राजपूताने में छुरिका-बंध संस्कार पिछली सदी तक प्रचलित रहा है।[3]

भारत में प्राक् ऐतिहासिक काल से शस्त्रों का प्रयोग मिलता है। मोंहे जोदड़ो और हड़प्पा में आयुधों के भी कुछ नमूने उपलब्ध हुए हैं।

आर्यों को भारत की भूमि पर अधिकार करना था इसीलिए उन्हें अनार्यों से युद्ध करना पड़ा। उस युग में न केवल वज्र, कुठार, धनुष-बाण, परशु, वर्छा आदि अस्त्र-शस्त्र बनने लगे थे वरन् योद्धा अपने शरीर की रक्षा के लिये सिर पर शिरस्त्राण, वक्ष पर लौह-कवच तथा हस्त-रक्षा चर्म आदि धारण करने लगे थे। इन्द्र और वृत्र के युद्ध में इन्द्र ने अपने शत-धार युक्त वज्र से वृत्र का मस्तक खंड-खंड कर डाला।[4]

१. शुक्र नीति सार, ४, ७ १९२.

२. अर्थ शास्त्र २, ३४.

३. डा० अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शिक्षण-पद्धति, पृष्ठ २२१

४. ऋग्वेद ८, ६, ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महा-काव्य काल में इतने प्रकार के आयुधों की सृष्टि हो चुकी थी कि इस युग में भी उनका वर्णन पढ़कर आश्चर्य होता है। वाल्मीकि रामायण में आग्नेयास्त्र, पर्जन्यास्त्र और वायव्यास्त्र आदि के उल्लेख हैं जो अग्नि, जल और वायु आदि से सम्बन्ध रखते थे। विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर इसी प्रकार के आयुधों का प्रयोग किया था किन्तु वे उनके ब्रह्मास्त्र के आगे निष्फल हो गये थे। राम-लक्ष्मण के शिक्षा-काल में विश्वामित्र ने उन्हें विविध प्रकार के चक्र, गदा, शक्ति, पाश और बाणों आदि का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया था, रामायण और महाभारत में आयुधों के विभिन्न प्रकारों को पढ़कर पाठक आज भी चकित रह जाता है।

अर्जुन ने शिव की कठोर साधना करके उनसे पाशुपत नामक अस्त्र प्राप्त किया था। इसके प्रयोग से दिशायें कांप उठती थीं, पर्वत हिल उठते थे और सूर्य की ज्योति धूमिल पड़ने लगती थी। अर्जुन ने देवराज इन्द्र से भी कुछ दैवी आयुध प्राप्त किये थे। ऐन्द्रास्त्र के प्रयोग से सर्वत्र प्रकाश छा जाता था। योद्धा निष्चेष्ट हो जाते थे क्योंकि उनके नेत्र उसकी तीव्र ज्योति को सह न पाते थे। सम्मोहन नामक शस्त्र के प्रयोग से योद्धा संज्ञा-हीन हो जाते थे। अर्जुन ने इसका प्रयोग भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों पर किया था।

महाभारत के उद्योग-पर्व और द्रोण पर्व आदि में अनेक युद्ध-यंत्रों तथा आयुधों का वर्णन मिलता है। जलोघास्त्र से मूसलाधार वृष्टि प्रारम्भ हो जाती थी। केवल आदित्यास्त्र ही उसके प्रभाव को व्यर्थ कर सकता था। पर्जन्यास्त्र पृथ्वी से शीतल जल की धार फूट निकलती थी। कृष्ण का आयुध सुदर्शन चक्र था जो प्रतिपक्षी का बध करके उन्हीं के पास लौट जाता था।

चक्र वस्तुत: विष्णु के आयुधों में से है। वैदिक परिभाषा के अनुसार चक्र सूर्य का प्रतीक है और विष्णु सूर्य का ही एक रूप है। कृष्ण विष्णु के अवतार माने गये हैं और इसीलिये उनका आयुध भी चक्र ही है। वाल्मीकि रामायण में चक्र के विष्णु चक्र, काल-चक्र, धर्म-चक्र, दण्ड-चक्र और इन्द्र-चक्र आदि प्रकार वर्णित हैं।[1]

चक्र अथवा चकरी का प्रयोग वर्तमान काल में सिक्खों द्वारा किया गया है। अकाली दल का यह एक प्रमुख आयुध माना गया है। चक्र अथवा चकरी गोलाकार इस्पात की बनी हुई होती है। उसका व्यास ११-१२ इंच का रहता है और उसके हल अथवा किनारों की चौड़ाई १॥ इंच या २ इंच रहती है। किसी चक्कर या चकरी की किनारी सीधी व तेज और किसी की कँटीली रहती है। सिख इसे अपनी पगड़ी में रख लेते हैं या बाहों में लटका लेते हैं।

प्राचीन व मध्य-युगीन आयुधों में धनुष-बाण को इतना महत्व दिया गया था कि समग्र युद्ध विद्या को ही 'धनुर्वेद' का नाम दिया गया है। भारतीय ऋग्वैदिक काल

---

१. वाल्मीकि रामायण, बाल कांड, सर्ग, २१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से ही धनुष-वाण से भली-भांति परिचित हो गये थे। वाण को अधिक ध्वंसकारी बनाने के लिये उसे विषाक्त भी कर लिया जाता था। दिग्विजयी आर्य धनुष-बाण को धारण करके मदोन्मत्त शत्रु-सेना का संहार करते थे और विजय-श्री को वरण करते थे। यों सामान्य वाण विपक्षी को अधिक हानि नहीं पहुँचा सकते, वे उसके लौह वर्म से टकरा कर भू-लुंठित हो जाते थे किन्तु इन वाणों को इतने वेग से चलाया जाता था कि उनका लक्ष्य अभेद्य नहीं रहता था। वाण-विद्या न केवल युद्ध में वरन् स्वयंवर आदि में भी योद्धा को विजेता बनाती थी। सीता-स्वयंवर में धनुष द्वारा बल-परीक्षण किया गया था और द्रौपदी स्वयंवर में अर्जुन ने मत्स्य भेद किया था। मध्यकाल तक में धनुष-वाण का युद्ध के समय प्रयोग होता रहा है। महाराज पृथ्वीराज का शब्द-भेदी वाण इतिहास-प्रसिद्ध है।

यूनानी यात्री ऐरियन ने अपनी इंडिका में लिखा है कि "सैनिक तलवार और ढाल के अतिरिक्त धनुष और वाण का भी उपयोग करते थे। धनुष की माप सैनिक की लम्बाई के बराबर होती थी। बाण तीन गज का होता था। उसके वाण के आघात को रोकने में न चर्म, न वर्म और न कवच ही समर्थ थे।"

धनुष-वाण का प्रचलन अब केवल भील, मीना या आदिवासियों में हैं। उनके निशाने बड़े अचूक होते हैं। उनका धनुष बाँस का बना रहता है और तीर बेंत का, जिसकी नोंक पर लोहा चढ़ा रहता है। सर छोटूराम स्मारक-संग्रहालय के इस शस्त्रागार में भी इसी प्रकार का एक धनुष है।

"The long bow of the Bhil is made from the bamboo, even the string is of bamboo, except the ends which is gut"[१]

भारतीय आयुधों में सबसे प्रधान शस्त्र तलवार मानी गई है। महाकवि भूषण ने महाराज छत्रसाल की तलवार की प्रशंसा में लिखा था—

"भुज-भुजगेश की वे संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि-खेदि खातीं दीह दारुन दलन के।"

वस्तुतः तलवार को शस्त्रों का राजा कहा गया है। सैनिक तलवार लेकर अपने विपक्षी से आमने-सामने युद्ध करता है और इस युद्ध में ही उसे अपनी शक्ति और रण-कौशल को दिखाने का अधिकाधिक अवसर मिलता है। घमासान युद्ध में सूर्यास्त के समय सैनिकों की तलवार की धार ही युद्ध की विजय और पराजय का निर्णय करती है। युद्ध-प्रिय राजपूतों की तलवार प्रिय शस्त्र रही है। वे उसे कभी अलग न करते थे। वह उनकी प्राण-रक्षक थी इसलिये वे उसका अधिक से अधिक मूल्य चुकाते थे। तलवार की इस्पात जितने अच्छे प्रकार की होती, उसका मूल्य उतना

१. मेमोरियल्स ऑफ जयपुर इक्जबीशन, पृष्ठ ५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही अधिक होता । भारत इस्पात तैयार करने की कला से बहुत पुरातन काल से परिचित है । गोदावरी के किनारे पर निर्मल की खाने थीं । उनसे बहुत बढ़िया किस्म का लोहा निकलता था, जिसका इस्पात बनाया जाता था । यह इस्पात यूनान और फ़ारस को भी भेजा जाता था ।

तलवार का फल उसके इस्तेमाल पर निर्भर करता है, इसलिये उसके अनेक प्रकार हैं । अबुल फज़ल ने आइनरी अकबरी में कितनी ही प्रकार की तलवारों का जिक्र किया है और उनमें वनेह, एकबन्दी आदि नाम भी दिये हैं । उनको शाहनशाह अकबर स्वयं चलते थे । राजस्थान में सिरोही में सबसे अच्छी तलवारें बना करती थीं । यों प्रत्येक राजा अपने यहाँ तलवार बनाने वाले कुशल कारीगर रखता था । सिरोही के सुनार तलवारों की मूठों पर सोने के तार से पच्चीकारी करते थे । वे उन पर फूल-पत्तियाँ आदि बड़ी सफ़ाई से निकालते थे । मजाल कि तलवार की मूठ के दोनों बाज़ुओं में तिल भर भी अन्तर आ जाय । सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय में भी सिरोही की बनी हुई सोने की मूंठ की अनेक तलवारें हैं । तलवारों का सबसे अच्छा संग्रह इस देश में अलवर संग्रहालय में है । सालार जंग संग्रहालय हैदराबाद में औरंगजेब की तलवार, तानाशाह की रत्नजड़ी तलवार और नूरजहाँ व जहाँगीर की कटारें सुरक्षित हैं । मुग़लों के समय में तलवारों पर बहुत उम्दा किस्म का मीनाकारी का काम होता था । उनकी मूंठ पर जैड पत्थर और मूल्यवान रत्नों का जड़ाव भी होता था ।

युद्ध के समय काम आने वाली तलवारों का फल मजबूत, चौड़ा और तानक तिरछापन लिये रहता था । राजपूतों की तलवारों में ऐसी भी मिलती हैं, जिनमें युद्ध करने वाले की विजय की कामना को गई है । मुसलमानों की तलवारों पर कुरान की आयतें या अली की प्रशंसा लिखी रहती थी । यह मूलतः फारस का प्रभाव था । बलि के काम में लाई जाने वाली तलवारें भारी होती थीं क्योंकि दोनों हाथों से पूरे ज़ोर के साथ पशु पर वार किया जाता था । शिकार की तलवारें कुछ हल्की रहती थीं और उनके ऊपर शिकार या पशुओं के दृश्य बने रहते थे ।

युद्ध के समय योद्धा के लिए ढाल आवश्यक थी क्योंकि वह उससे विपक्षी का वार रोकता था । यों राजस्थान में तलवार के साथ ढाल लेकर चलने का प्रचलन था और लोग उसे शान्ति के दिनों में भी लिए दिखलाई देते थे । ढाल अक्सर भैंसे या गैंड़े की खाल बनी हुई रहती थी । राजपूती ढाल गोल होती थी और उसके ऊपर पीतल के उभरे हुए गोल गुल्ले जड़े रहते थे । अजमेर में ढालों के ऊपर चित्रकारी का काम होता था । फारस की ढालें धातु की बनी रहती थीं और ढलाई के समय उन पर शिकार आदि के दृश्य बना दिये जाते थे । उनमें सोने के तार से मीनाकारी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को जाती थी। इसी प्रकार की ढालें मध्य-भारत में भी बनती थीं। सिक्ख भी लोहे की ढाल को ही अधिक पसन्द करते थे।

योद्धा तलवार के अतिरिक्त फरसा, तेगा, किरच, पेशकब्ज और कटारों का भी प्रयोग किया करते थे। खांडा अथवा खंग सीधा रहता था। उसकी धार चौड़ी होती थी जिसमें बीच में नाली या उभार रहता था। दुधारा खांडा में दोनों ओर तेज़ धार रहती थी। बलि के खांडे को महिषाघ्न खंग कहा जाता था। गुप्ती देखने में छड़ी के समान, उसी के आकार की रहती थी। उसके भीतर दोनों ओर से धारयुक्त नुकीला पतला फल होता था। किरच लम्बी और बिलकुल सीधी होती थी। उसकी मूंठ भी तलवार से भिन्न प्रकार की रहती थी। कटार लम्बी, तिकोनी और धारयुक्त रहती थी। मुट्ठी बाँध कर, कटार से वार किया जाता था। दो नोकों की कटार, दुधारा, कटारा और तीन फलों की जमधर कहलाती थी। पेशकब्ज़, लम्बी और कटार से बड़ी होती थी। उसकी एक ओर की धार पतली, तेज और दूसरी ओर की मोटी तथा चौड़ाई लिए हुये रहती थी। पेशकब्ज की मूंठ हाथीदाँत, अस्थि, जैड आदि की रहती थी। उस पर जड़ाव भी किया जाता था। खंजर, छुरी, लम्बा अफ़रीदी चाकू आदि ऐसे ही शस्त्र थे जिनका वार घातक होता था। नेपाली चौड़ी कुकरी इस्तेमाल करते थे। वह अब भी उनका राष्ट्रीय आयुध है।

गदा या गुर्ज मूल-रूप से मल्ल-युद्ध के समय का शस्त्र थी। महाभारत में भीम, दुर्योधन और जरासिन्धु आदि ने गदा का प्रयोग किया था। गदा युद्ध में नाभि के नीचे के भाग में वार करना नियम के विरुद्ध समझा जाता था। मध्य-कालीन गुर्ज ऊपर से ठोस व भारी होता था और उसका मस्तक पर प्रहार विपक्षी को संज्ञा-हीन कर देता था। इसमें ऊपर की ओर एक नोक निकली रहती थी। जिन गुर्जो का ऊपरी भाग कमरख के फल की तरह कटावदार रहता था, उनको 'कमरखी गुर्ज' कहा जाता था। भाला मुख्य-रूप से अश्वारोहियों और गजारोहियों का शस्त्र था। इसकी फल की नोक बहुत तीखी होती थी और गहरा घाव करती थी। भेदक शूल और त्रिशूल भाले के ही प्रकार हैं। त्रिशूल में तीन फल रहते हैं।

ब्रिटिश काल में बन्दूकों का प्रयोग अधिक होने लगा था। तोड़ेदार बन्दूक, पथर कला, धमाका, टोपीदार और जंजोल आदि बन्दूकों का इसी सदी के प्रारम्भ तक रिवाज रहा है। जंजोल या जंजेल इतनी बड़ी बन्दूक थी कि उसे लेकर सांडनी (ऊँटनी) का सवार भी युद्ध कर सकता था। उसकी मार बहुत दूर तक होती थी। सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय के शस्त्रागार में ऐसी ही एक जंजोल बन्दूक है।

युद्ध के समय आग उगलने वाली तोप ही सम्भवतः सबसे भयंकर अस्त्र समझी जाती थी। तोपें बड़ी होती थीं और छोटी भी। बड़ी तोपों को घोड़े और खच्चर लेकर चलते थे। छोटी तोप को अकेला सैनिक भी चला लेता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युद्ध के समय योद्धा अपनी शरीर-रक्षा की ओर से उदासीन नहीं होता था वरन् सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करके लड़ता था। योद्धा सिर पर कांचन या लौह कवच, शरीर पर लौह वर्म या जिरह बख्तर और लोहे की कड़ियों का पाजामा पहनता था। वह अपने हाथों में चमड़े के बने हुए अंगुलि-त्राण और पैरों में लोहे के मौजे पहनता था। सिरस्त्राण में पीछे की ओर इस्पात की कड़ियों से बनी हुई झालर रहती थी। जिरह बख्तर लोहे की कड़ियों से बना रहता था, जिसमें एक कड़ी दूसरी से फंसाई जाती थी। वह बहुत भारी भी होता था। छाती पर लोहे की मज़बूत प्लेटें रहती थीं। सूती या रेशमी जिरह बख्तरों में भी छाती के ऊपर धातु की प्लेटें रहती थीं। इसे 'चार आइना' कहते थे। सिरस्त्राण या मुकुट में एक पतली पट्टी लगी रहती थी जिससे नाक ढंक जाती थी। योद्धाओं के अश्वों और गजों को भी चमड़े के कवच पहनाये जाते थे, जिनसे उनकी पीठ, गर्दन और मुख का भाग ढंक जाता था। भारतीय अस्त्र-शस्त्रों को गिनना सम्भव नहीं है। बहुत से शस्त्र जिनका वर्णन ग्रन्थों में मिलता है, अब लोप हो चुके हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कक्ष के शस्त्रास्त्र : विवरण

१. तलवारें

फ. १—तलवार, सर्व धातु, सादा, टेढ़ी मूंठ, चौड़ा फल जिस पर अरबी भाषा में अलंकृत लेख है। नोक के निकट जिह्वा खोले हुये सर्पिणी; भारत, बंगाल, समय १८वीं शताब्दी, बिना म्यान की, ३३".

फ. ५—तलवार, इस्पात, मूंठ पर फारसी में लेख, सम्भवतः कुरान की आयतें। सादा फल, मखमली म्यान, भारत, ३३", १८वीं शताब्दी।

फ. ६—तलवार, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी का काम, फल पर दोनों ओर फारसी में लेख जिसको अधिकारी विद्वानों द्वारा पढ़वाने का प्रयत्न किया जा रहा है। भारत, ३६", समय अनिश्चित।

फ. ८—तलवार, इस्पात, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, भारत, पंजाब, सिक्ख-शस्त्र, ३८½", १८वीं शताब्दी।

फ. १३—तलवार, इस्पात, पतला फल, मखमली म्यान, भारत, पंजाब, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं शताब्दी, ३६".

फ. २५—तलवार, इस्पात मूंठ पर मीनाकारी का सुनहला काम, फुलों की तरह, जो सुनारों के शिल्प का एक सुन्दर नमूना है, भारत, राजस्थान, १७वीं शताब्दी, ३७½", पीले मखमल की म्यान जिस पर कसीदा किया गया है।

फ. २७—तलवार, इस्पात, सर्पाकार लहराता हुआ सा फल, मूंठ पर सोने की मीनाकारी भारत, राजस्थान, १७वीं शताब्दी, ३३½".

फ. २८—तलवार, इस्पात, मूंठ पर सोने की मीनाकारी का काम, मखमल का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, ३६".

फ. २९—तलवार, इस्पात, किनारे पर सुनहला काम, काली मूंठ, चमड़े का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, ३९".

फ. ३०—तलवार, फल के ऊपर चाँदी का काम, पीली मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, ३३".

फ. ३१—तलवार, इस्पात, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, १८वीं सदी राजस्थान, काले चमड़े का म्यान, ३४".

फ. ३२—तलवार, सुनहली मूंठ, राजस्थान, १८वीं सदी, मखमल का पीले रंग का म्यान, ३९".

फ. ३३—तलवार, मूंठ पर सोने की मीनाकारी, राजस्थान, मखमल का पीले रंग का म्यान जिस पर कसीदा है। ३८".

फ. ३४—तलवार, मूंठ पर सोने की मीनाकारी, म्यान चमड़े से ढका हुआ। राजस्थान, १८वीं शताब्दी, २८".

फ. ३५—तलवार, मूंठ पर चाँदी की मीनाकारी, जो कुछ उखड़ गई है, मखमली म्यान, राजस्थान, १८वीं शताब्दा, २७½".

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ. ३६—तलवार, जेड की मूँठ, म्यान पर हरी मखमल जिस पर गोटा लगा है। राजस्थान, १८वीं शताब्दी, २८''.

फ. ५६—तलवार, मूँठ पर सोने की मीनाकारी, काला मखमली म्यान पर कसीदे का काम, राजस्थान, सिरोही, १८वीं शताब्दी, ३४".

फ. ६०—तलवार, मूँठ पर सोने का काम, हरी मखमल का म्यान, राजस्थान, सिरोही, १८वीं शताब्दी, ३८''.

फ. ६१—तलवार, मूँठ पर सोने की मानाकारी, मखमली श्यान, राजस्थान, सिरोही, १९वी शताब्दी, ३८''.

फ. ६२—तलवार, मूँठ पर सोने का काम, चमड़े का म्यान, राजस्थान, सिरोही, १९वीं शताब्दी, ३०''.

फ. ६३—तलवार, सुनहली मूँठ, चमड़े का म्यान, सिरोही, १८वीं या १९वीं शताब्दी, ४०''.

फ. ६४—तलवार, हाथीदाँत की मूँठ, चमड़े का म्यान, सिरोही, १८वीं या १९वीं शताब्दी, ३७''.

फ. ६५—तलवार, हाथीदांत की मूँठ, चमड़े की म्यान, सिरोही १८वीं या १९वीं शताब्दी, ३७''.

फ. ६६—तलवार, मूँठ पर सुनहली काम, मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वीं या १९वीं शताब्दी, ३६''.

फ. ६७—तलवार, मूँठ पर सोने की अत्यन्त सुन्दर मीनाकारी, काली मखमल का म्यान, १९वीं सदी, ३५''.

फ. ६८—तलवार, सादी मूँठ, काली मखमल का म्यान, राजस्थान, ३९½". १९वीं सदी।

फ. ६९—तलवार, मूँठ पर सुनहली मीनाकारी, चमड़े का म्यान, राजस्थान, १९वीं सदी, ३९½".

फ. ७०—तलवार, मूँठ पर सोने का काम, चमड़े का म्यान, राजस्थान, १९वीं शताब्दी, ३७''

फ. ७१—तलवार, सादी मूँठ, मखमली म्यान, राजस्थान, १९वीं सदी, ३८".

फ. ७३—तलवार, मूँठ पर फूलोंदार सुनहली मीनाकारी, पीली मखमल का स्यान, राजस्थान, १९वीं सदी, ३३".

फ. ७४—तलवार, सुनहली मीनाकारी की मूँठ, म्याह लाल चमड़े का बना हुआ, राजस्थान, १९वीं सदी ३६".

फ. ७५—तलवार, मूँठ पर सुनहली मीनाकारी, नीली मखमल का म्यान, राजस्थान, सिरोही, १९वीं शताब्दी, ३४".

फ. ७६—तलवार, मूँठ पर सोने की मीनाकारी, म्यान पर काले रंग का चमड़ा चढ़ा हुआ। सिरोही, १९वीं सदी ३६½".

फ. ७७—तलवार मूँठ पर मीना, मखमली म्यान, सिरोही, १९वीं शताब्दी, ३८".

फ. ७८—तलवार, मूँठ पर सुनहली मीनाकारी, म्यान काले चमड़े का बना हुआ, सिरोही, १९वीं सदी. ३३"

फ. ७९—तलवार, मूँठ पर चाँदी का काम, चमड़ का म्यान, सिरोही, १९वीं सदी, ३८"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ. ८८—९९. १–४ तलवारें, सर्व धातु, सादी मूंठें, १८वीं शताब्दी, राजस्थान, आकार ३९½", ३६", ३९½", ३७".

फ. १०३—तलवार, मूंठ पर सोने का काम, म्यान पर लाल मखमल चढ़ी हुई। १८वीं शताब्दी ३५½" हैदराबाद (दक्षिण)

फ. ८१—उदर विदारक तलवार, आगे के भाग पर दाँतें की यह एक विचित्र प्रकार की तलवार है, जिससे पेट फाड़ कर आँतें निकाली जा सकती हैं। तलवार का यह प्रकार दुर्लभ है। राजस्थान, १८वीं या १९वीं सदी, ३०½".

२. कटारें

फ. ३—कटार, मूंठ पर फारसी में लिखे हुए स्वर्णाक्षर, अब कुछ मिटे से, ईरान, प्राचीन. ११".

फ. ४—कटार मूंठ पर सुनहली और रुपहली मीनाकारी, फल के ऊपर शिकार का दृश्य, ईरान, समय अनिश्चित, २१½".

फ. १०—कटार, सादा, म्यान सहित, भारत, १८वीं शताब्दी, १९"

फ. २७—कटार, मूंठ के ऊपर सुनहली मीनाकारी, १७वीं सदी, राजस्थान, मखमली म्यान, १३½".

फ. ४० कटार, दुधारी, हरे रंग का चमड़े का म्यान, भारत, राजस्थान, १२वीं सदी १७".

फ. ४१. कटार, दुधारी, काले रंग के चमड़े का म्यान, भारत, राजस्थान, १८वीं सदी, १५".

फ. ४२—कटार, मूंठ पर सुनहली काम, मिटी हुई दशा में, नीली मखमल का म्यान, १८वीं सदी, राजस्थान, १४".

फ. ४३—कटार, मूंठ पर सुनहली मीनाकारी, पॉलिश छूटी हुई, म्यान लाल मखमल का, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, १६½".

फ. ४४—कटार, मूंठ पर सोने का पानी, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, १५".

फ. ४५—कटार, फल के ऊपर सोने का पानी, फीकापन लिये हुए, पीली, मखमल का म्यान, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, १४½".

फ. ४६—कटार, सोने और चाँदी की मीनाकारी, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान, १२½"

फ. ४७—कटार, फल के ऊपर सोने का पानी, राजस्थान, १८वीं सदी काले चमड़े का म्यान, राजस्थान, १७".

फ. ४८—कटार, फल के ऊपर बहुत सुन्दर व कलापूर्ण मीनाकारी, मिटती हुई स्थिति में काले चमड़े का म्यान, राजस्थान, २०"

फ. ४९—कटार, फल के ऊपर बहुत उम्दा किस्म की मीनाकारी, बिना म्यान का, राजस्थान, १८वीं शताब्दी, १५½"

फ. ५०—कटार, फल पर चौड़ी बेल पत्तियों और फूलों का अलंकरण। राजस्थान, १८वीं सदी, १८½"

फ. ५१—कटार, मूंठ के ऊपर सोने की मीनाकारी, कुछ नष्ट होती हुई, राजस्थान १८वीं सदी, ११½"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़. ५२—कटार, मूँठ पर सोने और चाँदी का काम, राजस्थान, १८वीं सदी ११" लाल मखमली म्यान.

फ. ८५—कटार, फल पर अत्यन्त सुन्दर सुनहला काम, चमड़े का म्यान, १९वीं शताब्दी राजस्थान १७¾"

फ. ८६—कटार, पतला, चमड़े का म्यान, राजस्थान, १९वीं शताब्दी, १६"

फ. ८७—कटार, फल सादा, बिना म्यान की, राजस्थान, १९वीं सदी, १४¾"

फ. ८८—कटार, सादा, राजस्थान, १९वीं सदी, १७½"

फ. ८९—कटार, मूँठ पर सोने का पानी कुछ छूटा हुआ राजस्थान १९वीं सदी, १५½"

फ. ९०—कटार, आकार में छोटी, ऊपर सोने का पानी, लाल मखमली म्यान,

फ. ९५—कटार, छोटा आकार, सरौते के आकार की राजस्थान, २०वीं सदी, ८½"

फ. ९६—कटार छोटा आकार, सरौते जैसी, राजस्थान २०वीं सदी, ९¼"

३. पेशकब्ज

फ. ११—पेशकब्ज, म्यान सहित, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं सदी, २०"

फ. ३७—पेशकब्ज. हाथी दांत की मूठ, लाल मखमल का म्यान, राजस्थान. १८वी सदी, २७½"

फ. ३८—पेशकब्ज, हाथीदांत की मूठ, लाल मखमली म्यान, राजस्थान, १८वीं सदी, २७½"

फ. ३९—पेशकब्ज, मूठ पर हाथीदांत की पच्चीकारी का काम, राजस्थान. १८वीं सदी, २५½"

फ. ८०—पेशकब्ज, सुनहली मूंठ, पीला मखमली म्यान, सिरोही, राजस्थान, १८धीं सदी, ३९"

फ. ९१—पेशकब्ज, हाथीदांत की मूंठ, राजस्थान, १९वीं सदी, १७"

४. किरच

फ. १९—किरच, मूंठ के ऊपर सुनहली मीनाकारी, सिक्ख शस्त्र, १८वीं या १९वीं सदी, ३८"

फ. २०—किरच, मखमली म्यान, १८वीं या १९वीं सदी सिक्ख-शस्त्र, ४०"

फ. २२—किरच, म्यान सहित, १९वीं सदी, सिक्ख शस्त्र, ४२"

फ. १०२—किरच, मूंठ के ऊपर सुनहला काम, पीला मखमली म्यान, हैदराबाद (दक्षिण) १७वीं सदी, ४२"

५. छुरी

फ. ५४—छुरी, हाथीदांत की मूंठ, बिना म्यान की, राजस्थान. १८वीं सदी, १३¾"

फ. ५५—छुरी, मूंठ के ऊपर सोने की मीताकारी उखड़ी हुई सी, बिना म्यान, राजस्थान १२½"

फ. ९२—छुरी हाथी दांत की मूंठ, लाल मखमल का म्यान, १९वीं शताब्दी, राजस्थान, १३"

फ. १०१—खुकरी अथवा भुजाली, नेपाली शस्त्र, टेढ़ापन लिए हुए चौड़ा फल. १९वीं सदी, १९"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. खांडा, तेगा, आदि

फ. ७—दुधारा तेगा, मूंठ के ऊपर चाँदी की मीनाकारी, चमड़े का म्यान, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं सदी, ३४½"

फ. १७—दुधारा तेगा, (दो धारों की तलवार) म्यान छींट का, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं सदी, ३४"

फ. १८—खाँडा, सादा मूंठ, सादा चमड़े का म्यान, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं सदी, ३४"

फ़. २१—दुधारा तेगा, मूंठ के ऊपर चाँदी का काम, सिक्ख शस्त्र, १९वीं सदी, ४१"

७. ढालें

फ. २—ढाल, लोहे की, ईरान, ऊपर ठप्पे द्वारा किया गया शिकार का दृश्य, घोड़े पर चढ़े हुए शिकारी धनुष-बाण से हिरन खरगोश आदि वन्य पशुओं को आखेट कर रहे हैं। वेष-भूषा ईरानी, बीच में तथा किनारों पर अरवी भाषा में अलंकृत लेख, जिसको पढ़ाने की चेष्टा की जा रही है। ऊपर उठे हुए चार फुल्ले। १७वीं शताब्दी, व्यास, १८"

फ. ९—ढाल, धातु, सिक्ख-शस्त्र, १८वीं शताब्दी, व्यास, १९"

फ. १००—१ से ४ ढालें, चमड़े की भैंसें व गैंड़े की खाल, जिनमें से एक ढाल पर एक चित्र बना हुआ और शेष पर फूलों तथा पत्तियों का अलंकरण है। चित्र में एक अश्व दिखलाया गया है जिसका मुख मुस्लिम नारी का है। यह किसी इस्तामी पुराण कथा से सम्बन्धित है। अठारहवीं शताब्दी, भारत, आकार (व्यास) १३'', १७'', व १५''

८. बन्दूकें व तोप

फ. १२—गोले—तोप के लोहे के गोले, संख्या में १६०, विभिन्न छोटे बड़े आकार के।

फ. २३—जंजेल (बन्दूक का एक प्रकार), १९वीं शताब्दी, ६०½'"

फ. २४—मैचलॉक गन या तोड़ेदार बन्दूक, १९वीं सदी राजस्थान ७०''

फ. ५८—रेखला, छोटी बन्दूक, राजस्थान १९वीं सदी.

फ. १०४—तोप छोटी, पीतल की, राजस्थान १९वीं सदी। यह छोटी तोपें अकेले सिपाही चला सकते थे। इसके अतिरिक्त देशी पिस्तौलें व तमंचे—

९. अन्य अस्त्रास्त्र

फ. १४—चक्कर, लोहे का गोल चक्र, सिख-शस्त्र, १८वीं सदी, १२½" (व्यास)

फ. १६—चकरी, लोहा, सिक्ख-शस्त्र, सिख-शस्त्र १८वीं सदी, ६½" (व्यास)

फ. १५—जम्बूरा, लोहे का शस्त्र विशेष, सिख-शस्त्र, १८वीं शताब्दी, १४"

फ. ५३—फरसा, लोहा, फल के ऊपर सोने का काम पक्षियों का अलंकरण, राजस्थान, ३७"

फ. ७२—भाला, धातु व काष्ठ राजस्थान, ७३",

फ. ८२—तोमर—लोहा, राजस्थान, १९वीं २०½"

फ़. ८३—गुर्ज–सिरा कमरख के कटाव का राजस्थान, १९वीं सदी, ३८½"

फ. ८४—गुप्ती छड़ी के आकार की, पतला, नुकीला फल बाहर धातु के म्यान के ऊपर सुनहली व विविध रंगों का मीनाकारी का काम राजस्थान, ३७½"

फ. बधनखा, धातु से मढ़े हुये, २०वीं सदी, ८½"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ. ९३-९४—धनुष-बाण, बेत का धनुष, बाण के ऊपर लोहे की नोक, भीलों का अस्त्र-शस्त्र, राजस्थान, बीसवीं सदी, धनुष का आकार ३५३/४" तथा बाण का आकार २७"

फ. ९८—हिरण के सीगों का शस्त्र, लोहे से मढ़ी नोकें १४"

१०. लौह वर्म या जिरह बख्तर

फ. ५७—जिरह बख्तर, लोहे की छोटी-छोटी कड़ियों को आपस में फंसाकर तैयार किया गया लम्बा जिरह बख्तर कड़ियों के सिरे मुड़े हुये हैं। कड़ियाँ बहुत उम्दा किस्म के इस्पात से बनाई गई हैं। छाती पर चौड़ा पतरा।

फ. १०४—पाजामा, उपरोक्त प्रकार का ही कड़ियों से तैयार किया पाजामा जो पिंडलियों तक पहुँचता है। दोनों वस्तुयें बहुत भारी हैं।

फ. १०५-१०६—लोहे का सादा नोकदार शिरस्त्राण व लोहे का ईरानी शिरस्त्राण जिसके ऊपर गायकों व वादकों की आकृतियां उभारी गई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवाँ कक्ष

भारतीय चित्र

(प्राचीन)

वर्तमान समय में प्राचीन चित्र एक लम्बे विशाल हॉल में दीवार के सहारे तथा शो-केशों में लगाये गये हैं। चित्रों में मुग़ल-क़लम, राजस्थानी चित्रों की विभिन्न शैलियाँ, दक्खिनी क़लम, पहाड़ी चित्र-शैली, पुरी के पट्ट, सिक्ख-क़लम और फिरंगी क़लम आदि के चित्रों का समावेश है। उनके अतिरिक्त मुग़ल बादशाह और बेग़मों के बड़े-बड़े चित्र हैं जो प्राचीन मुग़ल सूक्ष्म-चित्र (मिनियेचर्स) की प्रतिलिपियाँ हैं। इस प्रकार की प्रतिलिपियाँ दिल्ली में अब भी बनती हैं। यह चित्र इस शताब्दी के प्रारम्भ के बने जान पड़ते हैं। विद्यालय के छात्रों को सभी मुगल बादशाहों के चित्र देखने को मिल जावें, सम्भवतः स्वामी जी द्वारा इस विचार से यह चित्र लिये गये हैं अन्यथा कला और पुरातत्व की दृष्टि से इन चित्रों का कोई महत्व नहीं है। इसी प्रकार के एक चित्र में शाहजहाँ का दर्बार दिखलाया गया है, जिसके चारों ओर वे भवन हैं जिन्हें मुग़ल शाहन्शाहों ने बनवाया था।

इसी कक्ष में हाथीदाँत के पतरों पर तैयार की गई तस्वीरें, तथा बंगाल के चित्र-युक्त गोल गंजफे भी रक्खे गये हैं। प्रकोष्ठ के बीच में शीशे के शो-केसों में संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की वे पुस्तकें रक्खी हैं जिनको सुन्दर चित्रों व लिखावट से सजाया गया है।

चित्र-कक्ष के लिये यह आवश्यक है कि उसकी खिड़कियाँ ऐसी बनाई जावें कि चित्रों पर सीधा प्रकाश न पड़ने अन्यथा वे धूमिल होते जाते हैं। इस कक्ष में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय चित्रकला

चित्रों का इतिहास मानव-संस्कृति जितना ही प्राचीन है। आदि-मानव को जबसे सौन्दर्य-बोध हुआ सम्भवतः तभी से वह अपने मनोभावों, चित्रों के माध्यम से व्यक्त करने लगा। प्राक् ऐतिहासिक काल के पाषाणों पर अंकित चित्र विश्व के अनेक भू-भागों में उपलब्ध हुये हैं। सिन्ध प्रान्त में मोंहे जोदड़ो से ८० मील दूर के आम्री नामक स्थान में ऐसे बर्तन प्राप्त हुए हैं जिन पर काले या चाकलेट रंग से बेल-बूटे बनाये गये हैं। अन्य स्थानों में भी चित्रित मृत्तिका-पात्र उपलब्ध हुये हैं।

चित्रकला प्राचीन भारत के नागरिकों को प्रिय रही हैं। वे अपने भवनों को सुन्दर भित्ति-चित्रों आदि से सजाया करते थे। राज-प्रासादों में अन्य कक्षों के अतिरिक्त चित्रशाला भी होती थी। वाल्मीकि की रामायण और भवभूति के उत्तर रामचरित्र में अयोद्धा के राज-भवन की उस चित्रशाला की चर्चा है, जिसमें राम और सीता के जीवन-प्रसंगों का चित्रों के रूप में आलेखन हुआ था।

चित्रों के अंकन के अनेक प्रकार थे। भित्ति-चित्रों को दर्पण के समान स्वच्छ और चिकनी दीवार पर आंका जाता था। सादृश्य-चित्र, दर्पण में प्रतिबिम्ब की भांति, आबेहूब बनते थे। उषा ने स्वप्न में देखे अनिरुद्ध को चित्रलेखा द्वारा वनाये गये सादृश्य चित्र में पहचान लिया था। रस-चित्रों में शृंगार, शांत और करुण आदि रसों का परिपाक रहता था। धूलि-चित्र लोक-कला के अंग थे। बंगाल में अल्पना और उत्तर प्रदेश में 'चौक' अब भी बनाये जाते हैं। अजन्ता, बाग और सितन्नवासल के कला-मण्डपों के चित्र दीवारों पर कोरे गये भित्ति-चित्र हैं। मुगल क़लम के चित्र सादृश्य-चित्र माने जा सकते हैं और राजस्थानी तथा पहाड़ी शैली के रस-चित्र।

अजन्ता और बाग की गुफाओं के चित्रकारों ने अपने अंकन के विषय भगवान् बुद्ध की जीवन-गाथा और जातक-कथाओं से लिए और सितन्नवासल के चित्र मूलतः जैन विषय-वस्तु पर आधारित हैं फिर भी भारत के गुहा-मन्दिरों के भित्ति-चित्रों की भावाभिव्यक्ति सभी देशों के कला-मर्मज्ञों के अन्तर को समान रूप से छू सकने में समर्थ हैं। अजन्ता में मानों एक सहस्र वर्षों का सांस्कृतिक इतिहास बोल उठा है।

इसके बाद की परम्परा बादामी के चालुक्यों के बनवाये मन्दिरों और एलोरा की इन्द्र सभा व कैलाश आदि में दिखलाई देती है उसके बाद यह धारा विस्मृति के गर्भ में डूब गई। जिस समय पाल वंशीय महाराज धर्मपाल, महीपाल आदि ने बंगाल और बिहार पर शासन किया उस समय चित्र-परम्परा ताल-पोथियों के सुशोभन-चित्रों के रूप में पुनः प्रकट हुई। इनमें बुद्ध, बोधिसत्व, तारा व महायान के अन्य देवी-देवताओं के स्वरूप दिखलाई देते हैं। पुस्तक चित्रकला या सूक्ष्म चित्रकला की एक धारा गुजरात में भी बही। इसे कुछ समालोचक 'जैन चित्र-कला' या 'गुजरात चित्र-शैली' कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्प-सूत्र,कालक कथा आदि ग्रन्थों को चित्रों से सजाया गया। धीरे-धीरे इस शैली में रूढ़िगत तत्वों ने प्रवेश कर लिया और लावण्य व भाव-गाम्भीर्य ने विदा ले ली।

मुगल शाहन्शाहों के साथ ईरान की कला और संस्कृति ने भी भारत में प्रवेश किया। इस्लाम में चित्र-कला के लिये कोई सम्मानित स्थान न था। हदीस के अनुसार सृष्टा केवल एक है। मनुष्य या किसी अन्य प्राणी के रूप बनाने का केवल उसी को अधिकार है इसलिए कयामत के दिन चित्रकार को नरक मिलेगा। इसी विचार-धारा के अनुसार इस्लाम में चित्रकला वह धार्मिक स्वरूप न ले सकी जोकि उसे बौद्धों में मिला था। इस्लामी देशों के चित्रकार पेड़-पत्तियों और नक्काशी बनाने लगे। फिर भी बन्धनों में शिथिलता आई। मुहम्मद गजनवी ने अपने राज-प्रासादों में युद्धों के दृश्य अंकित कराये। दसवीं सदी में ही पंचतंत्र और हितोपदेश, कलीला दमना के नाम से अनुवादित हुए और उनको चित्रित भी किया गया। अरबी पुस्तकें चित्र-विहीन रहीं किन्तु फ़ारसी की पुस्तकों को सुन्दर चित्रों से उसी प्रकार सजाया जाने लगा जैसे पाल-युगीन ताल-पोथियों में चित्र बनाये जाते थे। अरबी पुस्तकें अपनी खुश नवीसी या सुलेखन के लिये प्रख्यात् थीं।

तैमूर का वंश अपनी कला-प्रियता के लिये प्रसिद्ध है। इन शहन्शाहों के दरबार में कुशल चित्रकार रहते थे। सुलतान हुसैन मिर्ज़ा के यहां बिहजाद नामक कला-गुरु प्रश्रय पाते थे। वे ईरानी शैली के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार माने जाते हैं। बाबर और हुमायूं चित्रकला के प्रेमी थे किन्तु अकबर के समय में मानों चित्रकला ने नया जीवन ले लिया। उनका दृष्टिकोण उदार था। आईनये अकबरी के अनुसार उनके दरबार में दसवंत, बसावन, केशो, मुकुन्द, मिस्कीन, जगन, महेश आदि अनेकों चित्रकार थे जिनसे उन्होंने "अनवार-इ-सुहेली, रम्ज़ानामा, चंगेजनामा, रज़्मनामा (महाभारत) आदि चित्रित कराये। ईरान कलम की अलंकारिता, पृष्ठ-भूमि पर प्रकृति-सौन्दर्य, अंग-अंग की बारीकी और भारतीय चित्रों की भावमयता का सम्मिलन कला की इन श्रेष्ठ कृतियों में हुआ है।

जहाँगीर के समय में उस्ताद मंसूर ने पशु-पक्षियों के बड़े प्राणवान चित्र बनाये। राय कृष्णदास जी ने जहाँगीर शैली के सम्बन्ध में लिखा है—"जहाँगीर कालीन मुग़ल शैली ने नया रास्ता लिया है। उसमें रूढ़ि न रहकर असलियत आ गई है। यही कारण है कि वह ईरानी प्रभाव से भी मुक्त हो गई है। बारीकी और तैयारी में वह अकबरी चित्रों से कहीं आगे बढ़ गई है।"

शाहजहाँ के काल में भी चित्रकला की धारा निर्बाध गति से बहती रही।

राजस्थानी चित्र, भारतीय चित्रकला के एक प्रमुख अंग समझे जाते हैं। भारतीय लोक-मानस से खिले हुए पद्म अनुपम श्रीयुक्त हैं। हृदयग्राही रूप-सृष्टि, विषय-वस्तु का चयन, सादृश्य की अपेक्षा भाव की प्रधानता, सीधी-सादी रेखाओं द्वारा दिव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

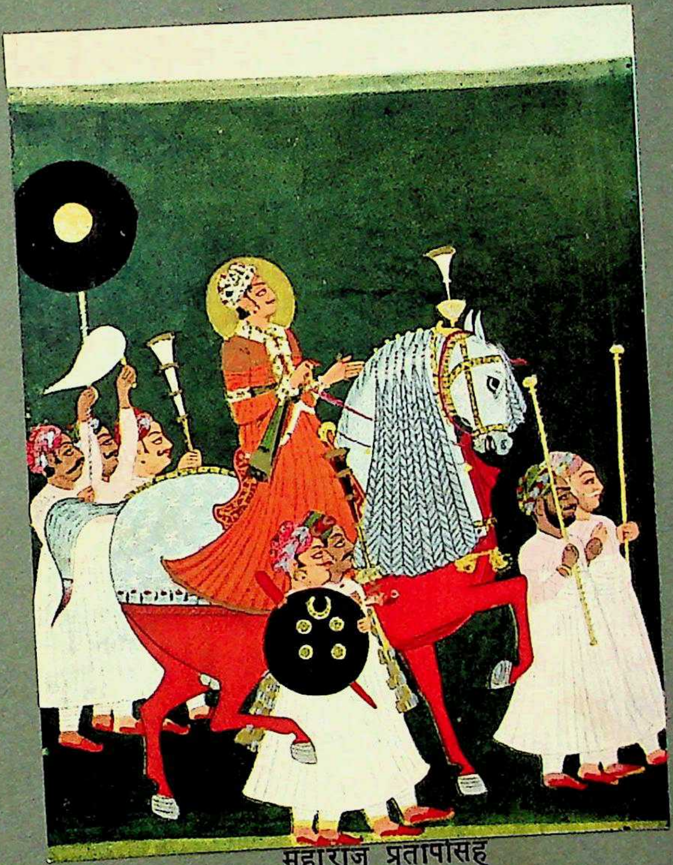

महाराज प्रतापसिंह
जयपुर, राजस्थानी चित्र, १८वीं सदी, उत्तरार्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
लावण्य का सृजन राजपूत शैली के चित्रों की लाक्षणिकतायें हैं। राग-रागिनी, ऋतु चित्रण, कृष्ण-लीला और व्यक्ति-चित्रों से राजस्थानी चित्र-शैली सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक समृद्ध होती रही। विशाल वृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं की भांति जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, बूंदी और कोटा आदि की चित्र-शैलियाँ राजपूत चित्रकला के अंग हैं।

जयपुर के नृपतियों का दिल्ली के शाहन्शाहों से सदैव मैत्री पूर्ण सम्बन्ध रहा सम्भवतः इसीलिये मुगल सल्तनत के प्रभाव के पश्चात् उसके आश्रित शिल्पियों व चितेरों ने जयपुर के राजदरबार में ही आश्रय लिया। प्रारम्भ में जयपुर में मुगल चित्रों की प्रतिकृतियां तैयार की गई और फिर स्वतंत्र चित्रों का अंकन भी किया गया। धीरे-धीरे उसका भाव और सौन्दर्य-पक्ष सबल होता गया। महाराज जयसिंह, ईश्वरी सिंह और प्रताप सिंह आदि रस-मर्मज्ञ नृपतियों से प्रोत्साहन प्राप्तकर साहब-राम, हुकमचन्द, मुरली, गंगा बक्श, मुन्ना लाल और रामचन्द्र आदि चित्रकारों ने अनेकों चित्र तैयार किये। साहब राम के बहुत से चित्र जयपुर के पोथी खाने में व एक चित्र बोस्टन संग्रहालय में संरक्षित है। यों मुग़ल दरबारों के चितेरों ने भी रागमालाओं की तस्वीरें बनाई हैं किन्तु कोमलता, भावमयता और लुनाई में वे राजपूत चित्रों के आगे ठहरती नहीं। सामान्य क़द, मीन जैसे नेत्र, गोल मुखाकृति, सुर्ख (कुछ मोटाई लिये हुए) होंठ, छोटी गर्दन, रंगों की प्रखरता और अलंकारों में सोने की छपाई आदि लक्षणों से कला-समीक्षक जयपुर शैली की पहचान कर लेते हैं। जयपुर शैली में रीति कालीन कवियों की कृतियों के अतिरिक्त गीत गोविन्द को भी चित्रों में आंका गया है।

उदयपुर का दिल्ली से जयपुर जैसा सम्बन्ध नहीं रहा। राणा प्रताप का यह राज्य मुगलों का विरोधी शत्रु रहा। उदयपुर के चित्रकारों में कृपाराम, भैरोंराम, शिव बक्श. रामप्रताप और नयनचंद्र के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। कृष्ण लीला के बालचरित्र-के जितने चित्र उदयपुर में बने उतने किसी अन्य स्थान में नहीं बने। भागवत् यहाँ के चितेरों का प्रिय ग्रन्थ रहा। उसके अतिरिक्त रामायण, पृथ्वीराज रासो, बिहारी सतसई, पंचतंत्र और गीत-गोविन्द आदि के चित्र भी बनाये गये। इस शैली में देह कुछ भारी, मुख के नीचे का भाग गोल, क़द मंझोल और नेत्र कमल की आकृति के रहते हैं। हाथी, चकोर, कदम्ब का वृक्ष आदि इन चित्रों में विशेषतया रहते हैं।

बीकानेर की अपनी निजी चित्र-शैली थी जिसका समय सत्रहवीं सदी से लेकर अठारहवीं सदी तक माना जाता है। महाराज अनूपसिंह, रामसिंह और महाराज कर्णसिंह के नाम चित्रकारों के प्रश्रयदाता के नाते भी लिए जाते हैं। बीकानेर का दिल्ली से सम्पर्क रहा इसलिए कुछ मुस्लिम कलाकार भी यहां आकर बस गए। रुक्नुद्दीन, रहीम, नाथू, शाह मुहम्मद और मुराद आदि बीकानेर शैली के प्रसिद्ध चित्रकार थे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके चित्रों पर कहीं-कहीं मुग़ल चित्रकला का प्रभाव दिखलाई देता है किन्तु जिनके अंकन के विषय सर्वथा भारतीय हैं। उन्होंने राजाओं और उनके दरबारों के चित्रों के अतिरिक्त राग-रागनियों आदि के सुन्दर चित्र भी बनाए हैं। बीकानेर के चित्रों का सबसे बड़े संग्रह श्री मोतीलाल खजांची तथा कुंवर श्री संग्रामसिंह के पास है, जिनमें ललित रागिनी, असावरी रागिनी, केदारा रागिनी, भैरवी रागिनी व श्री राग आदि के सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के भावपूर्ण चित्र हैं। मेघों में श्वेत झालरें और पगड़ियों के पेचों से यह शैली पहचानी जाती है।

जैसलमेर की चित्र-शैली पर किसी का प्रभाव नहीं पाया जाता। वेगवती, लावण्ययुक्त रेखाएं इन चित्रों की प्राण-भावना हैं। पुरुष तथा स्त्रियों के शरीर लम्बे और छरछरे दिखलाए जाते हैं। नायकायें सुकुमार और सौन्दर्यवती आंकी जाती हैं। जैसलमेर शैली के प्रश्रयदाता महाराज बुधसिंह माने जाते हैं और चित्रों का अंकन-काल अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी। इस शैली के चित्रों में हरे व लालरंग की प्रधानता रहती है किन्तु स्वर्ण और रजत का प्रयोग भी मिलता है। आकाश में विविध पक्षी उड़ते हुए दिखलाए जाते हैं। चित्रकारों ने राजाओं और उनके दरबारों के दृश्यों के अतिरिक्त रागिनी चित्र भी बनाए हैं।

अलवर की शैली का विकास काल अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। अलवर के संस्थापक राजा प्रताप सिंह और उनके उत्तराधिकारी बख्तावर सिंह के समय में डालचन्द, बलदेव और सालिगराम आदि कारीगर हुए किन्तु महाराज विनय सिंह के शासन काल में यह कलम कमल सी खिल उठी। श्री एन. सी. मेहता ने यह लिखा है:

"अलवर रियासत में, जो जयपुर से अठारहवीं शताब्दी के अन्त में पृथक् हुई, एक चित्र-प्रणाली का जन्म हुआ। महाराज बन्नू सिंह (१८२४-१८५७) ने चित्रकारों को आश्रय दिया।" अलवर की चित्र-शैली से अलवर की शैली का निकट का नाता है फिर भी उसकी कुछ लाक्षणिकताएं हैं। उस पर मुग़ल शैली का भी प्रभाव है। वहां के चित्रकारों के प्रिय विषय शिकार दृश्य, राजाओं के चित्र और राग-रागनियां हैं। ओंकारनाथ, रामप्रसाद, छाजाराम, विष्णुप्रसाद और जगन्नाथ आदि यहां के प्रसिद्ध चित्रकार थे। शिवदान सिंह के समय में गणिकाओं के चित्र बने।

स्त्रियों की वेणी, पुरुषों की पगड़ी के पेंच जयपुर से भिन्न हैं। अलवर के चितेरों को भी जयपुर के चित्रकारों की भांति ही हरा रंग विशेष प्रिय है। जयपुर के चित्रों में जहां नीले बादल या शुभ्र आकाश दिखलाया जाता है वहां अलवर में श्वेत बादल या शुभ्र आकाश चित्रित होता है। अलवर के चित्रों में मुग़ल चित्रों जैसे ही बारीक रेखाएं बनती थीं और हाशियों पर बेल-बूटे व सोने का काम रहता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोधपुर की चित्र-शैली का समय १७वीं सदी से १९वीं सदी तक का माना जाता है। महाराजा जसवंत सिंह, गज सिंह और अभय सिंह आदि नृपतियों का प्रश्रय पाकर यह शैली विकसित हुई। जोधपुर के चित्रकारों को बारहमासा और राग-रागिनी के अतिरिक्त ढोला-मारू, लैला-मजनूं, मधुमालती, सदावृक्ष सावलिंग आदि के प्रेमाख्यान विशेष प्रिय रहे हैं। उनके अतिरिक्त व्यक्ति-चित्र और राज दरबारों के दृश्य भी आंके गए हैं। पुरुष चित्रों में ओज और मार्दव की भावना प्रधान है। भारी देह, मोटी गर्दन, कानों के पास जुल्फें, सिर पर ऊँचो शिखराकार पाग, जिसमें मुक्तावलियाँ और फ़ुंदने लटकते रहते है, जोधपुर शैली की लाक्षणिकतायें हैं। नारी-चित्र मुग़ल चित्रों के समान रहते हैं किन्तु नेत्र खंजन जैसे होते हैं। आकाश में काले बादल और उनमें बिजली के प्रकाश की रेखायें दिखलाई जाती हैं। जोधपुर शैली के प्रसिद्ध चित्रकार भाटी वंश के कृष्णदास, शिवदास और देवदास समझे जाते हैं। जोधपुर शैली में मतिराम, केशवदास और सूर आदि कवियों के ग्रन्थ चित्रों से सजाए गए हैं।

बूंदी की छोटी सी रियासत राजस्थानी चित्रों के लिए सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कर चुकी है। यों इस चित्र-शैली में राजा, दरबार और शिकार के दृश्य आदि भी बने हैं किन्तु इसका मुख्य विषय राग-रागिनियां और बारहमासे हैं। टोढ़ी, माल श्री, कुकुम, कुमुद, गुणकली, वसंत आसावरी, तात्पर्य यह कि शायद ही कोई ऐसी रागिनी हो जिसका कल्पना-चित्र बूंदी के चित्रकार ने न खींचा हो। इस शैली के मुख्य चित्रकार सुर्जन, अहमद अली व रामलाल आदि हैं जिन्होंने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक चित्रों का सृजन किया। झीने वस्त्र पहने नायकायें जिनके अधरों पर एक मन्द हास रहता है, और जो एक काली क्षीण रेखा से अलग-अलग दिखलाए जाते हैं, इन चित्रों की शोभा है। पुरुष नीचे की ओर झुकी पगड़ियां और नीचा जामा पहनते हैं।

कोटा की चित्र-शैली बूंदी के समकालीन है। इस शैली के प्रसिद्ध चित्रकार लच्छीराम, रघुनाथ, गोबिन्दराम और नूर मुहम्मद माने जाते हैं। इन सभी ने लाजवर्दी, सीलू और पीले रंग का अधिक प्रयोग किया है। कोटा-शैली की नायकाओं की देह तनिक मोटाई लिए, वक्ष चौड़ा और कटि पतली रहती है। इस शैली में कथाओं का चित्रण, कृष्ण-लीला और राजाओं के चित्र आदि मिलते हैं।

मेवाड़ के नाथद्वारा नामक स्थान में राजस्थानी कला की एक विशेष शैली पनपी जिसे 'नाथ द्वारा की चित्रशैली' के नाम से जाना जाता है। नाथद्वारा विगत कई शताब्दियों से वल्लभ कुल सम्प्रदाय के गुसाइयों का प्रधान पीठ रहा है इसीलिए वहां के चितेरों ने भी राधा और कृष्ण के विविध रूपों का अंकन किया किया है। नाथद्वारा के चित्रों की यह परम्परा अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होती है। यों नाथद्वारा में अब भी चित्र बनते हैं पर पहले की सजीवता विदा ले चुकी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रेखाएं अब गतिहीन हो चुकी हैं और भाव की दृष्टि से चित्र निकृष्ट कोटि के हो चुके हैं। उन्नीसवीं सदी के नाथद्वारा के चित्रकारों ने अपने चित्रों के कथानक श्री मद्-भागवत् से लिए। कदम्ब के नीचे मुरली बजाते त्रिभंग कृष्ण और उनकी प्रिया राधा इन कलाकारों के आराध्य थे। इस मुग़ल छवि के अतिरिक्त नाथद्वारा में कृष्ण की बाल-लीला के असंख्य चित्र बने। यहां के चितेरे लाल, नीले और हरे आदि रंगों का प्रयोग करते हैं। रंग तेज और चटकीले रहते हैं। किसी-किसी चित्र में चाँदी का रंग भी दिखलाई देता है। आकाश में काले मेघ छाये दिखलाए जाते हैं जिनमें बिजली की चमक एक विरोधाभास पैदा करती है।

राजस्थानी चित्रों में किशनगढ़ के चित्र लावण्य और रसमयता के कारण विश्व भर के कला-रसिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हैं। श्री रामगोपाल विजयवर्गीय ने किशनगढ़ के इन चित्रों के सम्बन्ध में लिखा है :

"राजस्थानी चित्रकला की विभिन्न प्रान्तीय शैलियों में किशनगढ़ शैली का जो स्थान है, वह कलात्मक दृष्टि से इतना रसमय और माधुर्यपूर्ण है कि दर्शक की आँखें स्वर्गीय कल्पनाओं के स्वप्न देखने लगती हैं। रेखाओं का लावण्य और रंगों का चमत्कार साहित्य के ऐसे रूपक लिपि बद्ध करता है जिनमें कविता और कला दोनों का आनन्द मिल जाता है।"

नाथद्वारा की भांति किशनगढ़ शैली में भी कृष्ण चरित्र सम्बन्धी चित्रों का अंकन हुआ है। राधा-कृष्ण की प्रथम-लीलाएं और गीत-गोविन्द के स्थल इस शैली के चितेरों के प्रिय विषय रहे हैं। किशनगढ़ के राजा रूपसिह, बल्लभ कुल सम्प्रदाय के अनुयायी थे। राजा रूपसिंह, राजा रामसिंह और राजा सावन्तसिंह चित्रकारों के प्रश्रयदाता रहे हैं। हिन्दी जगत राजा सावन्तसिंह को नागरी दास कवि के रूप में भली-भाति जानता है। इन नरेशों ने छोटू, अमीर चन्द, निहाल चन्द, भंवरलाल और धन्ना आदि चितेरों से अनेक भक्तिरस पूर्ण चित्र बनवाए।

नागरीदास की प्रेरणा का स्रोत बनीठनी जी थीं जिनका चित्र भी उपलब्ध है। पुरुषों के लम्बे शरीर, मुक्तावलियों से अलंकृत पागें और नायकाओं की लम्बी देह-यष्टि, पतली कटि, खंजन से नेत्र, कमान सी उठी हुई भौंहें, लम्बी नासिका, आगे निकली ठोढ़ी और गालों पर लहराती लम्बी अलकें किशनगढ़ की शैली की लाक्षणिक-ताएं हैं।

पहाड़ी चित्रों की परम्परा भी राजस्थानी चित्रों की भाँति ही गरिमामयी है। काश्मीर और पंजाब में अनेक छोटी-छोटी रियासतें थीं जिनमें अपनी विशेष-शैली लेकर चित्रकला पनपी। इन शैलियों में जम्मू, बसौली, गढ़वाली और कांगड़ा प्रमुख हैं। बसौली चित्रकला और कांगड़ा चित्रकला पर अभी कुछ दिनों पूर्व श्री एम० एस० रन्धावा के सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। कांगड़ा के चित्रों में जो मृदुता व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नायिका

बूंदी, राजस्थानी चित्र, १९वीं सदी, पूर्वार्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लावण्य है, उसके दर्शन बसौली के चित्रों में नहीं होते फिर भी वे चित्र मन को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। वे लोक-कला के परिष्कृत रूप प्रतीत होते हैं, जिनमें बल और ओज के भाव का प्रदर्शन अच्छे प्रकार से हुआ है। बसौली के चित्रकारों को राग-माला का चित्रांकन विशेष प्रिय है। चित्रों पर ताकरी लिपि में लेख भी मिलता है। बड़ी-बड़ी खिले कमल-सी आंखें, भरे हुए गाल और पीछे की ओर जाता हुआ ललाट इस चित्र-शैली के प्रमुख लक्षण है।

कांगड़ा चित्र-शैली के सम्बन्ध में श्री राय कृष्णदास जो ने ठीक ही लिखा है: "अजंता युग के पश्चात् पहाड़ी शैली में ही भारतीय कला एक ऐसी ऊंचान तक उठी है, जहां तक पहुँचना खिलबाड़ नहीं है।" कांगड़ा-शैली के चित्रकार के आदर्श राधा-कृष्ण हैं, जिनका अनुपम रूप उन्होंने आंका है। महाभारत, रामायण आदि महाकाव्यों और हिन्दी रीति-कालीन काव्य में से उन्होंने अपनी विषय-वस्तु चुनी है। नायिका की लम्बी छरछरी देह यष्टि, गौर वर्ण, लम्बी गर्दन और चौडा माथा, पतले ओंठ और खंजन सी आंखें उसे सौन्दर्यवती बना देते हैं। पुरुष का आदर्श सांवले, सलोने कृष्ण हैं।

सिक्ख कलम के नाम से महाराज रणजीतसिंह के समय में एक विशेष चित्र-शैली पनपी। पंजाब में षिक्खों का आधिपत्य बढ़ रहा था और छोटी-छोटी रियासतों का स्वतन्त्र अस्तित्व विलीन होता जा रहा था। कांगड़े के हिन्दू चित्रकारों ने लाहौर में आश्रय लिया। रणजीतसिंह ने उनसे लाहौर के किले, महल और दीवारों पर बहुत से दृश्य अंकित कराये। इस युग में सिक्ख-गुरुओं के व्यक्ति-चित्र भी बने पर उनमें खूबियां न थीं जो मुगलकाल की शबीहों में मिलती हैं। यह चित्र प्राणहीन हैं और उनसे कला की ह्रासोन्मुखी दशा झलकती है।

फिरंगी अथवा कम्पनी कलम में अंग्रेजों के चित्र बने। भारतीय चित्रकारों अंग्रेजों के मनोरंजक दृश्य खींचे, जिनमें ऊँचे-ऊंचे पाश्चात्य डिजायन के भवन, चौड़ी सड़कों पर घोड़ों की टमटमें और उन्नीसवीं शताब्दी की वेश-भूषा पहने साहब-मेम दिखलाई देते हैं। कहीं अंग्रेज मद्य-पान करते दिखाये गये हैं। इस कलम में फिरंगी अफसरों के व्यक्ति-चित्र (प्रोर्ट्रेट) भी बनाये गए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कक्ष की चित्र-निधि : विवरण

सर छोटूराम स्मारक संग्रहालय की चित्रविधि में मुगल-कलम, राजस्थानी चित्र-शैली, पहाड़ी कलम, उड़ीसा की लोक-कला, सिख-कलम और फिरंगी कलम के २३० चित्र हैं। मुगल चित्रों की कुछ प्रतिलिपियां भी हैं। मूल मुगल चित्र निम्नांकित हैं :

ज. १—जहाँगीर बादशाह

मुगल चित्र, १७वीं शताब्दी, उत्तरार्ध इस चित्र में मुगल शाहन्शाह जहांगीर एक पीले रंग का जामा और चुस्त पाज़ामा पहने हुए खड़े हैं। जामा या अंगरखा के ऊपर हरा पटका बंधा हुआ है जिसके छोरों पर कलाबत्तू का काम है। उनके फैंटे में तलवार बंधी है, जिसकी मूंठ वे अपने हाथ में पकड़े हुए हैं। दूसरे हाथ में गुलाब का फूल है। जामा या अंगरखा फूलदार है और उसमें तनी लगी हैं। शाहन्शाह के गले में रत्नों की माला और भुजा में बाजूबन्द है। सिर की पगड़ी पर मुक्ता माल लिपटी हुई है और तुर्रा लगा है। चित्र में मुगल कलम की बारीकी और पकड़ है जो कि जहाँगीर काल के चित्रों की विशेषता है।

ज. २—शाहजहां बादशाह

मुगल चित्र, १७वीं सदी, इस चित्र में सम्राट शाहजहां अपने दरबार में बैठे हैं तथा दरबारी लोग खड़े हैं। इस चित्र में भी मुगल कलम की समस्त लाक्षणिकता में दृष्टिगोचर होती है।

ज. ३—हसन और हुसेन

मुगल चित्र, समय अनिश्चित, चित्र में हसन और हुसैन बैठे दिखलाए गए हैं। पीछे प्रकृति दृश्य है। आकृतियों के चित्रण में चित्रकार ने जान डाल दी है। इस्लाम में पैगम्बरों के चित्र उपलब्ध नहीं होते क्योंकि हदीस में व्यक्ति-चित्र बनाने का निषेध है। केवल अल्लाह ही प्राणधारियों का सृजन कर सकता है, यह किसी मनुष्य के हाथ की बात नहीं है।

अकबर के राज्य-काल में बन्धनों में कुछ शिथिलता आ गई थी और व्यक्ति-चित्र बनने लगे थे फिर भी पैगम्बरों के चित्र दुर्लभ हैं।

राजस्थानी चित्र

ज. ४--महाराज अनूपसिंह का दर्बार, बीकानेर चित्र-शैली, अठारहवीं शताब्दी। चित्र में कुंअर अनूपसिंह अपने राज दर्बारियों के साथ बैठे हुए हैं। उनके आगे वादकों का समूह है। पुरुष अलाप ले रहे हैं और स्त्रियाँ ताल दे रही हैं। अनूपसिंह जी के आगे हुक्का रक्खा है और नाई उनके हाथ में मधु पात्र देता हुआ दिखाई दे रहा है। चित्र में लाल रंग की प्रधानता है चित्र का हाशिया लाल और काला खत है सम्भवतः इसीलिये कुछ कला समीक्षक इसे उदयपुर शैली का चित्र भी बतलाते हैं किन्तु चितेरा नाथू बीकानेर शैली का कलाकार है।

ज. ५--महाराजा शम्भूसिंह—जिसका नाम नीचे अंकित है।

बीकानेर, १८वीं शताब्दी, इस चित्र में महाराणा शम्भूसिंह अपने घोड़े पर बैठे हुये जा रहे हैं। चित्र में होली का दृश्य दिखलाया गया है। एक ही चित्र में महाराणा शम्भूसिंह का दो स्थानों पर समान चित्रण करके चितेरे ने चमत्कार दिखलाया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज. ६—महाराजा प्रतापसिंह—जयपुर, १९वीं सदी पूर्वार्ध, इस चित्र में कुंअर प्रतापसिंह अपने अश्व पर बैठकर विवाह करने के लिये जाते हुए दिखलाये गये हैं। यह चित्र के पीछे के लेख से प्रकट होता है। वे घेरदार जामा पहने हैं और सिर की पगड़ी में कलंगी और तुर्रा है। कद सामान्य है।

ज. ७—बिट्ठलदास जी, अठारहवीं सदी, वल्लभ कुल सम्प्रदाय के गुरु बिट्ठलदास जी एक आसन पर बैठे हुए है। उनके दर्शन का वर्ण नीलम है और मुख पर तेज़युक्त मण्डल है। उनके पीछे कोई राज पुरुष मयूर-पंख का चवंर डुला रहा है। सामने हाथ जोड़े हुये राजा खड़ा है। वे लम्बा घेरदार अंगरखा पहने हैं। क़द लम्बा, दाढ़ी और मूंछें ऊपर चढ़ी हुई हैं। जोधपुर।

ज. ८—चन्द्रहास की कथा, १८वीं शताब्दी, इस चित्र में चन्द्रहास और विषया की कथा तीन दृश्यों में आँकी गई है।

ज. ९—नायिका—जयपुर शैली १९वीं शताब्दी। इस चित्र में कोई राजपूत ललना कटि पर हाथ रक्खे हुये खड़ी है। वह लहंगा पहने हुये है और ऊपर दुपट्टा पड़ा है, जो कि इतना झीना है कि बालों का जूरा औह बाहों की गोराई झलक रही है। रूप सौन्दर्य लावण्य और भाव सभी दृष्टियों से यह चित्र अनूठा है।

ज. १०—जयपुर की गद्दियाँ—इस एक ही चित्र में चित्रकार ने जयपुर के राजाओं की पीढ़ियाँ दिखलाई हैं। इसमें महाराज मानसिंह बीच में बैठे दिखलाई देते हैं और ईश्वरी सिंह, प्रताप सिंह, जय मिंह आदि भी बैठे हैं। अठारहवीं सदी, जयपुर।

ज. ११—नायिका—बूंदी, १८ वीं सदी, इस चित्र में नायिका खड़ी है और एक दासी उसके उठे हुये चरण का स्पर्श कर रही है, मानों कांटा निकाल रही है। नायिका का क़द मंझोवत है, और लाल अधर एक हलकी काली रेखा से विभक्त है। हाशिया लाल, सुनहली खत लिए है।

ज. १२—दर्पण—जयपुर शैली, १९ वीं सदी इसमें एक नायिका दर्पण में अपना मुख देख रही है। चित्रकार ने मुख और प्रतिबिम्ब की समान आंक कर कला को कसौटी पर रक्खा है।

इन चित्रों के अतिरिक्त इस संग्रह में राजस्थानी कलम की विविध शैलियों में बारह मासा और राग-रागिनियों के अनेक चित्र हैं। रागों में रागिनी ललित, रागिनी वर्सन्तका, रागिनी आसावरी आदि के चित्र बहुत सुन्दर हैं।

राजपूत चित्रों में व्यक्ति-चित्र अधिक हैं और उनमें से अधिकांश १९ वीं शताब्दी के हैं इसलिये इनमें वह ओज और मार्दव नहीं दिखलाई देता जो कि अठारहवीं शताब्दी के चित्रों में मिलता है। इन चित्रों में राजस्थान के राजाओं के अतिरिक्त मुगल शाहजादों की तस्बीरें भी हैं। अलाउद्दीन खिलजी और शाहजादा दीदार बक्श व अकबर शाह के चित्र इसी श्रेणी में आते हैं। राजपूत राजाओं में राव नागा जी, जोग जी, राव चूड़ा जी, राव बीरम जी, श्री गुमान सिंह, राव श्री सिंह, कुंअर बख्तावर सिंह जी, महाराज तेजकरन जी, राव ऊदा जी आदि के चित्र जोधपुर, बीकानेर और जयपुर आदि शैलियों के हैं। विभिन्न शैलियों की लाक्षणिकतायें और विशेषतायें जिनकी चर्चा हम सम्बन्धित लेख में कर चुके हैं, इन चित्रों में परिलक्षित होती है। यहाँ स्थानाभाव के कारण कक्ष के समस्त चित्रों का पृथक् विवरण देना सम्भव नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहाड़ी चित्र

ज. ७२—रुक्मिणी परिणय—कांगड़ा चित्र शैली १८वीं शताब्दी। इस चित्र में कृष्ण और रुक्मिणी के परिणय का प्रसंग कई चित्रों में दिखलाया गया है, कृष्ण का गज पर आगमन, विवाह-वेदी के आगे बैठे हुए वर और वधू। नन्द का भवन—कृष्ण का वर्ण नील और शरीर सुकुमार है, उनके सिर पर पत्तियोंदार मुकट और देह पर पीताम्बर है। रुक्मिणी गौर वर्ण, लम्बे व छर-छरी देह की झांकी गई हैं।

ज. ७३—गोपी लीला

कांगड़ा, १९वीं शताब्दी, इस चित्र में कृष्ण की बाल-लीला का बड़ा मनोहारी चित्रण किया गया है। चित्र को देख कर आनन्द की एक अनुभूति जागृत हो उठती है। लावण्य और माधुर्य का ऐसा मिलन कांगड़ा शैली में ही सम्भव हुआ है।

तांत्रिक चित्र

ज. २३—हनुमान का यह तांत्रिक चित्र राजस्थान का बना हुआ प्रतीत होता है। चित्र कपड़े के ऊपर है जिसमें महावीर का विशाल रूप अंकित है और चित्र पर मंत्र लिखे हुए हैं।

गंजफा चित्र

ज. ७६-७७—पिछली सदी तक गजाफा के खेल का प्रचलन रहा है। इन गोल चित्रों में अनेक देवताओं के चित्रण किए गए हैं और अंकों को पद्म, शंख या खग के रूप में चिन्हित किया है। उड़ीसा, १९ वीं सदी।

पुरी के पट

ज. ७५—१-३ पुरी के यह पट्ट वस्तुतः उड़ीसा की लोक-कला हैं। इनमें जगन्नाथ जी की मूर्तियों के साथ उड़ीसा के मन्दिरों की वास्तु-शैली का भी अंकन हुआ है।

सिख-कलम

सुखमनी का पाठ, सिक्ख कलम, १९वीं शताब्दी। इस चित्र में सुखमनी का पाठ दिखलाया है। वस्तुतः यह सिक्ख गुरु का व्यक्ति चित्र है।

फिरंगी चित्र

संग्रहालय में फिरंगी क़लम के चार चित्र हैं जिनमें साहब तथा मेम घूमने या बग्घियों में जाते हुए दिखलाई देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh